त्रिका

नियम

न्दी साहित्य की सर्वांगीण उन्नति पत्रिका
क निबन्धो के अतिरिक्त आलोचनात्मक
पायेगा। हिन्दीतर भारतीय भाषाओ का
ता का क्षेत्र होगा। पत्रिका की दृष्टि हिन्दी
योगात्मक अनुसन्धान की ओर रहेगी तथा
दिया जायगा। आवश्यकतानुसार लेखों के

क से आरम्भ होगा तथा पत्रिका त्रैमासिक
ठ होंगे। वार्षिक मूल्य ८) और प्रति अक
२) होगा। विद्यार्थियो स वार्षिक चन्दा ६) लिया जायगा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १२) वार्षिक देने वाले सदस्यो को पत्रिका नि शुल्क भेजी जायगी। पत्रिका मे छपने वाले लेख कागज के एक ओर सुस्पष्ट अक्षरो में तथा पक्तियो के बीच मे कुछ स्थान छोड कर लिख कर भेजना चाहिए।

सम्मेलन पत्रिका मे हिन्दी के अतिरिक्त बगला, मराठी, गुजराती तथा दक्षिण भारतीय भाषाओ की पुस्तको की समालोचना भी प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया गया है। अत इन भाषाओं के लेखकों एव प्रकाशको से निवेदन है कि वे अपनी पुस्तको की दो-दो प्रतियाँ सम्मेलन कार्यालय में भेजते रहने की कृपा करे।

आवरण के दूसरे से ले कर चौथे पृष्ठ तक सुरुचिपूर्ण एव स्वस्थ विज्ञापन छापे जा सकेगे। दर के सम्बन्ध में सम्पादक से पत्र-व्यवहार करे।

पत्र-व्यवहार सम्पादक, सम्मेलन पत्रिका, साहित्य विभाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के पते पर करना चाहिए।

पत्रिका का यह अंक

'पत्रिका' का यह साधारण अक है। इस अक को भी पिछले दोनो विशेषाको की भाँति हम ऐण्टिक कागज पर ही छापना चाहते थे किन्तु बहुत ढूढने पर भी वह बाजार मे उपलब्ध नही हो सका। अत विवश हो कर हमे यह अक प्रस्तुत कागज पर छापना पडा। इसी कारण इसके प्रकाशन में थोडा विलम्ब भी हो गया, जिसके लिए, आशा है, कृपालु पाठक हमे क्षमा प्रदान करेंगे।

पत्रिका का आगामी अंक

'पत्रिका' का आगामी अंक आश्विन शुक्ल प्रतिपदा, सवत् २००८ को प्रकाशित होगा। लेखकों से निवेदन है कि उसके लिए वे अपनी खोजपूर्ण सर्वोत्तम कृति अगस्त मास के मध्य तक भेजने की कृपा करे।

सम्मेलन-पत्रिका

[भाग—३७, संख्या—३]
आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा, संवत् २००८

सम्पादक
दयाशंकर दुबे
साहित्य मन्त्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

विषय-सूची

पावस

खिलि मालती बेलि प्रफुल्ल कदम्बन,
पै लपटी लहरान लगी।
सनकै पुरवाई सुगन्ध सनी,
बक औलि अकास उडान लगी॥
पिक चातक दादुर मोरन की,
कल बोल महान सुहान लगी।
घन प्रेम पसारत सी मन में,
घनघोर घटा घहरान लगी॥

बक पाति पताका उडै नभ सिन्धु मे,
चाप सुरेस धरे छबि छाजत।
जाचक चातक तोषत मोतिन,
लौं झरि बुन्दन की बरसावत॥
देखिये तो घन प्रेम भरे,
प्रजा पुज से मोर हूं सोर मचावत।
आज जहाज चढे महराज,
मनोज मनो घन पै चढे आवत॥

—प्रेमघन

सम्पादकीय

सरकारी प्रतियोगिता परीक्षाएं और हिन्दी

हिन्दी के राष्ट्रभाषा घोषित किये जाने पर होना तो यह चाहिए था कि सरकार स्वत अपने समस्त प्रयत्नो को हिन्दी के विकास और प्रचार की ओर अग्रसर करती, लेकिन विगत दो वर्षों की अवधि मे इस दिशा मे जो प्रयत्न सरकार के द्वारा किये गये या किये जा रहे है, वे काफी आशाप्रद नही है। मुशी-आयगर प्रस्ताव की धारा ३०१ (भाग २) का इसके पारित होने के काल मे ही देश की अधिकाँश जनता ने स्वागत नही किया था। पन्द्रह वर्ष की अवधि निश्चय रूप से बडी खटकने वाली थी। लेकिन उक्त धारा के अ ३ वाले उस भाग से जिसमे कि ससद को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह पन्द्रह वर्ष के बाद निर्धारित कार्यों मे अग्रेजी का उपयोग करती रहे, वह अधिक सशकित हुई थी। अब ससद् मे हाल ही मे गृह मत्री द्वारा की गई इस घोषणा से तो कि सरकारी प्रतियोगिता परीक्षाओ के पाठ्यक्रम मे से हिन्दी को एकदम निकाल बाहर कर दिया गया है, जनता मे घोर असतोष और उद्विग्नता छा गई है।

यदि अपनी ही सरकार की कथनी और करनी मे अन्तर न होता तो निस्सन्देह दस वर्ष की अवधि के भीतर ही हम हिन्दी को पूर्ण समर्थ कर राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित करने मे सक्षम होते। लेकिन राजनीति के खिलाडियो ने देश की अधिकाँश जनता की सहूलियत और सास्कृतिक परम्परा का ख्याल न कर उसे तथाकथित अन्तरराष्ट्रीयता और प्रान्तीयता की चट्टानो पर ला कर पटक दिया, पन्द्रह वर्ष की अवधि निश्चित हुई भारतीय अको के 'अन्तर-राष्ट्रीय' रूप को स्वीकृत कर—वह भी निर्विकल्प भाव से नही।

इधर जिस गतिविधि से हमारी केन्द्रीय सरकार चल रही है, उससे पन्द्रह वर्षो मे तो क्या, पचास वर्षो मे भी न हिन्दी राजभाषा का पद प्राप्त कर सकती है और न राष्ट्रभाषा का ही। अब तक भारत सरकार के प्रशासन सम्बन्धी प्रमुख पदो पर काम करने वाले 'ज्ञानवृद्धो' की सुविधा के लिए पन्द्रह वर्षों की अवधि निश्चित करनी पडी, अब नयी पीढी के इन 'सेवको' की सुविधा के लिए पन्दह वर्ष के बाद भी पच्चीस वर्ष की अवधि आगे बढानी ही पडेगी। क्योकि ये महापुरुष भी हिन्दी से अनभिज्ञ होगे और शासन इनके बिना चल ही नही सकेगा।

कहाँ तो भारतीय सविधान की धारा ३५१ के अनुसार भारत सरकार का यह कर्तव्य है कि वह हिन्दी को विशद और समृद्ध बनावे, और कहाँ वह इसके विपरीत हिन्दी को रसातल मे पहुँचाने का उपक्रम कर रही है। इस सम्बन्ध मे सघीय जनसेवा आयोग के इस सुझाव को भी

कि सन् १९५५ से सरकारी प्रतियोगिता परीक्षाओ मे हिन्दी को अनिवार्य कर दिया जाय, उसने ठुकरा दिया। कहा गया है कि हिन्दी को अनिवार्य कर देने से भेदभाव फैलेगा और अहिन्दी भाषी समझेंगे कि हिन्दी भाषियो को अधिक सुविधा दी जा रही है। किन्तु क्या यही बात अँग्रेजी को अनिवार्य कर देने पर भी लागू नही होती ? ऐंग्लो इडियन लोगो की मातृभाषा व्यवहारत अग्रेजी ही है, फिर उन्हे अंग्रेजी को अनिवार्य बना कर अधिक सुविधा क्यो प्रदान की जा रही है ?

अत हम दृढ शब्दो मे भारत सरकार से अनुरोध करते हैं कि वह अपने इस निर्णय को अविलम्ब बदल दे और हिन्दी के प्रति अन्याय न करे। यदि नही तो बाध्य हो कर सम्मेलन और सम्मेलन जैसी अन्य सस्थाओ को इसके विरुद्ध जोरदार आदोलन खडा कर देना पडेगा।

सरकारी प्रतियोगिता परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम की आवश्यकता

भारत स्वतन्त्र हो जाने के बाद यहाँ के माध्यमिक एव विश्वविद्यालयीन शिक्षाक्रम मे आवश्यक परिवर्तन हुये। जैसा कि होना चाहिए था, मैट्रिक और इन्टरमीडिएट परीक्षाओ का माध्यम हिन्दी निर्धारित किया गया। विश्वविद्यालय भी इस दिशा में उदासीन नही रहे। यहा के उन्नीस विश्वविद्यालयो मे से नौ विश्वविद्यालय अपनी परीक्षाओ का माध्यम हिन्दी घोषित कर चुके है या अति निकट भविष्य मे करने जा रहे हैं। ऐसी स्थिति मे उक्त विश्वविद्यालयो से निकले हुए छात्र भविष्य मे अँग्रेजी भाषा मे उस नैपुण्य को निश्चित रूप से नही प्राप्त कर सकेगे, जो अन्य विश्वविद्यालयो के छात्र प्राप्त करेंगे। अत स्वाधीन भारत मे अँग्रेजी भाषा का ज्ञान विद्यार्थी की विशेष योग्यता का मापदण्ड नही माना जाना चाहिए।

अब प्रश्न केवल आई० ए० एस० या पी० सी० एस० की विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओ मे हिंदी को अनिवार्य घोषित कर देने का ही नही है, बल्कि आज की परिस्थितियो की यह तात्कालिक माँग है कि इन परीक्षाओ मे बैठने वाले विद्यार्थियो को स्वतत्रता दी जाय कि यदि वे चाहे तो सभी विषयो का उत्तर हिन्दी मे भी दे सकते है——मौखिक और लिखित दोनो मे, अर्थात् सरकार को इन परीक्षाओ का माध्यम अब हिन्दी घोषित कर देना चाहिए।

यदि तत्काल ऐसा न किया गया तो इसके दो ही परिणाम होंगे——या तो इन विश्वविद्यालयो से निकले छात्र भारतीय प्रशासन सेवा सम्बन्धी उच्च पदो को नही प्राप्त कर सकेंगे और ऐसा होना स्वतत्र भारत मे उनके प्रति अन्याय तथा उनके नागरिकता के अधिकारो का हनन होगा, या इन संस्थाओ को फिर से सन् १९४७ से पहले की स्थिति में लौटना पडेगा। हमे पूर्ण विश्वास है कि दूसरी स्थिति तो कभी नही आयेगी। अब रही पहली स्थिति की बात, सो वह भी न्यायत सह्य नही हो सकती। अँग्रेजी से जिन्हे बहुत मोह है, उनके विषय में तो हमें कुछ नही कहना, लेकिन उक्त विश्वविद्यालयो से निकले हुए छात्रो की कठिनाई की ओर तो अपनी

सरकार का ध्यान हमें खींचना ही है। हम आशा करते है कि सरकार इस अत्यावश्यक विषय पर जल्दी ही समुचित घोषणा करेगी।

काश्मीर में हिन्दी की दुर्दशा

जिस काश्मीर ने अपने को भारत का अविभाज्य अग घोषित किया और कहा कि काश्मीर की राज्य भाषा वही होगी जो भारत की होगी, उसी काश्मीर मे आज राष्ट्रभाषा हिन्दी की दुर्दशा की जा रही है। कुछ समय पूर्व काश्मीर के जिन मुख्य मन्त्री शेख मुहम्मद अब्दुल्ला महोदय ने मद्रास की एक सभा मे जनता से हिन्दी सीखने और व्यवहार मे लाने का अनुरोध किया था, उन्ही के आँखो तले काश्मीर मे हिन्दी का गला घोटा जा रहा है।

इस सम्बन्ध में वहाँ का शिक्षा-विभाग मनमानी कर रहा है। उसने वहाँ के प्रारभिक और माध्यमिक शिक्षा के हिन्दी से सर्वथा वचित होने की स्थिति पैदा कर दी है। इन कक्षाओ में हिन्दी के स्थान पर उर्दू को निर्धारित किया गया है और सूर-मीरा की जगह उर्दू के कवियो की कविताएँ तथा जीवनियाँ बालक-बालिकाओं को सिखाई जा रही है। इस तरह उन्हे भारतीय सस्कृति और हिन्दी से सर्वथा अनभिज्ञ करने का अवाछनीय प्रयत्न किया जा रहा है। यहाँ तक कि काश्मीरी भाषा के लिए भी उसकी अपनी 'शारदा' लिपि को छोड कर फारसी लिपि निर्धारित की गई है।

यदि यह कहा जाय कि राज्य मे मुसलमानो की आबादी अधिक होने के कारण ही प्रारभिक और माध्यमिक शिक्षा मे उर्दू को अनिवार्य कर दिया गया है, तो यह मानना पडेगा कि राज्य की राष्ट्रीय कही जाने वाली सरकार भाषा के सम्बन्ध मे दो राष्ट्रो वाली मुसलिम लीगी नीति का ही अनुसरण कर रही है, जिसका कि स्वय शेख अब्दुल्ला ने सदा विरोध किया है। इसी भाँति राज्य के अन्य विभागो मे भी, जहाँ हिन्दी की आवश्यकता है, उर्दू को स्थान दिया जा रहा है। हिन्दी जानने वालो को नौकरियाँ नही दी जाती, केवल उर्दू वाले ही योग्य समझे जा रहे है।

हिन्दी पर होने वाले इन सब प्रहारो के कारण काश्मीर की हिन्दी प्रेमी जनता बहुत उद्विग्न हो उठी है। उसने सरकार से कई बार अनुरोध किया कि वह इस स्थिति को अविलम्ब बदले, किन्तु उसका कहा अनसुना कर दिया गया। ऐसी स्थिति मे हमारा काश्मीर सरकार से अनुरोध है कि वह शीघ्र इस ओर ध्यान दे और राज्य मे हिन्दी के पठन-पाठन की और सरक्षण की समुचित व्यवस्था करावे। यदि नही तो असतोष की अवस्था में इसका भारी कुपरिणाम हो सकता है।

धार्मिक शिक्षा

आजकल देशवासियो का नैतिक स्तर बहुत गिर गया है। देश भर मे अधर्म, अनाचार,

चोरबाजारी और घूसखोरी की वृद्धि हो रही है। सम्पूर्ण वातावरण बहुत गंदा हो रहा है। इस दुर्दशा का प्रधान कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव है।

अँग्रेज सरकार ने अपनी शिक्षा प्रणाली में सब से बडी गलती यह की कि धार्मिक शिक्षा और चरित्र गठन को उसमे कही भी स्थान नही दिया। वर्तमान सरकार भी उसी गलती को दुहरा रही है। इस धार्मिक शिक्षा के अभाव मे सरकार की बागडोर ऐसे व्यक्तियो के हाथ मे आ गई है जो धर्म के तत्वो से अनभिज्ञ है और जिनका कोई नैतिक स्तर भी नही है। सरकारी कर्मचारियो की भी यही दशा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि सरकार जो कुछ कार्य हाथ मे लेती है वह कर्मचारियो के निजी स्वार्थ साधन के कारण सफल नही हो पाता। जब तक देशवासियो का और विशेषकर सरकारी कर्मचारियो का नैतिक स्तर ऊँचा नही होगा तब तक राष्ट्र निर्माण की कोई भी योजना सफल नही हो सकती।

नैतिक स्तर ऊँचा करने का धार्मिक शिक्षा एक प्रधान साधन है। यदि हमको अपनी अगली पीढी के व्यक्तियो को उच्च नागरिक बनाना है, उनके द्वारा देश का उत्थान करना है या उनके नैतिक स्तर को ऊँचा करना है तो हमको नवयुवको को धार्मिक शिक्षा दिये जाने की व्यवस्था शीघ्र कर देनी चाहिए।

हमारे हिन्दी विश्वविद्यालय की यही विशेषता है कि वह अन्य विश्वविद्यालयो की कमी की पूर्ति करने का प्रयत्न करता है। जब भारतीय विश्वविद्यालयो मे परीक्षा का माध्यम हिन्दी नही था, तब हिन्दी विश्वविद्यालय ने सब परीक्षाएँ हिन्दी माध्यम द्वारा ली जाने की व्यवस्था की। इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। आजकल भारतीय विश्वविद्यालयो मे धार्मिक शिक्षा का अभाव है। इस कमी को भी हिन्दी विश्वविद्यालय को दूर करना चाहिए।

हिन्दी विश्वविद्यालय के परीक्षार्थियो मे सेवा भाव जागृत करने के लिए हमारा सुझाव यह है कि मध्यमा या उत्तमा परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने पर भी किसी परीक्षार्थी को उपाधि-पत्र तब तक न दिया जाय जब तक परीक्षार्थी परीक्षा मत्री को यह न प्रमाणित कर दे कि परीक्षा आरभ होने के समय से दस मास के अदर उसने कम से कम दस परमार्थ के कार्य सेवा भाव से किये हैं। परमार्थ के कार्यों की सूची मे ये कार्य सम्मिलित कर लेना उचित होगा—रात्रि पाठशाला मे अपढ़ व्यक्तियो को पढाना, बीमारो की और अपने साथियो की सेवा करना, वाचनालय खोलना, गदे स्थानो की सफाई करना, ग्रामसेवा के कार्य करना, मजदूरो का सगठन करना इत्यादि।

परीक्षार्थियो मे धार्मिक शिक्षा का प्रचार करने के लिए हमारा दूसरा सुझाव यह है कि कृषि विशारद, व्यापार विशारद, शिक्षा विशारद और वैद्य विशारद के समान धर्म शिक्षा विशारद परीक्षा की व्यवस्था हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा शीघ्र की जाय और उत्तमा परीक्षा मे धर्मशास्त्र

विषय को भी स्थान दिया जाय। धर्मशास्त्र विशारद परीक्षा में अन्य विशारद परीक्षाओं के समान आठ प्रश्न पत्र नीचे लिखे अनुसार रखे जा सकते हैं:—

(१) सदाचार और नित्य नैमित्तिक कर्म
(२) महाभारत और रामायण
(३) स्मृतियों का अध्ययन
(४) वेद और उपनिषद
(५) भारतीय दर्शन
(६) सर्वोदय तत्व—अर्थशास्त्र और राजनीतिमें
(७) धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन
(८) धर्मशास्त्र पर निबंध

यदि उपर्युक्त विषयों पर हिन्दी में उत्तम पुस्तकें उपलब्ध न हों तो उनको लिखा कर प्रकाशित कराने का प्रबन्ध होना चाहिए। मंदिरों का सदुपयोग तब ही हो सकता है जब मंदिरों के पुजारी धर्मशास्त्र विशारद हों। तीर्थ यात्रियों को तीर्थों से विशेष लाभ तब ही हो सकता है जब तीर्थों के पुरोहित या कर्म कराने वाले ब्राह्मण धर्मशास्त्र विशारद हों।

हम आशा करते हैं कि विश्वविद्यालय परिषद् के सदस्य धर्म शिक्षा संबंधी हमारे उपर्युक्त सुझावों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की कृपा करेंगे।

वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद

हर्ष का विषय है कि ग्वालियर के स्वर्गीय पण्डित सदानन्दजी शास्त्री अवस्थी ने सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण का हिन्दी में पद्यानुवाद किया है। वे उसके प्रकाशन का भी आयोजन कर रहे थे, पर इसी बीच उनकी असामयिक मृत्यु हो गई और यह काम जहाँ का तहाँ ही रह गया। अब उनके जामाता पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र ने इस काम को अपने हाथ में लिया है। उन्होंने अनुवाद का कुछ अंश हमारे पास भी अवलोकनार्थ भेजा है, जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अनुवाद अच्छा हुआ है और प्रकाशित होने योग्य है। जो सज्जन उसे प्रकाशित करना चाहें, वे चम्पक की गोट, लश्कर, ग्वालियर के पते पर पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र से सम्पर्क स्थापित करने की कृपा करें।

संस्कृत और अंग्रेजी से हिन्दी क्या ले सकती है ?

श्री रंगनाथ दिवाकर, सूचना मन्त्री, भारत सरकार

हिन्दी भारतीय सघ की राजभाषा घोषित की जा चुकी है और १५ वर्षों मे इसे अग्रेजी का स्थान ले लेना है। विधान की धारा ३५१ के अनुसार सघ की सरकार पर हिन्दी और देवनागरी लिपि की कुछ विशेष प्रकार से उन्नति करने का दायित्व भी रखा गया है। एक-दो सदस्यो के विरोध को छोड कर विधान सभा मे उस समय उपस्थित अन्य सभी सदस्यो ने इस धारा को स्वीकार किया था। अब सरकार तथा हिन्दी प्रचार करने वाली विभिन्न संस्थाओ द्वारा ऐसा प्रयत्न किया जा रहा है कि जिसके फलस्वरूप भारत के विभिन्न राज्यो के निवासी अपनी शक्ति के अनुसार शीघ्र-से-शीघ्र हिन्दी का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर ले। धारा ३५१ द्वारा इच्छित हिन्दी भाषा के रूप तथा उसकी प्राप्ति के उपायो का भी थोड़ा विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। मेरे विचार से राजभाषा के रूप मे देवनागरी लिपि और हिन्दी का प्रचार करते समय यहाँ-वहाँ उपस्थित होने वाले मतभेदो को उठाने और उन पर अडने मे कोई लाभ नही होगा। सच तो यह है कि इसके पक्ष मे सविधान सभा मे इतना प्रबल बहुमत था कि अब इस सम्बन्ध मे कोई मतभेद उठाना स्वय हिन्दी के हित मे भी उचित नही होगा।

फिर भी चूंकि हिन्दी को इस प्रकार सम्पन्न करने के लिए कार्रवाई करनी है कि जिससे उसमे भारतीय जनता के सम्पूर्ण विचारो और बिविध आकाक्षाओ और भावनाओ का प्रदर्शन हो सके, इसलिए यह देखना भी आवश्यक है कि संविधान मे उल्लिखित १४ प्रादेशिक भाषाओ मे जो उन्नति हो चुकी है उससे हम किस प्रकार लाभ उठा सकते हैं। यह निश्चय ही एक बहुत विशाल कार्य होगा और मैं यहाँ उस पर अपने विचार व्यक्त नही करना चाहता। यहाँ तो मैं साधारण रूप से सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि इस विषय मे हमारा सस्कृत और अग्रेजी के विषय मे क्या रुख रहना चाहिए। इन दोनो भाषाओ में सस्कृत सब मे अधिक प्राचीन और अग्रेजी काफी आधुनिक भाषा है। इसलिए मेरे विचार से जहाँ सस्कृत का एक अक्षय भण्डार के रूप मे उपयोग किया जा सकता है, वहाँ अग्रेजी से मिलने वाली सहायता भी बहुत अपर्याप्त नही होगी। अब अग्रेजी के प्रति हमारा जो रुख होना चाहिए वह उस रुख से सर्वथा भिन्न होगा जो उस समय की अग्रेजी के प्रति था जब वह भारत पर शासन करने वाले विदेशी शासको की भाषा थी। आज हमें अग्रेजी का मूल्य उसके गुणो के कारण लगाना होगा और

यह देखना होगा कि एक शताब्दी से इसके साथ हमारा जो सम्पर्क रहा है और अभी भी है, उससे हम अब अधिकतम लाभ कैसे उठा सकते है। इस प्रकार यदि हम दोनो भाषाओ का ठीक-ठीक उपयोग करे तो उन प्रभावो से डरने के लिए कोई कारण शेष नही रह जाता जिन्हे हमारे कुछ मित्र अनिष्ट मान सकते है।

पहले सस्कृत को लीजिये। यह बहुत सी भाषाओ की जननी है। भारत मे जो भाषाए द्रविड स्रोत से निकली है उन्हे छोड कर शेष सब की जननी सस्कृत ही है। द्रविड भाषाओ की जननी सस्कृत है या नही इसका निश्चय विद्वत्जन कर सकते है, परन्तु एक बात स्पष्ट है कि द्रविड भाषाओ को भी सस्कृत से निश्चय ही बहुत कुछ पोषण प्राप्त हुआ है। इस दृष्टि से भी इनकी भी वह धात्री माता तो है ही। इस महान भाषा के नाम मे ही किसी ऐसी वस्तु का बोध होता है जो उन्नति कर चुकी है और जो सस्कृति के विकास की प्रतिमूर्ति है। यह भाषा उच्चतम भावो और विभिन्नतम कल्पनाओ और साथ ही मानवी मस्तिष्क के अत्यन्त सुनिश्चित, तर्कसगत और दार्शनिक विचारो को प्रकट करने मे अपनी क्षमता प्रमाणित कर चुकी है। हम कह सकते है कि वैदिक काल अर्थात् प्राय चतुर्थ सहस्राब्दी से इसी भाषा मे हमारी सस्कृति निहित है। भारत मे प्रादेशिक भाषाओ का विकास हो जाने के बाद भी शताब्दियो तक सस्कृत देश के चुने हुए सुसस्कृत समाज की भाषा बनी रही और वह उसीके द्वारा अपने विचारो का आदान-प्रदान करता रहा। यह भी ठीक है कि फारसी और अग्रेजी के देश मे आ जाने और एक अन्य भाषा उर्दू के पैदा हो जाने से धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन हो गया। मेरे कहने का आशय यह है कि भारत की अन्य सब भाषाओ के लिए सस्कृत भाषा फिर भी पोषण का भडार बनी ही रही। यह हो सकता है कि कुछ भारतीय भाषाओ से वह वाक्य-रचना, व्याकरण आदि की दृष्टि से थोडी भिन्न होती है और द्रविड भाषाओ से कुछ अधिक, परन्तु विचारधारा, शब्दा-वली, अलकार, ओज एव रस की दृष्टि से सस्कृत ने अन्य सब भाषाओ को बहुत अधिक प्रभावित किया है। साहित्यिक शैली के क्षेत्र मे भी भारत की प्रत्येक भाषा ने अपने आधारभूत अनेक रूप को सस्कृत से ही प्राप्त किया है और आज भी कोई यह दावा नही कर सकता कि गीता, मेघदूत, गीतगोविन्द, शाकुन्तल आदि के साहित्यिक रूप आज अनुपयुक्त हो गये है।

ऐसी दशा मे यह स्वाभाविक ही होगा कि हिन्दी भी, जो कि आज राजभाषा का पद प्राप्त कर चुकी है, अपने भण्डार की श्रीवृद्धि करने के लिए सस्कृत की ओर देखे। हिन्दी को यद्यपि भारतीय भाषाओ के अधिक-से-अधिक अच्छे और उपलब्ध शब्द अपनाने चाहिए, तथापि सहस्राब्दी तक भारतीय विचारो और अनुभूतियो को व्यक्त करने वाली मूलभूत भाषा और विचार-निधि सस्कृत को यथोचित महत्व प्रदान करना भी नितान्त आवश्यक है। इस दृष्टि से जो व्यक्ति हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि करना चाहते है, उनके लिए यह आवश्यक होगा कि वे सस्कृत तथा यथा संभव अधिक-से-अधिक भारतीय भाषाओ का अध्ययन करे। यह स्वाभा-

विक है कि सस्कृत से निकले हुए शब्द, अलंकार और भावव्यञ्जना भारत की अन्य भाषाए बोलने वालो की समझ मे आसानी से आ जायगी, क्योकि इन भाषाओ ने भी अपना विकास करते हुए सस्कृत के प्रधान विचारो और महत्वपूर्ण भावव्यजना को आत्मसात् कर लिया है। परन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हम केवल इन्ही मे बँध कर न रह जाये। यह अत्यन्त वाछनीय है कि भारत की अन्य भाषाओ के बोलने वाले यह अनुभव करने लगे कि हिन्दी भाषा की भावी उन्नति करने मे उनका भी कुछ कर्तव्य है। एक दूसरा तर्क यह भी उपस्थित किया जा रहा है कि सस्कृत की भरमार कर देने से आधुनिक हिन्दी बहुत अधिक विद्वत्तापूर्ण और कठिन हो जायगी और फिर वह भारत के जन साधारण की समझ मे आसानी मे नही आयेगी। इसी कारण, यद्यपि किसी भी अन्य भाषा की अपेक्षा सस्कृत द्वारा ही हिन्दी की उन्नति मे अधिकतम सहायता मिलेगी और ऐसा होना स्वाभाविक भी होगा, यह ध्यान रखना भी आवश्यक होगा कि समस्त भारत के विचार और अनुभूति व्यक्त करने के माध्यम के रूप मे जो भाषा होगी वह अधिक-से-अधिक सुलभ हो और प्रत्येक भारतीय भाषा की सर्वोत्तम बातो को आत्मसात् करने का प्रयत्न करे।

अब यह भी देख ले कि नये रूप मे हिन्दी के लिए हम अग्रेजी से क्या लाभ उठा सकते है। इसमे सन्देह नही है कि अग्रेजी के साथ हमारा सम्पर्क बहुत घनिष्ठ रहा है और आज यद्यपि बहुत कम लोग, केवल एक प्रतिशत ही, इसे जानते और बोलते है तथापि यह वह भाषा है जिसके द्वारा भारत का शिक्षित समुदाय आज पारस्परिक बातचीत और सम्पर्क स्थापित कर सकता है, भारत मे उसकी मातृभाषा चाहे जो हो। इसमे भी कोई सन्देह नही कि रचना, वाक्यविन्यास, शब्दावली, भावव्यञ्जना आदि मे अग्रेजी भारत की अन्य भाषाओ से भिन्न है, परन्तु आज अखिल विश्व के विचारो के कोष और अन्य राष्ट्रो द्वारा प्रदर्शित होने वाले विचारो के जगत मे हमारा प्रवेश कराने वाला द्वार भी यही भाषा है। महान प्रजातत्रीय राष्ट्रो की भी आज यह भाषा है। इसमे भारी शक्ति है और यह एक जीवित तथा निरन्तर विकसित और विस्तृत होती जाने वाली भाषा है। कुछ महानतम विद्वानो ने अपने विचार इसी मे व्यक्त किये है। अन्य भाषाओ मे जो कुछ भी काम की चीज होती है, उसका तत्काल ही अग्रेजी मे अनुवाद हो कर हमारे लिए उपलब्ध हो जाता है और इस प्रकार अन्य बहुत सी भाषाए सीखने की आवश्यकता नही रहती। इसमे भाव प्रदर्शन के नये-नये रूप उपलब्ध है और उच्चतम वैज्ञानिक ज्ञान का भी यह भण्डार है। सच तो यह है कि १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ले कर अब तक प्राय प्रत्येक भारतीय भाषा ने अग्रेजी से हुए अपने सम्पर्क से लाभ उठाया है, जो केवल शब्द तथा विचार अपनाने तक ही सीमित नही रहा है वरन् अग्रेजी की विभिन्न साहित्यिक शैलियो के विषय मे भी हुआ है। अत यह बात स्वाभाविक है कि हमारे प्राकृतिक विकास मे बाधा पडे बिना यह कार्य भी आगे होता रहे। वास्तव मे जब हिन्दी आज की अपेक्षा बहुत

अधिक प्रचारित हो जायगी तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क रखने और ससार के समक्ष अपने विचार व्यक्त करने एव भारतीय रचनाओ का अनुवाद करने के लिए हमें अग्रेजी को अरसे तक अन्तर्राष्ट्रीय माध्यम बनाये रखना होगा।

मैं जानता हूँ कि दूर भविष्य के विषय मे सोचना बहुत फलदायी नही होता, परन्तु साधारणतया मैंने ऊपर जो कुछ कहा है, इस सम्बन्ध मे वही ढग ठीक होगा और राष्ट्रभाषा के रूप मे हिन्दी का हित करने के लिए यही सर्वोत्तम होगा। इस प्रकार सस्कृत एव अन्य भारतीय भाषाओ और अग्रेजी के साथ इस समय हमारा जो सम्पर्क है, उससे अधिकतम लाभ होगा जिससे हिन्दी भारत की अत्यधिक लोकप्रिय राष्ट्रभाषा के रूप मे विकसित हो जायगी।

अर्थशास्त्र का प्राचीन ग्रन्थ

सुखदेव कृत 'वणिकप्रिया'

[कौटिलीय अर्थशास्त्र के समय से ले कर इस सदी के आरंभ तक भारतीय अर्थशास्त्र पर संस्कृत या हिन्दी में लिखा गया कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ। इस बीच ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन हुआ तो अवश्य ही होगा, किन्तु संग्रहालयो अथवा पुस्तकालयो के विनष्ट हो जाने से वे ग्रन्थ भी विलुप्त हो गये। यह हर्ष की बात है कि अब कुछ विद्वान् ऐसे ग्रन्थो की खोज में लगे है और उसका सुन्दर प्रतिफल यह 'वणिकप्रिया' हमारे सामने है। इस दृष्टि से सम्प्रति तो यह पहला ही ग्रन्थ कहा जा सकता है, किन्तु अभी और भी ग्रन्थों की प्राप्ति संभव है।

'वणिकप्रिया' को रचना सवत् १७१७ में अर्थात् आज से लगभग ३०० साल पहले श्री सुखदेव ने की थी। ग्रन्थ की भाषा ठेठ बुन्देलखण्डी है। मण्डला के श्री रामभरोस अग्रवाल ने बडे परिश्रम से इसकी खोज और प्रतिलिपि कर हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजा है। स्थानाभाव के कारण हम इसे यहा एक ही बार में समग्र प्रकाशित न कर क्रमशः प्रकाशित कर रहे है। श्री अग्रवाल जी ने इसके साथ अपनी एक विस्तृत भूमिका भी लिख भेजी है, जिसमें ग्रन्थ और ग्रन्थकर्ता पर पूरा प्रकाश डाला गया है। यह भूमिका भी ग्रन्थ के बाद यहां प्रकाशित की जायगी। आशा है, यह ग्रन्थ हिन्दी में अर्थशास्त्र संबधी साहित्य के अभाव की कुछ पूर्ति कर सकेगा।

विद्वानों से निवेदन है कि यदि किन्हीं के पास इस ग्रन्थ की और भी कोई प्रति हो, तो वे उसे हमारे पास भेजने की कृपा करें, ताकि शुद्धता की दृष्टि से हम इस प्रति का मिलान उस प्रति से कर सकें। यदि किन्हीं के पास इसके अतिरिक्त इसी प्रकार का और भी कोई ग्रन्थ हो, तो वे उसे भी हमारे पास भेजने की कृपा करें, ताकि उसे हिन्दी जनता के समक्ष उपस्थित किया जा सके।—सम्पादक]

श्री ॥ अथ वणिकप्रिया ॥ श्री गुरु गणपति कहु सुखदेव। सरस्वती सब कहिहै मेव ॥ वणिकप्रियाहि वणिक सैथियो। दीप उजेर हाथ में दियो ॥१॥

दोहा

गोलापुर वयच विसे विहर बिहारीदास।
तिन्ह के सुत सुखदेव कहि वणिकप्रियाहि प्रकास ॥२॥

वणिकन को वणिकप्रिया भडसारिन[1] के हेतु ।
आदि अंत श्रोता सुनहु मतो मन्त्र से देतु ॥३॥
महा मसक्कत से कियो मवत सोधे साठि ।
मते दोहरन के चले तिनको परे न घाटि ॥४॥

चौपही

फागुन देव दल जो आइहै सकल पदारथ सुरपति चाइहै ।
चार मास हरि रैहै आई प्रनिपाताल सुरेहे जाई ॥५॥

दोहा

धनपति पारस कल्पतरु कामधेनु अरु धर्म ।
सुर अमुरहू मिलि बैठि तहँ, बरखत उत्तम कर्म ॥६॥
सदा छहो रितु निधि घरहि निसिदिन भोजन पान ।
और वणिज सब दुखद है सब सुख करी दुकान ॥७॥
दीन बन्धु दिन मान सौ जो माँगी सो पाइ ।
सार वस्तु सतोष धन वृद्धि अटूट बताइ ॥८॥
जीवदया पालक विरद आपहि आप बखान ।
कल्प वृक्ष है बानियौ उन्ह्रासनहि दुकान ॥९॥
पुन्न प्रताप दान की मडई[2] महज सदाव्रत देइ ।
साहु दुकान धर्म की शाला सुगति शिवपुरी लेइ ॥१०॥
बैठि बजार साहु सौ मारति करहु भाग्य सौ प्रीति ।
कोठी दो दो सौ के गाँहूँ राखु रहट[3] की रीति ॥११॥
पायलिन[4] लेहु चौथियन[5] बेचो आवै कबहुँ न छाह ।
परमेश्वर जब दीन्हो शुभमति गही लक्ष्मी बाह ॥१२॥
पठवहि लाजि द्रौपदी रहिबी, कुरुक्षेत्र की वृद्धि ।
चित्रगुप्त छापकर दीन्हो, करौ जाय जय सिद्धि ॥१३॥

---

१. भड़सार = बड़ा, खत्री
२. मडी, हरिपद
३. आनाजाना, ऊपर नीचे, एक खाली एक भरा
४. आधा सेर का माप
५. सवा सेर का माप

दिन मानहि जो देखौ लिखौ बाचि बाचि मुसक्याइ ।
सुखद सीख सुखदेव हमारी यह मति रहियो आइ ।।१४।।

मनो मन में राखिबे को विचार (१)

दोहा

साई[१] लाई[२] अरु लगनई[३] साझौ[४] जुवा उधार ।
यलगाई[५] कीजै नही यह मत वणिक विचार ।।१।।
साहुन कीजिय वनिजसो जो दरबार बिकाइ ।
गाठ लेन देतन कटै महगे मोल मिलाइ ।।२।।
सामुन कातिक चैत पुनि गुनि निधरक हो बैठ ।
जे तीनो मदे सदा मदा जिवारो[६] जेठ ।।३।।
काढौ दाम असाढकर सामुन भादो साहु ।
कातिक क्वार किसान को तीनो समय उगाहु[७] ।।४।।

अरिल्ल

सदा जिवारो जेठ वस्तु तहँ बेचियो ।
तरकु भादवै परै गाहकै ऐंचियो ।।
काल अची नो परै कातिकै आइकै ।
परत चैत मे मीन अलहनो[८] खाइकै ।।५।।

दोहा

जेठ जिवारो जेठ भरि तरकु दिनन की बात[९] ।
काल रहत है बरष दिन मीन महीना सात ।।६।।

---

१. बयाना
२. ऋण
३. लागडांट
४. सजायत
५. अलगाई, कलह
६. तेज, जोवयुक्त
७. वसूल करो ।
८. मंदी, नुकसानी
९. तेजी महीना भर, मन्दी दिनो की

चौपाई

फागुन महिना अन्न ऐचिये[१], फागुन समयँ देखि बेचिये ।
ऐसे खेल खेल को गाढा, जीते हाथी हारे पाडा[२] ।।७।।

कुंडलिया

सस्ती वस्तु सुमहगी महगी वस्तु सुकाल ।
छठै मास फिर आइ है यह सुकाल यह काल ।।
यह सुकाल यह काल घटै दोऊ जनि छाडो ।
वस्तु जिवारी बेचि अैचि मन्दी भर भाडौ ।।
देत सीख सुखदेव नगर सिहासन हस्ती ।
तहा बैठि मति वाचु साहु सै तो सब सस्ती ।।८।।
वरषा अशुभ माह फागुन की अरु ववारै जलपात ।
दवे धको जगदन मे गोह हरविलान[३] लघु गात ।।
हरविलान लघु गात कुहर तिल ईति मनावै ।
राहर चने तुसार धुन्ध महुवा दुख पावै ।।
महगे के उतपात परखि लीजे हे परखा ।
अवगुन गुनहि न जाइ कहत पडित विल वरखा ।।९।।

दोहा

साहु नगर मे बैठिये लै दस बीस हजार ।
निशि दिन पोथी[४] हाथ मे टेकी रोपि बजार ।।१०।।
साल एक साखा उभय मनो मतिन को एहु ।
या सुकाल या काल को छठै महीना फेहु ।।११।।
दो न फेरिये द्वार तै महामतो कवि देह ।
सपति बाढै खत[५] फटै लगन[६] लाभ जो लेह ।।१२।।

---

१. बेचने को निकालो ।
२. जीत बडी हार छोटी (सिर्फ भैसे की)
३. गायब
४. बही
५. ऋणपत्र
६. अवसर का लाभ

अथ भंडसार करिबे को विचार (२)

कुंडलिया

पाचौ मास असाढ ते खेती करत किसान ।
ता आगे आधे बरस सैंतो साहु सुजान ।।
सैंतो साहु सुजान लगो गाहक जिन फेरो ।
धौचा[1] गने अजान लाभ दीरघ अरु थोरो ।।
न करु मरे की मुठी वेचु गाठी धन साचौ[2] ।
सदा साह फल साहु[3] सुमति सुनियो हे पाचौ ।।१।।
सैंथु साहु अदसा दसा परै क्वार में जान ।
टूटि कटा[4] वढि कचनहि धरि धीरज ले मान ।।
धरि धीरज ले मान वेंचि बावरो बहावै ।
चौमासे मनिहीन बया[5] वाखरे[6] बुलावै ।।
यह वज्रमुठी भडसार लाभ बिक्री रग छूटै ।
सकल वस्तु सुखदेव देऊ सब के जब टूटै ।।२।।
मागै बया मनाइके कै मनाय के देय ।
देय पावडे डारिके डारि पावडे लेय ।।
डारि पावडे लेय साहु साधौ सुभ दोई ।
लर लीजै न अनाज उपधि वैंचो जिन कोई ।।
या रीति भाति भडसारि, काढि कोठी धरि धागै ।
सकल वस्तु सुखदेव देऊ जब कोऊ मागै ।।३।।
कोऊ काम न आइहै धन अनेक धुन जाय ।
परमेश्वर जा दिन कुरुष[7] ता दिन अन्न सहाय ।।

---

१. नुकसानी
२. मत रोको, मुर्दा की मुट्ठी मत बनाओ, माल बेचो, रकम संचित करो।
३. बेचने को फसल में बेचो ।
४. टूटि टका ?
५. नाप तौल करने वाले को
६. अपने घर में
७. कुरुख, प्रतिकूल

ता दिन अन्न सहाय साहु सेथों अस जानी ।
परत अचीती धार क्वार फागुन असमानी ।।
वैचि खाम खोवो टका काल व्यापै नहि दोऊ ।
सुघर सुनर निरपक्ष पक्ष करिहैं नहि कोऊ ।।४।।

श्लोक

कार्तिकादौ षड्भिर्मासै सर्व सग्रह कारयेत् ।
पुन विक्रयेत् तत्र अर्थ लाभ करोति च ।।५।।

चौपही

साहे[1] साह साहु सैथियो । वणिकप्रिया नितही वाँचियो ।।
चूके एक लाभ है सात । मन्त्री मतो बताये जात ।।६।।

दोहा

साहु सैथु वध वाधिये तत्त वचन प्रतिपाल ।
जेठ भरै घर साहु को भरै असाढै ताल ।।७।।
साहै साहु जिन तजो मदा लेहु जिहि पाय ।
सस्ती वस्तु बजार मे मिलै सहज मे आय ।।८।।

चौपही

साहै अमिल मिलै विन साहि । यह विपरीत जानिये नाहि ।।
श्रोता सुनु कविता यह कहै । साहु सुवस्तु न लाभै लहै ।।९।।

दोहा

कही जु मैथन साहु मे अमिल न आवै काम ।
सब ही वस्तु बिकात है जेठ कीजिये दाम ।।१०।।
तरे तवाये[2] के अमिल वाधाए मिल जाय ।
कह करिहौ तिहि सैथिके सग्ग[3] न मिलिहै साई[4] ।।११।।

चौपही

सस्ती वस्तु साहु सैथियो । महगी बस्तु हाथ जिन छियो ।।
वणिकप्रिया मे कवि जा कहै । वस्तु बिकात खंचि[5] जिन रहै ।।१२।।

---

१. फसल में
२. भले बुरे ?
३. स्वर्ग में भी
४. मूलधन
५. रोक कर तानना

पूस माघ की हाटैं आठ । वस्तु खरीद मारिबो काठ ।।
सकल वस्तु सस्ती ऐंचिये[1] । पुनि बैसाख जेठ बेंचिये ।।१३।।
धार[2] देखि माहुर जनि खाऊ । हरी[3] साह हरखै न कराऊ ।।
साहै साह साहु सैंथियो । साहै साह देख वैंचियो ।।१४।।

सारछंद

स्यारी दै उनहारी लीजै उनहारी दै स्यारी ।
गहि जनि रहौ, झारि जनि वैंचो, छ रितु वस्तु पियारी ।। १५।।

दोहा

यह मत मन मे राखियो वाचव बारबार ।
दिन माने वारेक[4] फलै करत करत भडसार ।।१६।।
आवै गाव बिकान कछु कछू अधिक जो होय ।
ताहि न कबहू छाडिये कछू देइगो सोय ।।१७।।
सो कबहूँ नहि छाडिये दीन मान मत लेव ।
आगे हानि अगार लै पाछे देइ सो देव ।।१८।।

चौपही

सस्ती वस्तु सुखो गाडियो, महगी वस्तु हार माडियो ।
या मत सो जु पेट भरि खाय, कुमते काम खाख मिल जाय ।। १९।।

दोहा

तरकु[5] जिवारे जेठ मे, वैचि लेउ लिख सीख ।
साहु सुवस्तु कुमाह[6] मे लेइ सो मागै भीख ।।२०।।

चौपही

सस्ती वस्तु जु मिलहि बजार । साहु सु करन कही भडसार ।।
गाहक कुल्ल माभः मति लेऊ[7] । तहाँ बुलाय आपनी देऊ ।।२१।।

---

१. खरीद करो ।
२. प्रवाह में बह कर विष न खाओ ।
३. हरी फसल देख कर
४. एकाध बार
५. सावधान हो कर
६ दुष्काल ?
७. खरीदने के लिए, जिसके गाहक बहुत हो उसे मत खरीदो ।

भडसारी कीजो भडसार । यह मत बाचौ बारम्बार ।।
मन्त्री मन्त्र मित्र को दियो । ऊपर ऊपर वस्तु जनि छियो ।।२२।।

दोहा

गोहूँ कोदो नोन गुड महुआ तिली कपास ।
साथ माथ सुखदेव कहि सबको करौ प्रकास ।।२३।।

कवित्त

जानत को कब सेंथ फलै[1] तहँ ब्याज लगै गनिकै दिन सोऊ।
दूध सो दारु बजार मे बैठिकै, हाट करो, पुर दे फिरि सोऊ।।
बात विचार कहे सुखदेव, बिना घर घाट बचै नहि कोऊ।
काढि पुजी करिये रुजगार, जुवा भन्मार बराबर दोऊ ।।२४।।

चौपही

सस्ती वस्तु जानि धौ गाडे, महगी वस्तु हाट फुर माडे ।
झारि बेंचि फल पाइ वनिज कीरीति है, पाछे परै न साहु जो आगे चेनि है ।।२५।।

अथ विपरीति को विचार (३)

कुडलिया

नाज बिना आये प्रथम, बढै अशुभता आइ।
नये पुराने की दुसधि मिलै जु घाटि बिकाइ ।।
मिलै जु घाटि बिकाइ सूनी दखी बुध भाखी।
कवि मन्त्री सुखदेव बाधि पोथी लिख राखी ।।
यहै बाचु धन खोलि धरम कीजे फल पाये ।
कबहूँ काले पाय होन सस्तो बिन आये ।।१।।
कातिक चैत असाढ ली मन्दो नही बिकाय।
रूपहु आखि न देखिये, गाहक ढिगै न जाय ।।
गाहक ढिगै न जाय रुजक मे मेलि सुखायो ।
पैसा टका छटाक खरच सुकने कै भायौ ।।
कवि मन्त्री सुखदेव कहत साखै गृह घातक।
प्रजा भाग भगवान सकल[2] आवै जो कातक ।।२।।
आये बिना साह ते सस्ती बिन साहै जो होइ।
आगे नयो न आइ है सेंति पुरानो लोइ ।।

---

१. फल देवे ।
२. इकट्ठा हो करके

संथ पुरानो लोइ साहु आदर सुख आये ।
खलभल मची बजार खेप खेपनि पर आये ।।
धरि पडाव देखौ सकल सब धीरज तजि धाय ।
धार देत विष खात कहि यह बिन खेती आय ।।३।।
कोदो गोहू साह मे सैथो अधिक सकाल ।
फल पायो न असाढ लौ अब जानिये दुकाल ।।
अब जानिये दुकाल, सजन जल माभि बहावै ।
कवि मन्त्री सुखदेव क्वार कातिक फल पावै ।।
चार महीना राखु त्यागु वैचव नज[1] सौदो ।
तहा ताकिये लैन[2] लाम लगु[3] तौलो कोदो ।।४।।

दोहा

चौमामे नजु साह ते मन्दो होय सुलेहु ।
यह विपरीत खरीद करु साहु सरत[4] करि लेहु ।।५।।

चौपही

चोमसि नजु मदो परै सबको काढ़ि बाहिरै धरै ।
जा पावे साह तें सुकाल लीजो तहा काढि कै माल ।।६।।

कुंडलिया

भादो नाज साह ते मदो होय सु लेव ।
यह विपरीत खरीद करु देत सीख सुखदेव ।।
देत सीख सुखदेव चैत फागुन मे लीजै ।
तब तें अबै सुकाल जानि पहिले सुधि कीजै ।।
सुमति सुदामे फलै कुमति छप्पन नसि जादौ ।
कीजै खरु न बिरम्भ[5] एक फागुन अरु भादो ।।७।।
स्यारी के जो नाज है भादो माहि सुकाल ।
तुरतहि ताहि खरीदिये काढ़ि परायो माल ।।

---

१. अनाज
२ खरीदने को
३. फायदे से मिले
४ शर्त
५ विलम्ब

काढि परायो माल सैथिये अन्न पुराने ।
नही नये की आस बूंद दै सकै सयाने ।।
ऐसो पता लगाय बयासो कीजै यारी ।
घर घर धरै मगाय भवनभरि जैसे स्यारी ।।८।।
गेहूँ सस्ते साहुतै जो फागुनै बिकाइ ।
यह विपरीत खरीद करु सैथ पुरानो जाइ ।।
सैथ पुरानो जाइ जाइकौ खास करावै ।
कवि मन्त्री सुखदेव कहत आगे फल पावै ।।
न करु नये की आस आस पुजवै सब होहू ।
दो साखा गिरि मेरु मेरु मन्दिर मे गोहू ।।९।।

दोहा

मस्तो वस्तु जु साह ते बिना साह जो होइ ।
घट आगे उपजै नही देखि वैचियो सोइ[1] ।।१०।।

[क्रमश]

---

१. अच्छी फसल की आशा हो तो बेच डालो ।

वैदिक संस्कृति पर मेरा दृग्स्पर्श

आचार्य चतुरसेन

[गतांक से आगे]

प्राक्वेद कालीन भारतीय सस्कृति

वेदो के निर्माण से पूर्व भारत मे एक सुसस्कृत समाज था। उसकी सस्कृति मिस्र और इराक के पुरातन धर्मों के समान थी। भारत की प्राचीन प्राक् वेदकालीन सस्कृति एशिया माइनर और भूमध्य सागरीय प्रदेशो की सस्कृतियो से अधिक समानता रखती है। मिस्र, क्रीट, सुमेर, असीरिया, बैबिलोनिया और खाल्डिया की सस्कृति मे और मानव वश मे बहुत समानता है। इन देशो मे भी प्राचीन काल मे शिव, विष्णु और काली पूजा होती थी। नाग पूजा, पितृ पूजा, लिग पूजा तथा ग्रह पूजा भी प्रचलित थी। देवदासी पद्धति, मूर्त्ति पूजन, मुहूर्त फल, ज्योतिष, पुजारी आदि भूमध्यसागरीय सस्कृति के अग है। नील, युफ़ाटिस-तैग्रिस (दजला-फरात) और सिन्धु नदियो के तीर पर बढी हुई प्राचीन सस्कृति का उत्तराधिकार हमारी हिन्दू सस्कृति को मिला है।

वैदिक संस्कृति पर बैबिलोनियन असुर संस्कृति का प्रभाव

अब इस बात मे सदेह करने की कोई गुजाइश नही रह गई कि प्राचीन वैदिक सस्कृति पर बैबिलोनियन सस्कृति का भारी प्रभाव है। ऋग्वेद की अनेक ऋचाएँ बैबिलोनियन भाषाओ से मिलती है। जिन ऋचाओ का अर्थ सायण आदि भाष्यकार नही लगा सके उन पर बैबिलोनियन ऋचाओ से काफी प्रकाश पडता है।[1]

ईस्वी सन् के ४।५ हजार वर्ष पूर्व, वर्तमान मैसोपोटामिया की आग्नेय दिशा मे 'सुमेरियन' जाति आ कर बसी और वह युफ़ाटिस और तैग्रिस नदियो के किनारो पर फैल गई।[2] इन्हे 'सेमेटिक' जाति वालो ने जीत लिया और उत्तर प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इन्ही दोनों जातियो से बैबिलोनियन सस्कृति का जन्म हुआ। ईस्वी सन् के १८ वी शताब्दी पूर्व मे 'केशी' लोगो ने इन्हे पराजित कर अपना सार्वभौम राज्य स्थापित किया। ये एलाम (Alam)

१—यथा 'सृण्येव जर्फरी तुर्फरीतू', ऋग्वेद १०।१०६।६

२—Myths of Babylonia and Assyria

के निवासी थे जो बैबिलोनिया और फारस के बीच एक प्रदेश था। यह यद्यपि बैबिलोनियनों से पिछडी जाति थी, पर इनके पास घोडे थे जिस कारण ये विजयी हुये। विजयी होने पर भी इन्होने बैबिलोनियन सस्कृति को अपनाया। इन केशी लोगो और आर्यों की भाषा मे बहुत समानता थी। ऋग्वेद मे इन्द्र के घोड़ो को 'केशी' कहा है। सायण ने उसका अर्थ 'अयाल वाले' किया है, जो ठीक नही है। सही अर्थ यह होना चाहिए–'केशी लोगो के देश से लाये हुए'––सम्भवत आर्य केशी लोगो को सारथी भी रखते थे।[1]

ऋग्वेद मे 'शुष', 'शुष्म', 'मितज्ञु' आदि नाम आये है।[2] एलाम की राजधानी प्राचीन काल मे सुषा-शुषन (Shushan) थी। सम्भव है शूष या शुष्म ये दोनो शब्द एलाम के प्रथम सम्राट इन्द्र के लिए प्रयुक्त हुये हो। सायण ने मितज्ञु का अर्थ मितजानुक किया है पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह शब्द एलाम के वायव्य मे रहने वाले 'मितन्नि' (Mitanni) लोगो के लिए प्रयुक्त हुआ है जो आर्यों के बडे मित्र भी थे।[3] इन कारणो से यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि प्रारभिक वेदकाल मे आर्य लोग एलाम ही के निवासी थे। इसी से उनकी सस्कृति पर बैबिलोनियन सस्कृति की छाप है। हमने बताया है कि एलाम के दक्षिण कोण पर ही बैबिलोन साम्राज्य था तथा उसमे आर्यों के अच्छे मैत्री सम्बन्ध भी थे। उर (Ur) और उम्मा (Umma) नगर के निवासियो का उल्लेख हम ऋग्वेद मे पाते है।[4]

इन उद्धरणो से हम जान सकते है कि पश्चिम के मितज्ञु या मितन्नि और दक्षिण के उरु, ऊमा आदि बैबीलियनो से आर्यो के जहाँ मित्रता सम्बन्ध थे वहाँ पर्शियनो से, जो उनके उत्तर मे थे, उनकी शत्रुता थी। इसके प्रमाण भी ऋग्वेद मे मिलते है।[5] आवेस्ता मे दो स्थानो पर इन्द्र

१––"अश्वावचीत्सारथिरस्य केशी", ऋग्वेद १०।१०२।६

२––'प्रमन्यहेशवसानाय शूंषमांगूषम्', ऋ० १।६२।१

३––बोघज-कोई (Boghaj-Koi) में मिले एक मितन्नि राजा के लेख से प्रतीत होता है कि ये लोग आर्यों की भाँति मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्य देवताओ की पूजा करते थे।

४—"चित्र सेना इषुवला अहृध्रा सतोवीरा उरवो व्रातसाहा", ऋ० ६।७५।९
"ये अश्वास उरवो वहिष्ठास्तेभिर्न इन्द्राभि वक्षिवाजम्", ऋ० ६।२१।१२
"विश्वेभिस्तमोभिरा गहि", ऋ० ५।५१।१
"प्रथमास ऊमा", ऋ० १०।६।७
"अनुत्र विश्वे मदन्त्यूमाः", ऋ० १०।१२०।१

५—समातपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः, ऋ० १।१०५।८

का वर्णन है ओर वहाँ उस दैत्य या राक्षस कहा गया है। इससे इस ऋचा का समर्थन होता है। आवेस्ता मे ऐसे वर्णन बहुत है कि इन कुकर्मी देवो को अहुरमज्द की प्रार्थना से कैसे भगाया जाय। परन्तु पूर्व काल मे एलाम के और पर्शिया के आर्य मित्र की पूजा करते थे। मित्र सर्य का नाम है जो मनु का पुत्र था तथा वरुण भी मनु का पुत्र था जो पर्शिया का प्राचीन अधिपति था। इन्द्र विजयी हो कर एलाम का राजा अवश्य हुआ पर वह पर्शियनो का मित्र न बन सका।

लोकमान्य तिलक ने अपने एक लेख मे अथर्व की एक ऋचा के 'तैमात' शब्द से 'तिअमात्' (Tiamat) का सम्बन्ध जोडा है।[१] बैबिलोनियो के मतानुसार 'तिअमात्' एक राक्षसी थी, उसी का अथर्व मे उल्लेख है, ऐसा तिलक का मत है। पर पुल्लिग होने से 'तैमात' को 'तिअमात' की सतान कहा जा सकता है। इस राक्षसी के पति का नाम 'अप्सु' था। उसका ऋग्वेद मे श्री तिलक ने उल्लेख दिखाया है।[२] ऋग्वेद मे कुछ स्थानो पर 'यव्ह' शब्द आया है, जैसे 'तू यव्ह नाम का देव।'[३] एक मन्त्र मे तो 'य' देवता का नाम है।[४] 'य' सुमेरियन प्राचीनतम देवता है। उसी का नाम ऋग्वेद मे अग्नि के साथ आया है। एलाम के राजा पुरूर्वस के साथ उर्वशी अप्सरा की प्रेम कथा वेद मे भी है और पुराणो मे भी। उर्वशी शब्द उरु+अस को 'ई' प्रत्यय लगा कर बना है। सुमेरियन भाषा मे 'अस' मनुष्य वाची है। इसलिए उर्वशी का अर्थ हुआ उर नगर की रहने वाली सुन्दरी। यह स्त्री पुरूर्वस के साथ एलाम आई थी। पीछे जब उसकी राजा से अनबन हुई तो वह चली गई। जाते समय उसका जो वार्तालाप पुरुरवस से हुआ वह ऋग्वेद १०।९५ मे है। ऋग्वेद मे मिलने वाले अन्य बैबिलोनियन देवताओ के नाम ये हैं—"अशन" (Anshan)। ऋग्वेद मे इसका उल्लेख 'अश' नाम से हुआ है।[५] सायण ने इसका अर्थ "एतन्नामको देवोऽसि" किया है। 'एतन' (Etana) दूसरा देवता है जिसका उल्लेख ऋग्वेद मे 'एतश' नाम से है।[६] बैबिलोनिया के मुख्य देवता

१—'असितस्य तैमातस्य बभ्रोरपोदकस्य च,' अथर्व ५।१३।६। देखिये तिलक कृत Sir R G Bhandarkar Commemoration Volume, The Chaldean and Indian Vedas

२—अप्सुजित्, ऋ० ८।१३।२ और ९।१०६।३

अप्सुक्षित्, ऋ० १।१३९।११। कई स्थानो पर अप्सु का 'अभ्व' में रूपान्तर हुआ प्रतीत होता है—जैसे "बाधते कृष्णमभ्वम्", ऋ० १।९२।५, द्यावारक्षतं पृथिवीनो अभ्वात्, ऋ० १।१८५।२-८ आदि।

३—'त्वं देवानामसि यव्ह होता', ऋ० १०।११०।३

४—पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना, ऋ० ६।१५।५

५—"त्वमशो विदथेदेव भाजयु." ऋ० २।१।४

६—स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना, ऋ० ५।८१।३

इश्तर (Ishtar) और तम्मूज (Tammus) या दमुत्सि (Damutsi) का उल्लेख हम ऋग्वेद में पाते है। कुछ ऋचाओ मे इन्द्र को 'मेष' सज्ञा दी गई है।[१] सायण ने इसका अर्थ 'शत्रुनि· स्पर्द्धमान' किया है, जो समीचीन नही है। 'मेष' (Mes) प्रसिद्ध सुमेरियन देवता है। ऐसे ही और भी उदाहरण है, जिनका यहाँ उल्लेख करना विस्तार-भय के कारण ठीक नही जान पडता।

आर्यों की सप्तसिन्धु विजय

यह एक महान् प्रागऐतिहासिक घटना है। जब इस पर प्रकाश पडेगा तब इतिहास की रेखाएँ सहस्रो वर्ष पीछे खसक कर इस घटना का स्पर्श करेगी। वैदिक काल मे सिन्ध और पजाब को 'सप्त सिन्धु' कहते थे, पीछे सिन्धु कहने लगे।[२] 'सप्त सिन्धु' प्रदेश पर तब वृत्र का राज्य था। उसका दूसरा नाम 'अहि' था। वह दासो का नेता था।[३] दास का अर्थ गुलाम या हीन पुरुष नही -प्रत्युत् जिन दासो का वेद मे उल्लेख है वे श्रीमन्त और सामन्त थे।

महाभारत मे वृत्र गीता प्रकरण है। उसमे भीष्म के मुँह से वृत्र की बहुत प्रशसा कराई गई है। इसी क समर्थन मे ऐतरेय ब्राह्मण के ३५ वे अध्याय के दूसरे खण्ड मे एक कथा है जिसमे देवताओ द्वारा इन्द्र पर वृत्र को मारने, विश्व रूप को वध करने, यतियो को कुत्तो को खिला देने, असमर्थों की हत्या करने और बृहस्पति पर प्रतिप्रहार करने के पाच अभियोग लगाने का उल्लेख है। तैत्तिरीय सहिता मे लिखा है कि इसके लिए इन्द्र को प्रायश्चित्त करना पडा। पर कौषीतकि उपनिषद् मे तो वह बडे दर्प से कहता है—**"मैंने यतियो को कुत्तो को खिला दिया .....पर मेरा बाल भी बाका न हुआ ..मातृ वध, पितृ वध, चोरी, भ्रूण हत्या से भी (मुझे) पाप नहीं लगता, चेहरे का रग नहीं पलटता।"**[४] उस काल मे ऐसा जान पडता है कि बैबिलो-

---

१—अभित्य मेष पुरुहुत मृग्मिय मिन्द्रं, ऋ० १।५१।१

२—ऋ० १।३२।१२ और १।३५।८ तथा २।१२।१२ में 'सप्त सिन्धून' का प्रयोग है। ८।२४।२७ में 'सप्त सिन्धुषु' शब्द है। ऋग्वेद के चौथे मण्डल के १७,१८ और १९ वें सूक्त की १,७ और ८ वीं ऋचा में 'सिन्धून' शब्द आया है।

३—'विश्वा अपोअजपद्दासपत्नी.", ऋ० ५।३०।५, 'दासपत्नी रहिगोपा,' ऋ० १।३२।११, 'वृत्र जघत्वाँ असृजद्वि सिन्धून्', ऋ० ४।१९।८, "योहित्वाहि मरिणात सप्त सिन्धून्", ऋ० २।१२।३

४—यतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छ ..तस्य मे तत्र न लोभ च नामीयते....न मातृ वधेन न पितृवधेन स्तेयेन न भ्रूणहत्या नास्य पाप च चकृषो मुखान्नीलं वेत्तीति, कौषीतकि उ० ३।१

निया में मर्दुक (Marduk) के नाम से और एलाम तथा पर्शिया मे मित्र के नाम से और सिन्धु मे विष्णु के नाम से मनु पुत्र सूर्य की पूजा प्रचलित हो गई थी। विष्णु वृत्र का मित्र था। इन्द्र ने उससे कहा—"मै वृत्र का वध करूँगा। मित्र विष्णु, तू इस मामले से दूर ही रहना।"[1] ऐसा ऋग्वेद की एक ऋचा में है। इस ऋचा में 'विक्रमस्व' पाठ है। सायण ने इसका अर्थ 'पराक्रम करो' किया है, पर 'दूर रहो' अधिक ठीक है। ऐसा कहने से महाभारत की कथा से इस ऋचा का समर्थन होता है।

इस बात को मान लेने के यथेष्ट आधार है कि सिन्ध और पजाब मे जो 'हरप्पा' और 'महिन्जोदारो' के अवशेष मिले है वे दास लोगो के समय के है। यदि ऐसा है तो दासो की सस्कृति बहुत ऊँची स्वीकार करनी पडेगी। परन्तु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वैबिलोनियन जनो की भाँति दास भी घोडो से परिचित नही क्योकि इन दोनो नगरावशषो मे घोडे का कोई अकित चित्र नही मिला है। यह सभव हो सकता है कि ये दास सुमेरियन ही हो। वृत्र यद्यपि उनका नेता था, पर वह कोई बडा राजा नही प्रतीत होता। पर दास बडे वीर थे। नमुचि दास ने स्त्रियो तक को इन्द्र से लडने भेजा था।[2] इन्द्र ने शबरदास के निन्यानबेनगर नष्ट किये, फिर भी शंबर ४० साल तक इन्द्र के हाथ नही आया, पहाडो मे छिप कर छापे मारता रहा।[3] त्वष्टा ने वृत्र की जाति का होने पर भी उसे वृत्र को मारने के लिए वज्र दिया। उसके इनाम में त्वष्टा के पुत्र त्रिशीर्ष को इन्द्र ने अपना पुरोहित बनाया। पीछे विद्रोह करने की आशका से उसे भी मार डाला। इसी त्रिशीर्ष का नाम विश्वरूप भी था। इसका उल्लेख तैत्तिरीय सहिता[4] मे है। महाभारत क उद्योग पर्व मे भी इस घटना की चर्चा है। त्रिशीर्ष को मारने पर तक्ष ने इन्द्र से कहा—**"इस ऋषि पुत्र को मार कर भी तुम्हे ब्रह्म हत्या का भय नहीं ?"** तब इन्द्र ने कहा—**"कुछ परवा नहीं, पीछे मै प्रायश्चित्त कर लूँगा।"**[5] विश्वरूप की हत्या का उल्लेख ऋग्वेद १०।८।८९ मे भी है। ऋग्वेद से पता लगता है कि इन्द्र ने दिवोदास के लिए दासो के १०० नगर नष्ट किये।[6] दिवोदास के पुत्र 'सुदा.' की भी इन्द्र ने सहायता की। इसी प्रकार त्रसदस्यु, पुरुकुत्स आदि को मिला कर इन्द्र ने सप्तसिन्धु मे अपना सार्वभौम राज्य स्थापित किया। ऋग्वेद मे एक ऋचा है कि तुर्वश और यदु दास थे तो भी इन्द्र ने उनकी रक्षा की पर अर्ण और

१—अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यत्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व, ऋ० ४।१८।११

१—स्त्रियोहिदास आयुधानिचक्रे कियाकरन्नबला अस्य सेना', ऋ० ५।३०।९

३—"य' शम्बर पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्", ऋ० १।१२।११

४—तै० सं० काण्ड २।५।१

५—उद्योग पर्व अ० ९ श्लो० ३४-३५

६—'भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय वाशुषे', ऋ० १।१३०।७

चित्ररथ आर्यों का भी वध किया,[१] यह सब राज्य स्थापन के लिए। उसने इस प्रकार सप्त सिन्धु में राज्य-स्थापना की।

इन्द्र वैदिक आर्यों के भारत का प्रथम सम्राट्

जिस इन्द्र ने एलाम से आ कर तथा दासो से संधि विग्रह कर सप्त सिन्धु में अपना राज्य विस्तार किया उसका वास्तविक जन्म वृत्त या ठीक-ठीक परिचय नहीं मिलता है। परन्तु वैदिक साहित्य में उसके सम्बन्ध में जो इधर-उधर स्फुट विवरण मिलते हैं उनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कौशिक[२] गोत्र के किसी सामन्त राजा के वीर्य से एक कुमारी कन्या से[३] एक पुत्र हुआ। उसने लोक लाज और अपवाद से बचने के लिए छिप कर घर से बाहर गोशाला में[४] उसे चुपचाप प्रसव किया। बच्चे के जन्म के बाद उस सामन्त ने कन्या को अंगीकार नहीं किया। वह इन्द्र को भी मार डालना चाहता था। इन्द्र माता के इस अपमान को नहीं भूला। उसने अवसर पा पैर पकड कर पिता को मार डाला[५] और उसके छोटे से राज्य पर अधिकार कर लिया। वह साहसी और पराक्रमी युवक था। वह एलाम के आर्यों का अगुआ और नेता बन गया। एलाम के पश्चिम

१—ऋ० ४।३०।१७-१८

२—'आतून इन्द्र कौशिक', ऋ०१।१०।११। इस ऋचा में इन्द्र को कौशिक कहा गया है।

३—'सद्योह जातोवृषभ कनीनः', ऋ० ३।४८।१। इस ऋचा में जो कनीन शब्द है उसका सायण ने 'कमनीय' अर्थ किया है जो ठीक नहीं है। कनीन का अर्थ होता है कन्यावस्था में जन्मा हुआ।

४—"अवद्यमिव मन्यमाना गुहा करिन्द्रंमाता वीर्येण न्यृष्टम्", ऋ० ४।१८।५। इस ऋचा का यह अर्थ है कि अपनी प्रतिष्ठा को हानि पहुंचाने वाला समझ कर माताने उस सामर्थ्यवान् पुत्र इन्द्र को छिपाया। इसी सूक्त की दसवी ऋचा में ऋषि कहते हैं कि जिस प्रकार गाय ने बच्चे को जन्म दिया उसी प्रकार माता ने इन्द्र को। इन उद्धरणो से प्रमाणित है कि इन्द्र को उसकी माता ने कुँआरेपन में ही छिप कर गोशाला में प्रसव किया था।

५—कस्तेमातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वाम जिघांसच्चरन्तम्।
कस्ते देवो अधिमार्डीक आसीत् यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ।। ऋ० ४।१८।१२
अर्थात्—तेरी माता को विधवा किसने बनाया, तुझे सोते और घूमते समय मार डालने की चेष्टा में कौन था ? जिस तूने पिता को पैर पकड कर मार डाला उस तुझसे अधिक सुख देने वाला देव कौन है ?

प्रदेश के मितन्नु या मितन्नि और दक्षिण के उरु, ऊमा आदि बैबिलोनियन जाति की रियासतें उसकी मित्र थी तथा उत्तर के पर्शियन प्रबल शत्रु थे, अत उसने पूर्व की ओर अपना प्रसार किया और पच सिन्धु के नेता वृत्र को मार डाला। दबाव डाल कर उसने विष्णु को अपने मित्र वृत्र की सहायता नही करने दी। त्वष्टा के पुत्र को पुरोहित बनाने का प्रलोभन दे उससे वज्र महास्त्र लिया जिससे वृत्र को मारा। पीछे त्वष्टा के पुत्र को भी मरवा डाला। दासोमे दिवोदास, उसके पुत्र सुदा, त्रसदस्यु एव पुरु से उसने सधि कर तथा तुर्वश और यदु दासो को मिला अपना साम्राज्य सप्त सिन्धु मे स्थापित किया तथा एलाम को लौट गया। पीछे बैबिलोनियन सम्राटो की देखादेखी इन्द्र ने अपनी गणना देवो मे कराई और उस साम्राज्य मे अपनी पूजन विधि प्रचलित की। उसने बैबिलोनियन लोगो ही मे सोमपान की परिपाटी देवो मे प्रचलित की[१] तथा अपनी एक नई सस्कृति की नीव एलाम मे डाली जो वैदिक सस्कृति कहलाई। इन्द्र की स्तुति की बहुत सी ऋचाएँ रची गई। एलाम के निवासी वामदेव ऋषि ने उसकी स्तुति मे ऋग्वेद का सूक्त का सूक्त ही रच डाला।[२] वृत्र को मारने में इन्द्र ने पराक्रम किया, उसका नाम इससे 'वृत्रहा' पडा। फिर जब उसने दासो के सौ नगर नष्ट किये तब उसका नाम 'पुरन्दर' पडा। इन्द्र के कारण दास पराजित हो कर नीच पद को प्राप्त हुये।[3] वामदेव के अतिरिक्त और ऋषियो ने भी इन्द्र की स्तुति मे ऋचाएँ रची। इसी से ऋग्वेद के चतुर्थाश सूक्त इन्द्र की स्तुति से भर गये। इसके बाद अग्नि, वरुण आदि देवताओ के सूक्त है जो आर्यों के पूर्वज थे और फिर देव हो गये थे। मित्र, वरुण, नासत्य, आर्यों के भी और पर्शियनो के भी देवता थे—जो मूलत आर्य थे। विष्णु के नाम से सूर्य की पूजा दास करते थे।

१—अनेक बैबीलोनियन सम्राट् अपने जीवन काल ही में देव हो गये थे तथा वे सोमपान का एक भारी उत्सव किया करते थे। इस उत्सव के खुदे बहुत से चित्र बैबिलोनिया में मिले हैं।

२—वामदेव जो एलाम के निवासी ऋषि थे ऋ० ४।१८ सूक्त के कर्ता हैं। सूक्त के अंत में वह कहते हैं—"अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम्। अपश्यं जायाम महीय मानामधा मेश्येनो मध्वा जभार॥" अर्थात् मुझे खाने को कुछ नहीं मिला तो मैंने कुत्ते की अँतड़ियाँ पकाईं। देवो में मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं मिला। पत्नी ने मेरी विडम्बना की। ऐसी दशा में इन्द्र ने मुझे मधु दिया। इस दरिद्र ऋषि ने आगे इन्द्र के स्तोत्र रच कर बहुत पुरस्कार पाया।

३—'विशो दासीरकृणोराप्रशस्ताः', ऋ० ४।२८।४,'दासंवर्ण मधरं गुहाकः', ऋ० २।१२।४

कृष्ण इन्द्र का प्रतिस्पर्द्धी

ऋग्वेद की ऋचाओ में इन्द्र की स्तुति ही भरी है, फिर भी तीन ऋचाएँ एक नया प्रकाश डालती हैं। इनका अभिप्राय यह है —

शीघ्रगामी कृष्ण ने दश सहस्र सेना के सहित अशुमती नदी के समीप छावनी डाली। महाघोर शब्द करने वाले उस कृष्ण के पास इन्द्र आया और मैत्रीपूर्ण सन्धि की बात-चीत की। अपनी सेना से उसने कहा—"अशुमती नदी की तंग घाटियों में द्रुतगामी तथा आकाश के समान तेजस्वी कृष्ण की सेना छिपी बैठी है। अब तुम उससे युद्ध करो।"[१] इसके बाद कृष्ण ने युद्ध में बडा पराक्रम दिखाया। इस देवतार सेना के आक्रमण सहन करने में इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता ली।

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र को अशुमती तट तक अपने देश से आने में काफी दिक्कत उठानी पडी होगी। पीछे कृष्ण के विकट व्यूह से घबरा कर वह पराजय न होने ही को विजय मान कर वहाँ से बृहस्पति की सलाह से हट गया होगा। एक ऋचा से पता चलता है कि इन्द्र ने कृष्ण की गर्भवती स्त्रियो को मार डाला।[२]

भागवत के दशम स्कन्ध के २४ और २५ वे अध्यायो मे यह कथा है कि नन्द आदि गोपालो ने यज्ञ से इन्द्र को सतुष्ट करना चाहा पर कृष्ण ने उसका विरोध किया और वह इन्द्र पूजा को रोक कर गोवर्द्धन पर्वत पर चढ गये। इन्द्र ने वर्षा कर गोकुल का नाश किया चाहा तब कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत उठा कर गोकुल को आश्रय दिया। भागवत की इस दन्त कथा से ऋग्वेद की ऋचाओ से कुछ निकट सम्बन्ध प्रकट होता है।

१—अव द्रप्सो अशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभि सहस्रै ।
आवत्त मिन्द्र. शच्याधमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥
द्रप्समपश्य विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अशुमत्याः ।
नभो न कृष्ण मवतस्थिवासमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥
अध द्रप्सो अशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाण. ।
विशो अदेवीरभ्या चरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ऋ० ८। ९६। १३-१५
इन ऋचाओ के अर्थ में सायण ने 'तन्व' का अर्थ 'शरीर' किया है। १५ वीं ऋचा में 'अभि' उपसर्ग का 'ससाहे' से सबंध जोड़ कर उसका अर्थ 'जघान' अर्थात् मार डाला किया है। पर 'सह' धातु से वह अर्थ ध्वनित नहीं होता। धातु का अर्थ तो 'सहना' या 'जीतना' होता है ।

२—यः कृष्णगर्भा निरहन्, ऋ० १। १०१। १

कृष्ण के सम्बन्ध मे हम यहाँ कुछ और भी कहना चाहते है जिसमे मुख्य बात यह है कि कृष्ण कौन है तथा उनका कुल-वश-जाति क्या है। इसका ठीक-ठीक अभी तक पता नही लगा है। साथ ही कस के राज्य का भी कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक आधार नही है। कनिंघम ने जो मथुरा की खुदाई कराई थी उसमे कस के नाम से विख्यात टीला बौद्धो का एक विहार स्तूप प्रमाणित हुआ तथा पुराणो से जो कृष्ण एव कस का वश वृक्ष प्राप्त है उसके आधार पर यदु वश की माथुर शाखा मे वैवस्वत मनु की पुत्री इला और पुरुर्वस की सतानो मे ५२ वी पीढ़ी मे राजा आहुक हुये थे। उनके समकालीन देवमीढस थे जो पूर्वोक्त वश वृत्त के ४६ वें राजा वृष्णि से भिन्न किसी वृष्णि वश के थे। इन्ही के वश मे चौथी पीढी मे कृष्ण का नाम है।[1]

अब विचारने योग्य बात यह है कि इन्द्रप्रस्थ से हस्तिनापुर ६० मील तथा मथुरा ८० मील है। मथुरा से वृन्दावन और गोकुल ४।५ मील है। ऐसी हालत में इन प्रदेशो मे तीन-तीन चक्रवर्ती महाराज्य कैसे? तब क्या "आसमुद्रातंतीश" की उपाधि मात्र गप्प है? भागवत के अनुसार कस प्रेरित अक्रूर गोकुल से कृष्ण को लेने के लिए वायुवेगी रथ पर चढ प्रात.काल से सन्ध्या तक चल कर मथुरा से गोकुल पहुचे। इस पर विचारना चाहिए कि यह ४।५ मील का सफर दिन भर मे वायुवेगी (?) रथ पर पूरा किया गया। फिर कृष्ण जब अरक्षित गोकुल मे गाये चराते थे—तब कस जैसा सामर्थ्यवान् नृपति उन्हे अपने भौमासुर, वृत्तासुर आदि योद्धाओ से पकडवा नही सकता था? यह भी विचित्र बात है कि कृष्ण एक बार मथुरा आ कर फिर गोकुल गये ही नही! महाभारत से प्रतीत होता है कि शिशुपाल और दु शासन आदि दस सहस्र जबल के अधिपति थे। ऐसी हालत मे मथुरा, इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुर के बीच महाराज्यो की कल्पना कोरी गप प्रतीत होती है।

कृष्ण पाण्डवो के समकालीन थे इसका कोई ऐतिहासिक आधार प्राप्त नही है। महाभारत मे कस और कौरवो का कोई सम्बन्ध नही दिखाया गया है। आत्रेय उपनिषद् मे लिखा है कि घोर आगिरस ऋषि ने कृष्ण को यज्ञ की एक सरल रीति बताई थी जिसकी दक्षिणा थी तपश्चर्या-दान-आर्जव-अहिसा और सत्य।[2] जैन ग्रन्थो मे कहा गया है कि कृष्ण के गुरु नेमिनाथ तीर्थंकर थे। यह यदि सभव हो कि नेमिनाथ और घोर आँगिरस एक ही व्यक्ति है तो कृष्ण की गोरक्षा की भावना पर प्रकाश पडेगा, क्योकि इन्द्र से कृष्ण का एक विरोध यह भी था कि वह गोवध कर के यज्ञ करता था। यदि कृष्ण ने इन्द्र का विरोध न किया होता तथा दिवोदास की भाँति इन्द्र का आधिपत्य स्वीकार कर लिया होता तो वह भी ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये होते।

१—वायु पुराण ९६-३, हरिवंश ३८, मत्स्य ४४।४९

२—अथ यत्तपोदानमार्जवमहिसा सत्य वचनमितिता अस्यदक्षिणा', छ०उ०अ०३, १७।४-६

वशिष्ठ दासों का कुलगुरु

वशिष्ठ दासो का कुल गुरु है। उसका कुल दिवोदास और सुदास के आश्रित था। एक ऋचा मे कहा गया है—"**हे वशिष्ठ, दस राजा युद्ध के लिए आने पर तुम्हारी प्रार्थना से इन्द्र ने सुदास को शरण दी।**"[१] इसी सूक्त की एक दूसरी ऋचा मे कहा गया है कि **इन्द्र ने वशिष्ठ की प्रार्थना स्वीकार की थी।**

आर्यों की अग्निपूजा, वेदों के अग्निसूत्र और इन्द्र के स्थापित तथा परीक्षित और जनमेजय के पशुयज्ञ

प्राचीन आर्य अग्नि पूजक थे। वेद के अग्नि सूक्तो मे बैबिलोनियन देव 'य' 'दमन्सि' आदि का मिश्रण मिलता है। हमने पीछे एक उद्धरण मे बताया है कि क्रुद्ध हो कर इन्द्र ने यतियो को कुत्तो को खिला दिया था। बौद्ध जातको मे इन यतियो के सम्बन्ध में लिखा है कि वे जगलो मे आश्रम बना कर रहते थे। सभव है कि इन्द्र के कोप से भयभीत हो ये यति राजनीति से दूर रह यज्ञ-याग मे ही सतोष मानने लग हो। पीछे इन्ही ने इन्द्र की स्तुति की। ये यति किस प्रकार वैदिक सस्कृति का प्रचार करते थे इसकी एक झलक हमे बौद्धो के सुत्तनिपात मे दीख पडती है। वहाँ लिखा है कि बावरी नाम के एक यति ने कौशल देश से आ कर गोदावरी के तट पर एक आश्रम स्थापित किया। धीरे-धीरे आश्रम के आसपास बस्ती बढने लगी। उन लोगो की सहायता से वह यति यज्ञ करने लगा। यह कथा तो बुद्धकालीन है। इससे पूर्वकाल मे भी ऐसा ही होता था।

मोहनजोदडो और हरप्पा के नगरावशेषो मे मदिर समझी जाने वाली इमारतो के ध्वस मिले है। परन्तु इनमे कोई देव मूर्त्ति नही है। एक स्थान पर लिग के आकार का स्तम्भ अवश्य मिला है। पर इससे यह नही कहा जा सकता कि दास लोग लिग पूजन करते थे। पर उनका एक पूजन स्थान तो होता ही था। इन्द्र ने मण्डप बना कर यज्ञ प्रथा जारी की। शतपथ मे एक स्थान पर कहा गया है कि "**यज्ञ विष्णु था और वह वामन (बौना) था। धीरे-धीरे वह बढ़ता चला गया।**"[२] पुराणो मे वामन अवतार और बलि बन्धन की कथा का आधार यही प्रतीत होता है, परन्तु इसका यह स्पष्ट अर्थ ध्वनित है कि यज्ञ सस्था साधारण अग्निहोत्र से बढ कर कैसे पुरुष मेध तक बढ गई।

१—ऐवेन्नु कं दाश राज्ये सुदास प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणावो वशिष्ठा, ऋ०७।३३।३

२—यज्ञमेविष्णु पुरस्कृत्येयु . . . .वाम मोह विष्णुरास . . . .तेने यां सर्वापृथिवी समविन्दन्त, शत० ब्रा० १।२।३।३-७

किसी ऋषि या यति ने अपने आश्रम मे साधारण अग्निहोत्र प्रारम्भ किया—लोगो ने उसमे सहायता की। धूमधाम बढ चली। कोई राजा सहायक मिल गया। प्रसिद्धि हो गई तो विविध यज्ञ-याग प्रचलित हो गये। पुरुष मेध के रूप में नर बलि तक इन यज्ञो मे होती थी। धीरे-धीरे सब सस्कारो और गृह कृत्यो मे यज्ञ प्रविष्ट हो गया। इसने पुरोहितो का महत्त्व भी बढाया। जब दासो और आर्यों का युद्ध हुआ तो बलिदान वाले यज्ञो का विरोधी देवकी पुत्र कृष्ण उठ खडा हुआ। उसने इन्द्र का विरोध तो किया परन्तु यज्ञो के भडकीले प्रदर्शनो के सम्मुख उसकी गोपूजन सस्कृति टिक न सकी। अन्तत परीक्षित राजा के समय मे यज्ञ परिपाटी खूब विकसित हो कर यमुना तट तक आ पहुँची जिसका वर्णन हम अथर्व वेद मे इस प्रकार पाते है.—

"सारे मर्त्य लोक में श्रेष्ठ सार्वभौम वैश्वानर परीक्षित की स्तुति सुनो। पति पत्नी से कहता है—इस कौरव ने राजा हो कर अधकार को बांध कर लोगो के घर सुरक्षित किये। पत्नी पूछती है—तुम्हारे लिए दही लाऊँ या मक्खन ? परीक्षित के राज्य में पका हुआ बहुत सा जौ का दलिया यो ही मार्ग में पडा रहता है। (इस प्रकार) परीक्षित के राज्य में सुख की वृद्धि हो रही है।"[१]

इन मन्त्रो से हम देख सकते है कि परीक्षित के यज्ञो से लोग प्रसन्न थे। ऐसी स्थिति मे घोर आगिरस की श्रीकृष्ण को बताई सीधी सादी यज्ञ विधि भला क्या काम कर सकती थी ? इन यज्ञो के स्वरूप का एक वर्णन 'सुत्त निपात' के ब्राह्मण धम्मिक सुत्त मे मिलता है·—

". . . . .इन ब्राह्मणों ने लोभवश ओक्काक राजा को गोमेध करने के लिए प्रवृत्त किया। ओक्काक राजा ने भेड़ जैसी सीधी गायो की सीग पकड कर वध किया। जब गायो पर शस्त्र चलाया गया तो देव-पितर, इन्द्र-असुर और राक्षस सब ने कहा—"अच्छा हुआ ! इससे प्रथम इच्छा भूख और वृद्धावस्था में तीन रोग थे—अब पशु यज्ञ के कारण वे ९८ हो गये।"

यह 'ओक्काक' कौन था, यह कहना अशक्य है। पर यह प्रकट है कि गगा यमुना के प्रदेश मे परीक्षित और जनमेजय ही ने यज्ञो की धूम मचाई जिनमे पशु वध किया गया। इन्ही से ब्रह्मावर्त की आर्य सस्कृति मे हिसक यज्ञो का प्रचलन हुआ। इससे ब्रह्मावर्त्त की कोई अवनति हुई यह तो नही कहा जा सकता परन्तु इतना अवश्य हुआ कि ब्राह्मणो का समाज पर श्रेष्ठत्व स्थापित हो गया। यज्ञ क्रिया और पौरोहित्य उनके हाथ मे आ गया। **"जिस राजा के यहां पुरोहित नहीं होता—उसका अन्न देवता नहीं खाते। पुरोहित प्राप्त करके राजा स्वर्ग को ले जाने वाली अग्नि को प्राप्त करता है। इससे उसका**

१—अथर्व०काड २० सू० १२७

५

ब्राह्मबलतेज और राष्ट्र बढ़ता है । पुरोहित की वाणी, पाद, चर्म, हृदय और गुप्तेन्द्रिय स्थानों पर पांच कोपाग्नि होती है जो अभ्यर्थना, पाद्य, वस्त्रालंकार और धन दान तथा महलों में ऐश से उन्हे रखने से शान्त रहती है ।"[१]

वर्ण विभाजन और ब्राह्मण-क्षत्रियों का गठबन्धन

यज्ञो ही से वर्णों के विभाजन का प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मण अपनी स्थिति को जानते थे—"ब्राह्मण राज्य नहीं कर सकता ।"[२] "ब्राह्मण क्षत्रिय की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकता—क्योंकि उसकी शक्ति केवल मुख में है ।"[3] "क्षत्रियो की भुजाओ में बल है, इससे उससे मिल कर चलना अच्छा है ।"[४] इसीलिए ब्राह्मण उनकी तारीफ मे कहता है—"राजा साक्षात् प्रजापति है, इसी से वह बहुतो पर राज्य करता है ।"[५] "ऐन्द्राभिषेक से वह इन्द्र हो जाता है ।" अभिषेक के बाद गर्जना होती थी—"इसे साम्राज्य मिला, स्वराज्य मिला, वैराज्य मिला, यह स्वय परमेष्ठ हुआ, सारे ससार का स्वामी, पुरन्दर और धर्मरक्षक हुआ ।"[६]

इस प्रकार ब्राह्मणो और क्षत्रियो का गठबन्धन होने पर वैश्यो और शूद्रो की स्थिति बहुत गिर गई। पुरुष सूक्त मे वैश्य की उत्पत्ति जघा से बताई है परन्तु ताण्डय ब्राह्मण मे उसकी उत्पत्ति जननेन्द्रिय से कही गई है। "उसके पास बहुत पशु है इसलिए वह ब्राह्मणो और क्षत्रियो का भक्ष्य है।.. .उसे कितना भी खाया जाय वह नहीं घटेगा ।"[७] इतना ही नही—"वैश्य गधा है, सदा बधा हुआ. . . "[८] "शूद्र के पास कोई देवता नहीं, धर्म कृत्य नहीं । इसलिए वह अन्य जातियो की चरण सेवा करे ।" "उसे सदा इधर-उधर दौड़ाओ और चाहे जब निकाल बाहर करो । इच्छा हो पीट दो, चाहो तो मार भी डालो।"[९] "उसे किसी को दान देने या बेचने में हानि नहीं।" "वह चलता फिरता

१—शतपथ ब्राह्मण ३।२।४०-२

२—न वै ब्राह्मणो राज्यायालम्, शतपथ ब्रा० ५।१।१।१२

३—ब्राह्मणो मुख तो हिवीर्यं करोति मुखतो हिसृष्टः, ताण्ड्य ब्रा० ६।१।६

४—बाहुवीर्यो राजन्यो बाहुभ्यो हि सृष्ट·, ताण्ड्य ब्रा० ६।१।७

५—राष्ट्र वै प्रजापतेः प्रत्यक्षतमां यद्राजन्यतस्मादेकः सन्बहूना मोष्टे यद्वेव चतुरतरः प्रजापतिश्चतुरतरो राजन्यः, शत० ब्रा० ५।१।५।१४

६—ऐतरेय ब्रा० ३८।१

७—ऐ० ब्रा० ३८।१

८—शतपथ ब्रा० ११।२।३।१६

९—ऐत० ब्रा० ३५।३

श्मशान है, इससे उसके इतने निकट वेद न पढ़े कि वह सुन सके।"[1] "यदि वह जान बूझ कर श्रुति सुन ले तो लाह या सीसा गला कर उसके कान में डाल दो।"[2]

वैदिक संस्कृति और साहित्य की काल-मीमांसा

इन सब उद्धरणो से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि वैदिक सस्कृति का निर्माण बैबिलोनियन, आर्य और दास इन सस्कृतियो के मिश्रण से निर्मित हुआ है तथा वह सप्त सिन्धु में सुसम्पन्न हुआ। ऋग्वेद, जो वैदिक सस्कृति का केन्द्र है, का निर्माण सुमेरियन ऋचाओ से सबंधित हो प्रारम्भ हुआ और वह मसीह से ५ हजार वर्ष पूर्व से महाभारत काल के १०० वर्ष पूर्व तक निर्मित होता रहा। ऋग्वेद का निर्माण एलाम और सप्त सिन्धु मे प्रारम्भ हुआ। यजुर्वेद और अथर्व की रचना सप्त सिन्धु प्रदेश मे हुई तथा अथर्व की बहुत सी ऋचाओ का निर्माण परीक्षित के राज्य के बाद हुआ जो ईसा के पूर्व नवी शताब्दी के लगभग हो सकता है।

ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्

हेमचन्द्र राय चौधरी का यह मत है कि गुणाख्य शाख्यायन बुद्ध का समकालीन था और उद्दालक आरुणि उसके गुरु का गुरु था जो विदेह जनक का समकालीन था। शतपथ और बृहदारण्य उपनिषद मे वर्णित गुरु परम्परा के आधार पर साजीवि पुत्र उद्दालक से पाच पीढी बाद का ऋषि है। उस आधार पर शतपथ और बृहदारण्य उपनिषद की रचना बुद्ध के बाद की प्रमाणित होती है।

वैदिक आर्यों का श्रौत-स्मार्त धर्म तथा वैदिक संस्कृति का व्यापक विस्तार

जैसा कि हमने वर्णन किया है वैदिक आर्यो ने प्रथम पच सिन्धु प्रदेश (सिन्ध-पजाब) में प्रवेश किया-धीरे-धीरे शेष भारतीय अवैदिक प्रजा पर भी उनका प्रभाव फैल गया। इस प्रभाव का विस्तार दो रूपो मे हुआ—राज सत्ता के बल पर और ब्राह्मण पुरोहितो के द्वारा। इस सस्कृति की मूलभूत वस्तु थी—निसर्ग शक्तियो मे भूतपूर्व जनो के कल्पित चेतन देवो की यज्ञ द्वारा आराधना या उपासना। ऐहिक जीनन की आवश्यकताओ और भौतिक साधनो की उपलब्धि ही इन यज्ञो का ध्रुव ध्येय था। राजा राजसूय करके महाराज और महाराज अश्वमेध कर के सम्राट् बन जाता था। पुरोहित ब्राह्मण अनगिनत धन, दास-दासी आदि दान-दक्षिणा मे पा कर तथा राजाओ से सस्कृत और पूजित हो कर खूब सम्पन्न और अधिकार पूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इन पुरोहितो को प्रसन्न करने, राजाओ के निकट पहुंचने

१—आ० औ०

२—कात्या० औ० तथा आप० औ०

तथा विविध भौतिक अभिलाषाओ के लिए जन साधारण भी यज्ञ करते थे। काम्येष्ठि यज्ञ से और अथर्व वेद के प्रयोग से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यातु (जादू) भी यज्ञो का एक अंग था।

वेद में सूर्य, सविता, पूषन्, मित्र, भग, वरुण, विश्वकर्मन्, अदिति, त्वषा, उषस्, अश्वी, इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, मरुत्, रुद्र, पर्जन्य, अग्नि, सोम, यम, पितर आदि जिन देवो का सूक्तो मे ऋषियो ने वर्णन किया है, उन सूक्तो मे उन्हे सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ बताने की चेष्टा की है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक देवता परमेश्वर बनने लगा और उनकी मूल भिन्न शक्तिमत्ता लुप्त हो गई। यजुर्वेद के यज्ञो मे अवश्य देवो की पृथक् शक्तिमत्ता वर्णित की गई है। अथर्ववेद मे तो ये देवता जादू के माध्यम है, विशेषकर भृगु-आगिरस और अथर्वन् तो बडे भारी जादूगर प्रतीत होते है। ऋग्वेद के वशिष्ठ भी जादू मे दखल रखते है। वैदिक देवता, जो अति प्राचीन आर्य पुरुष ही थे, वेदो मे भौतिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली भौतिक शक्तियो मे कल्पित किये गये है। अग्नि और सूर्य शुद्ध भौतिक चमत्कृति-जनक चेतन शक्ति की भाँति कल्पित किये गये। मित्र और वरुण ये क्रमश दिन और रात के स्थान पर आरोपित हुये। सवितृ वर्षा ऋतु के पृथक् सूर्य के रूप मे परिचित हुआ। पूषण धान्य और वनस्पतियो का पोषण करने वाले वसन्तकालीन सूर्य में आरोपित हुआ। उषस् प्रभात की देवी और इन्द्र लडाकू, विजयी, अधिक मात्रा मे सोम पीने वाला, समूचे बैल को भून कर खाने वाला आकाश का देव हुआ। मरुत् मारने वाला इन्द्र का सहचर हुआ। ऋग्वेद के बुध सूक्त इन्द्र के रचे हुए है। ऋषि जब सूक्त रचने लगे तो इन्द्र ने उनमे प्रविष्ट हो कर सूक्त रचे। रुद्र पहिले तूफान का देवता था तथा अदिति अखण्ड आकाश का। यद्यपि सभी वैदिक देवताओ के भौतिक अधिष्ठान की उपपत्ति पूरी तौर पर नही बैठाई जा सकी, किन्तु भौतिक जीवन की भौतिक आकाक्षाएँ पूरी करने के लिए साधन प्राप्त करने की रीति यही हो सकती थी कि इन देव पुरुषो मे भौतिक शक्ति को आरोपित किया जाय। पहिले अग्नि और सूर्य पर ही बहुत सी भौतिक आवश्यकताएँ अवलम्बित थी इसलिए वैदिक ऋषि और गृहस्थो मे अग्निहोत्र का प्रचलन हुआ। पीछे पशुपालको मे दश पूर्णमासेष्ठि विधि मे गोपालन को प्रधान अग बनाया गया और इस विधि का फल स्वर्ग प्राप्ति बताया गया। वैदिक मन्त्रो की प्रार्थनाओ मे अन्न, पशु, धन, शरीर बल, पत्नी, दास, पुत्र, शत्रु नाश, रोग निवारण तथा तेज वर्चस आदि भौतिक इच्छाओ की ही माँग है। स्वर्ग ब्राह्मण ग्रन्थो में पीछे प्रविष्ट किया गया। यद्यपि वैदिक कर्मकाण्ड मे मरणोत्तर पारलौकिक गति का विचार है अवश्य-परन्तु उसका ठीक-ठीक विवरण वहाँ नही मिलता। देवयानगति, पितृयाणगति, अधतमस, देवलोक पितृलोक आदि का उल्लेख वेद मे है, परन्तु उनकी चर्चा उत्तर वैदिक साहित्य मे विशेषकर उपनिषद् मे ही है। यह एक बडी ही चमत्कारिक बात है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेद मे इन वस्तुओ की कल्पना मरणोत्तर नही है, यहा तक कि यम जो नरक के अधिपति देव कहे जाते है वास्तव मे सूर्य-पुत्र और वैवस्वत मनु के भाई थे। यह ऋचाओ के कर्ता भी है। ये अपवर्त जो वर्तमान

ईरान का एक भाग है के राजा थे। इस प्रदेश को ही मृत्यु लोक या दोजख कहते थे।[1] आप उपनिषद् मे इसी यम और नचिकेता का वार्तालाप देख सकते है। नचिकेता मृत्यु के भेद को जानना चाहता था—परन्तु यम उसे बताना नही चाहता था। सम्भव है कि यह कोई राजनीतिक या कूटनीतिक विषय हो—परन्तु यम और मृत्यु का जिन अर्थों मे हमे ज्ञान है उसने इस वार्तालाप को कुछ और ही रग दे दिया है यद्यपि उस रग मे उपनिषद् की उस बातचीत का कुछ भी अभिप्राय व्यक्त नही होता।

ऋग्वेद काल मे ब्रह्मचारी और गृहस्थ दो ही आश्रम विकसित थे। चार आश्रमो का उल्लेख उपनिषदो मे प्रथम बार आया है। गौतम धर्म सूत्र [2] मे तो यह स्पष्ट लिखा है कि वेद केवल एक गृहस्थाश्रम ही को मान्यता देता है। अथर्ववेद और ब्राह्मणो मे ब्रह्मचर्याश्रम का विधान उपनयन का विधान विस्तार से है, परन्तु छान्दोग्य उपनिषद् में चार आश्रमो का उल्लेख है। सच पूछा जाय तो वैदिक आर्यों ने वानप्रस्थ और सन्यास को अवैदिक सस्कृति से बहुत पीछे लिया है।

सस्कारो की कल्पना भी उत्तर साहित्य मे है। गौतम धर्म सूत्र मे,[3] जो सब स्मृतियो से प्राचीन है, यज्ञ को भी सस्कारो मे गिना गया है। वह चालीस सस्कार बताता है। अग्न्याधान, दश पूर्णमासेष्ठि, सोमयाग, पशु-बन्ध आदि को सस्कारो मे गिना है। गर्भाधान आदि सोलह सस्कारो का सम्बन्ध अथर्ववेद मे है। अथर्ववेद के कौशिक सूत्र एव गृह्य सूत्रो में यह सस्कार विधि वर्णन की गई है। बहुत कर के स्वामी दयानन्द ने वही से सस्कार विधि को ग्रहण किया है। परन्तु प्राचीन गृह्य सूत्रो मे 'सोलह सस्कार' ऐसा वर्गीकरण कही नही है।

दसवे मण्डल का चार वर्णो का उल्लेख ऋग्वेद का उत्तरकालीन है। 'ब्रह्म' और 'क्षम' शब्द अवश्य प्राचीन है पर वे वर्ण के वर्तमान अर्थों में नही। 'आर्य वर्ण' और 'दास वर्ण' भी आये है। इससे यह प्रकट होता है कि आर्यों की भाँति दासो का वर्ण भी महत्वपूर्ण था। हम बता चुके है कि विजित होने पर दासो को किस प्रकार आधीन होना पडा। वैदिकेतर भारतीय प्रजा को आधीन करने मे यज्ञ की धर्म संस्था ने बहुत मदद दी। "**प्रजापति ने यज्ञार्थ ही धन निर्माण किया है,**"[4] ऐसी कल्पना रूढ हो उठी। खास-खास अवसरो पर वैश्यो और शूद्रो

१—Yama was the first to arrive and to show the way to many to these vesty halls of Death or Dozakh as Iran was then called. H.P. Vol. I, 107-334-7

२—गौतम धर्म सूत्र ८।८

३—गौतम धर्म सूत्र ८।१४।२४

४—कात्यायनस्मृति

का धन अपहरण करना धर्मानुमोदित ठहराया गया। शूद्र प्रजा को चाहे जो दण्ड देने तथा उसे समाज से निकाल बाहर करने का किसी भी वैदिक आर्य को अधिकार था।[1]

स्मृतियो के कायदे कानून के अनुसार वैदिक आर्य ब्याज, मुनाफा और लगान शूद्रो या कनिष्ठों से उच्च वर्णों की अपेक्षा बहुत अधिक लेते थे। शूद्रो के हाथ मे कृषि, पशु पालन और सेवा ये कार्य थे। शिल्प और कृषि अच्छे धन्धे थे परन्तु उनका अधिकाश भाग ले लिया जाता था। शूद्रो से वार्षिक साठ टका ब्याज लेने का हक उच्च वर्गीयो को था।

श्रौत-स्मार्त धर्म के अनुयायियो ने खूब कस कर वैदिकेतर जनो को दासता में रक्खा और इसमे वैदिक सस्कृति की पवित्रता की सहायता ली। वैदिक धर्माचरण करने का उन्होने दूसरो को अधिकार ही नही दिया, खास कर पुरोहित का धन्धा तो दूसरा कर ही न पाता था। विश्वामित्र को पुरोहित का कार्य करने के कारण बडे-बडे लाछन और कष्टो का सामना करना पडा। 'व्रात्यस्तोम' विधि सामवेद के ताण्डय ब्राह्मण में है तथा कात्यायन के श्रौत सूत्र मे भी है। इसका उद्देश्य अवैदिको को वैदिक बनाने का था परन्तु इसका उपयोग बहुत कम होता था। धर्म सूत्रो और स्मृतियो मे शूद्र को वेद पढने पर प्राणदण्ड तक देने का विधान है। वैदिक यज्ञ और स्मार्त धर्म आर्य जन को पवित्रता तथा स्वामित्व देता था और यह पवित्रता उसे ब्राह्मण द्वारा प्राप्त होती थी। इसलिए आर्यों मे ब्राह्मण पुरोहितो का स्थान उत्तरोत्तर ऊँचा होता गया। लोग समझते है और गीता आदि ग्रन्थो मे कहा भी है कि ब्राह्मण वह है जो त्यागी, धर्मात्मा, ज्ञानी, शीलवान और जितेन्द्रिय हो, परन्तु स्मृति के कायदे के अनुसार यह बात नही है। मनु ब्राह्मण के कर्म दान लेना देना, वेद पढना पढाना, यज्ञ करना कराना ही बताते है। स्मृतियो के मत से ब्राह्मण यदि अन्य वर्ण की स्त्रियो से व्यभि-चार करे तो उसके लिए बहुत हल्का दण्ड है। वह सब वर्णो की स्त्रियो से विवाह कर सकता है, शूद्र स्त्रियो को रखैल या दासी की भाँति रख सकता है।[2] इसके विपरीत शूद्र या अन्य वर्ण वाला ब्राह्मण स्त्री मे व्यभिचार करे या विवाह कर ले तो उसे अत्यन्त कष्ट दे कर उसके प्राण लेने का विधान है। ब्राह्मण को किसी भी अपराध मे प्राण दण्ड नही मिल सकता। इस प्रकार समाज मे वैदिक जनो को अवैदिक जनो की अपेक्षा अधिक जन्मसिद्ध सुविधाए मिलती गई। श्रौत और स्मार्त कायदे कानूनो के अनुसार ब्राह्मण को भोग, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, सत्ता और सम्मान सम्बन्धी सर्वोपरि अधिकार प्राप्त हो गये। ब्राह्मण के लिए त्याग, तप, सयम आदि को कोई महत्व नही दिया गया। महत्व दिया गया केवल पुरोहिताई के स्थान को। न्यायदानका काम प्रथम ब्राह्मण को मिलता था—ब्राह्मण के न मिलने पर क्षत्रिय को, शूद्र को किसी भी हालत में नही।

१—यथाकामोत्थाप्यः। यथाकामवध्यः। ऐतरेय ब्रा० ३५।३

२—वशिष्ठ धर्म सूत्र ८।१६

ब्राह्मण के लिए ब्याज और लगान की दर सब से कम है। पुरोहित के सारे कर माफ है। उसे अपने से नीचे के व्यवसाय करने की आज्ञा है, पर ब्राह्मण का व्यवसाय कोई नही कर सकता। स्मृति धर्म के अनुसार प्राणान्त आपत्ति मे भी उच्च वर्ण के काम शूद्र नही कर सकते।

स्मृतियो का धर्मशास्त्र वर्णों के जन्मसिद्ध अधिकारो को सामान्य सामाजिक नियम के रूप मे स्वीकार करने के लिए बना। वेदो का विषय यज्ञीय कर्मकाण्ड है और उपनिषदो का ब्रह्मविद्या का व्याख्यान, परन्तु वर्णाश्रम धर्म का विस्तृत प्रतिपादन सूत्र ग्रन्थो और स्मृतियो मे है। यह श्रौत और स्मार्त धर्मशास्त्र वैदिक आर्यों के समाज और धार्मिक रीति रिवाज तथा कायदे कानून का शास्त्र है। वैदिक काल मे जो कायदे कानून तथा रीति रस्म रूढ होते गये उन्ही को ग्रन्थ रूप से सूत्रो और स्मृतियो मे सग्रह किया गया है। स्मृति का अर्थ है—वैदिक आर्यों के रीति-रिवाज और सामाजिक तथा धार्मिक नियमो की स्मरण पूर्वक की गई नोध, याददाश्त और सूचनाएँ। इसी से मनु आदि जोर दे कर यह कहते है कि स्मार्त धर्म वेद मूलक है। वेदोत्तर काल में जो नई बाते समाज मे प्रविष्ट हुई है उनका समावेश भी इन स्मृतियो मे है। इन स्मार्त ग्रन्थो मे गौतम, आपस्तम्ब, वशिष्ठ, शख, लिखित, मनु याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति आदि सब एक सी ही समाज सस्था का प्रतिपादन करते है, जिसमे मूलत ब्राह्मणो की श्रेष्ठता और शूद्रो की हीनता का महत्त्व प्रदर्शित है।

वेदोत्तर काल ही मे क्षत्रियो मे ब्राह्मणो की श्रेष्ठता के विपरीत आन्दोलन उठ खडा हुआ था। यह आन्दोलन दो रूपो मे खडा हुआ। एक तो यह कि कुछ क्षत्रिय ब्राह्मणत्व के अधिकार मागने लगे। विश्वामित्र और वशिष्ठ के झगडो का मुद्दा यही था। और भी कई कुल विश्वामित्र की भाँति ब्राह्मण हो गये।[1] दूसरा आन्दोलन क्षत्रियो की अपेक्षा ब्राह्मणों के अधिक अधिकारो के विपरीत था। एल, पुरुरवा, नहुष, वेन, हैहय, सहस्रार्जुन, वैतहव्य, सृञ्जय आदि राजा और राजवश ब्राह्मणो के श्रेष्ठत्व के विरुद्ध लडे। वेन ने यज्ञ और ब्राह्मणो की दक्षिणा का विरोध किया। ब्राह्मणो के कर माफ थे यह रियायत हैहय और वैतहव्य राजाओ ने रद्द कर दी।[2] उन्होने ब्राह्मणो की गौओ की जबर्दस्ती कुर्की कर ली। परशुराम ने ब्राह्मणो के इस अधिकार के लिए सगठित युद्ध किया। अत मे ब्राह्मण कुल, राजकुल, राजसस्था और पुरोहित महत्त्व आदि झगड़ो का निर्णय महाभारत सग्राम मे ही हुआ। उसमे क्षत्रिय वर्ग नष्ट हो गया और ब्राह्मण का स्थान समाज मे फिर दृढबद्ध हुआ। परन्तु इसी बीच क्षत्रियो ने

१—हरिवंश पुराण

२—अथर्ववेद

एक और दृढ कदम बढाया और उपनिषदो के रूप मे ब्रह्मतत्व स्थापित कर उस ब्रह्म ज्ञान से ब्राह्मणो को वचित करने की भरपूर चेष्टा की। इस ब्रह्मवाद ने कर्मकाण्ड और यज्ञ सस्था को दुर्बल कर दिया। उसमे जीर्ण होने के लक्षण व्यक्त होने लगे। यज्ञ धर्म का निर्वाह कठिन हो गया और वैराग्य, गम्भीर विचार, सदाचार, सत्य, अहिसा और अपरिग्रह के आधार पर अवैदिक धर्म के सगठन होने लगे।

शून्य

डाक्टर त्रिलोकी नारायण दीक्षित, एम० ए०, पी-एच० डी०

'शून्य' शब्द का अर्थ है 'अभाव' वा 'नास्ति'। जिसका अस्तित्व नही है, जो वर्तमान नही है, वही शून्य है। जिसका अस्तित्व असार है अथवा मूल्यहीन है वही शून्य है। सन्तो ने ससार मे 'राम' और 'नाम' के अतिरिक्त सभी कुछ शून्य कहा है। तात्विक दृष्टि से उनका तात्पर्य यही था कि ससार मे सभी वस्तुए अविद्या माया से आवृत है। माया विनाशशील है इसीलिए उससे आवृत वस्तु या व्यक्ति विनाशशील है। जिस दृष्टिकोण से उन्होने ससार को देखा था वह प्रत्येक वस्तु मे अस्थायित्व देखता था, प्रत्येक व्यक्ति मे विनाश के तत्व देखता था। वस्तुत इसी कारण उन्होने इस समस्त ससार को 'शून्य' कहा। समक्ष भवन खडा है, प्रासाद वर्तमान है, उस पर चित्रकारी अकित है, आवश्यक सामग्री से सुसज्जित है, पायलो क मधुर सगीत की ध्वनि मे भरा हुआ है पर सन्तो ने उसे भी शून्य कहा। यही नही पर्वत जिन्हे हम अचल कहते है, अटल समझते है, उन्हे भी 'असार' और 'शून्य' कहा गया है। सन्तो मे से प्राय सभी ने 'शून्य' शब्द का प्रयोग किया है और एक विशिष्ट अर्थ मे।

सन्तो का आविर्भाव बौद्धो की परम्परा मे हुआ। कहना न होगा कि सन्तो की विचारधारा पर बौद्धो की धार्मिक विचारधारा एव चिन्तन की छाया स्पष्ट रूपेण परिलक्षित होती है। सन्तो ने बौद्धो की अनेक विचारधाराओ को यथातथ्य ग्रहण कर लिया है। उसी प्रकार उन्होने बौद्धो के परम्परा मे प्रयुक्त अनेकानेक शब्दो को भी यथातथ्य हू-ब-हू अपना लिया है। शून्य शब्द भी उन्ही अनेक शब्दो मे है जिसका जन्म बौद्धो के द्वारा हो कर सन्तो के शात साहित्य तक जीवित दृष्टिगत होता है। 'शू' तथा 'न्य' अक्षरो से विनिर्मित 'शून्य' अपने बाह्य रूप मे प्राय सभी द्वारा ग्रहीत हुआ पर उसकी आत्मा को प्रत्येक धारा अपनी इच्छानुसार अपने अभिप्राय के अनुकूल अपने वेग मे बहा ले गई। "शून्य मितिइण ससार" सिद्धान्त को तो सभी ने स्वीकार किया पर शून्य किस प्रकार हुआ और किस प्रकार मान्य है इसमे वाद-विवाद और मतभद है। 'शून्य' के बाह्यावरण पर मतैक्य रहा पर मतातर पडा जा कर "केन प्रकारेण" पर।

'शून्य' शब्द हमारे धार्मिक साहित्य के लिए क्या सर्वथा अभिनव है ? नही। वह भाषा मे अन्य शब्दो के साथ बना और प्रयुक्त हुआ। अन्तर यहाँ केवल प्रयोग मे है। वैदिक साहित्य मे 'शून्य' का जिस दिशा मे प्रयोग हुआ है उससे कुछ भिन्न ही अर्थ मे प्रयोग हुआ बौद्ध धर्म मे।

फिर महायान सम्प्रदाय मे जा कर 'शून्य' शब्द एक "वाद" का वाहक बना और एक सिद्धान्त का जन्मदाता। महायान सम्प्रदाय मे स्वत 'शून्य' के नामकरण पर विद्वानो और विचारको का मत वैषम्य है। सिद्ध सम्प्रदायावलम्बी साधको ने इसका प्रयोग किया, नाथ सम्प्रदाय वालो ने भी किया पर दोनो के प्रयोगो मे कुछ अन्तर रहा। वास्तव मे 'शून्य' शब्द भारतीय साहित्य के अत्यधिक मनोरजक शब्दो मे से एक है। प्रत्येक सम्प्रदाय ने इसका प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों मे क्यो किया, इसका उत्तर तो कोई भाषा शास्त्री ही दे सकेगा।

भगवान गौतम बुद्ध के सिद्धान्तो का पूर्ण परिपाक माध्यमिक मत के अन्तर्गत माना जाता है। इसी मत मे बुद्ध की शिक्षाओ के सिद्धान्तो की आत्मा झलकती है। नागार्जुन महायान सम्प्रदाय के अनन्य प्रसिद्ध आचार्य थे। उन्होने माध्यमिक मत की तार्किक विवेचना की। इस मत के जिन सिद्धान्तो की व्याख्या 'प्रज्ञापारमित सूत्रो' मे हो चुकी थी, नागार्जुन ने उन्ही की विवेचना और प्रसार के लिए माध्यमिक कारिका की रचना की। बुद्ध ने जीवन की दो चरम सीमाओ अखड तापस एव भोग-विलासका त्याग कर मध्यस्थ मार्ग की शरण ग्रहण की इसी कारण इस सिद्धान्त का नामकरण 'मध्यम मार्ग' हुआ। तत्व विवेचन मे शाश्वतवाद तथा उच्छेदवाद के दोनो एकागी मतो का परिहार कर आपने "मध्यम मत" को ग्रहण किया। बुद्ध के 'प्रतीत्य समुत्पाद' के सिद्धान्त को विकसित कर शून्यवाद की प्रतिष्ठा की गई। अत बुद्ध के द्वारा प्रतिपादित मध्यम मार्ग के दृढ पक्षपाती होने के कारण यह 'माध्यमिक' सज्ञा से अभिहित किया जाता है तथा शून्य को परमार्थ मानने से 'शून्यवादी' कहा जाता है। माध्यमिक मार्ग के प्रचार एव प्रसार मे नागार्जुन का बडा हाथ रहा। माध्यमिक कारिका की रचना कर के जहा एक ओर उन्होने अपनी तार्किक प्रतिभा, असाधारण पाण्डित्य का उदाहरण प्रस्तुत किया, वही दूसरी ओर जगत् की सम्पूर्ण धारणाओ को तर्क की कसौटी पर कस कर नि सार उद्घोषित किया। विक्रम की द्वितीय शती मे इन्ही के विचारो को अधिक स्पष्ट करने के हेतु इन्ही के शिष्य आर्यदेव ने एक ग्रन्थ की रचना की। तृतीय एव चतुर्थ शताब्दी (विक्रमीय) मे कोई बडा विद्वान् नही हुआ, जो इस दिशा मे (शून्यवाद के लिए) कुछ लिखता। पाचवी शताब्दी मे महायान सम्प्रदाय की विचारधारा के दूसरे अग 'विज्ञानवाद' का प्राबल्य रहा। छठी शताब्दी मे शून्यवाद का पुन विकास हुआ पर वह हुआ दक्षिण मे। आचार्य भव्य ने उडीसा प्रान्त तथा आचार्य बुद्ध पालित ने बलमीर (गुजरात) प्रदेश मे इसका प्रचार किया। यद्यपि ये दोनो ही आचार्य शून्यवाद के ही प्रचारक थे, पर दोनो क दृष्टि-कोण मे अन्तर था। बुद्धपालित के मतानुसार शून्यता के व्याख्यार्थ समस्त तर्क व्यर्थ है। य शून्यता के ज्ञान का प्रसाधन प्रतिभा-चक्षु ही मानते थे। इसी कारण इनके द्वारा सम्पादित सम्प्रदाय माध्यमिक प्रासगिक नाम से विख्यात हुआ। आचार्य भव्य ने नागार्जुन प्रतिपादित विचारधारा 'माध्यमिक मत' को जनता मे समझाने के लिए स्वतत्र एव नवीन तर्कों की

सहायता ली। फलत इनके सम्प्रदाय का नाम हुआ 'माध्यमिक स्वातन्त्रिक'। जनता पर इस प्रचार का अच्छा प्रभाव पडा। सप्तम शताब्दी (विक्रमीय) में आचार्य चन्द्रकीर्ति के द्वारा शून्यवाद के सिद्धान्तों का चरम विकास हुआ। इन्होंने अपने तर्कों के द्वारा आचार्य भव्य के तर्कों को निर्मूल सिद्ध कर दिया और इस प्रकार चीन, तिब्बत, मगोलिया आदि मे शून्यवाद के सिद्धान्तो के साथ ही अपनी ख्याति को स्थायित्व प्रदान किया। आचार्य चन्द्रकीर्ति के पश्चात् शान्तिदेव का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने भी शून्यवाद के प्रचार के लिए तीन ग्रन्थो की रचना की। तिब्बत प्रदेश मे वे अपनी ख्याति से आज भी जीवित है, यद्यपि उनके भौतिक शरीर को सप्तम शताब्दी मे ही निर्वाण प्राप्त हो गया था। अष्टम शताब्दी मे माध्यमिक स्वतत्र सम्प्रदाय के आचार्य शान्तिरक्षित स्मरणीय है। इनका निर्वाण काल सन् ७६२ ई० मान्य है। सन् ७४९ ई० मे तिब्बत के राजा के निमन्त्रण पर वहाँ जा कर इन्होने वहाँ पर बडी लगन के साथ जनता मे भगवान् के सिद्धान्तो का प्रचार किया। इस प्रकार से अष्टम शतक तक बौद्ध धर्म मे शून्यवादी विचार कई धाराओं में प्रवाहित हुआ। निम्नांकित स्केच से इसका सम्यक् परिचय प्राप्त हो जाता है --
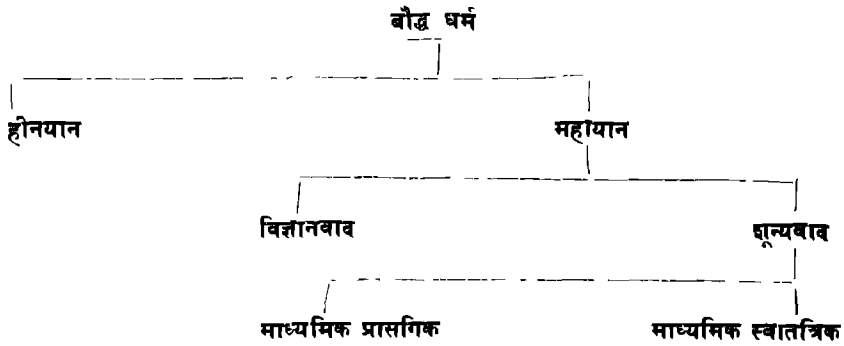
सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से शून्यवाद के सिद्धान्तो को कई विद्वानो एव प्रचारको ने जनता में प्रचारित किया। इन सिद्धान्तो की सूची निम्नलिखित है --

क्रम सख्या सिद्धान्त

१. **ज्ञान मीमांसा**
२. **सत्ता परीक्षा**
३ **कारणवाद**
४. **स्वभाव परीक्षा**
५. **द्रव्य परीक्षा**
६. **जाति**

७. संसर्ग विचार
८ गति परीक्षा
९. आत्म परीक्षा
१०. कर्मफल परीक्षा
११. ज्ञान परीक्षा
१२ सत्ता मीमांसा
१३. परमार्थ सत्य
१४. व्यवहार की उपयोगिता

'शून्य' शब्द तथा शून्यवाद को समझने के लिए इनका अत्यन्त संक्षिप्त विवरण आवश्यक प्रतीत होता है।

ज्ञान मीमांसा

सर्व प्रथम सिद्धान्त है 'ज्ञान मीमांसा' का। नागार्जुन ने अपनी तर्क प्रतिभा के आधार पर यह सिद्ध किया कि यह जगत् मायिक है। स्वप्न जगत् के पदार्थों की भाँति संसार भी नि सार, निराधार और क्षणिक है। संसार प्रसिद्ध सम्बन्धो का संग्रह मात्र है। इस संसार में सुख, दुख, गति, विराम, बन्ध और मोक्ष आदि समस्त धारणाएँ स्वप्नवत् शून्य एव कल्पना उद्भूत हैं।

सत्ता परीक्षा

इस के अन्तर्गत माध्यमिक आचार्य इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समस्त सत्ता शून्य रूप है। प्रमाण एव तर्क सत्ता को प्रमाणित करने मे असमर्थ है। भगवान् बुद्ध का कथन "नहि चित्त चित्त पश्यति" इस सिद्धान्त का समर्थक है। चित्त स्वय ही अपने को देखने मे सर्वथा असमर्थ है। तीक्ष्ण असिधार दूसरी वस्तुओ को काटने मे समर्थ है, स्वत अपने को नही।[1] ज्ञेय, ज्ञाता, ज्ञान भिन्न-भिन्न पदार्थ है, एक नही। तीनो का त्रिस्वभाव होना सम्भव नही है। आर्यरत्न चूडसूत्र की उक्ति इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। चित्त का विकास, उसकी उत्पत्ति आलम्बन के अभाव मे सम्भव नही है। चित्त आलम्बन से न भिन्न है, और न अभिन्न। तलवार से कही तलवार काटी जा सकती है ?

कारणवाद

दार्शनिको एव वैज्ञानिको का दृढ विश्वास है कि जगत का सचालन कार्य-कारण नियम के आधार पर होता है, पर इस बात का श्रेय नागार्जुन को है कि उन्होने तर्क के आधार पर इसको नि सार सिद्ध कर दिया। कार्य-कारण की स्वतन्त्र रूपेण कल्पना निराधार है। कोई

---

१ बौद्ध दर्शन, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ३१२, ३१३

भी पदार्थ कार्य एव कारण मे भिन्न नही माना जा सकता है। नागार्जुन ने सिद्ध किया कि पदार्थ न तो स्वत उत्पन्न होते है और न दूसरो की सहायता से उत्पन्न होते हैं।

स्वभाव परीक्षा

समार के समस्त पदार्थ किसी हेतु से उत्पन्न होते हैं। अत उन्हे स्वतन्त्र सत्तावान् नही सिद्ध किया जा सकता है। आलम्बन के हटते ही अवलम्बित पदार्थ स्वत विनष्ट हो जाता है। अतएव ससार मे किसी पदार्थ की स्वतन्त्र सत्ता कल्पना मात्र है।

द्रव्य परीक्षा

सामान्यतया जगत मे द्रव्य की सत्ता मात्र है पर परीक्षोपरान्त वह कल्पना मात्र रह जाती है। नागार्जुन ने द्रव्य के पारमार्थिक रूप का निषेध करके भी व्यावहारिक रूप का अपलाभ नही किया है।

जाति

जाति का रूप, आकार क्या है? क्या यह उन पदार्थो से पृथक् है जिनमे इसके निवास की कल्पना है? तर्को पर नागार्जुन ने इसे शून्य सिद्ध किया, सत्ताहीन और निराधार माना।

संसर्ग विचार

ससार सम्बन्ध का समुदाय माना गया है। पर यह ससर्ग का सम्बन्ध असत्य है। अत जगत् की कल्पना निर्मूल है।

गति परीक्षा

माध्यमिक परीक्षा के द्वितीय प्रकरण मे नागार्जुन ने लोक प्रचलित गति या गमन क्रिया की तीव्र आलोचना की। उनके अनुसार गति और स्थिति दोनो ही मायिक है।

आत्म परीक्षा

उक्त ग्रन्थ के १८वे प्रकरण मे लेखक ने आत्म परीक्षा पर विचार किया है। अभी जो द्रव्य की कल्पना समझाई गई है उससे स्पष्ट होगा कि गुण समुच्चय के अतिरिक्त उसकी स्वतन्त्र सत्ता नही है। इसी नियम का प्रयोग कर हम कह सकते है कि मानस व्यापारो के अतिरिक्त आत्मा नामक पदार्थ की पृथक् सत्ता नही है। नागार्जुन की विशाल समीक्षा का सार प्रस्तुत श्लोक है —

आत्मेत्यपि प्रज्ञापित मनात्मेत्यपि देशितम्।
बुद्धै नात्मा न चानात्मा कश्चिदित्यपि देशितम्॥

(मा० का० १८।६)

कर्मफल परीक्षा

कृत कर्म का फल अवश्य प्राप्त होता है, यह लोक विश्वास है। पर कर्मफल के इस सिद्धान्त की नागार्जुन ने बडी निन्दा की है। उन्होने कहा है कि आवश्यक नही है कि कर्म का फल प्राप्त ही हो। नागार्जुन के शब्दो में —

फलेऽसति न मोक्षाय न स्वर्गायोपपद्यते।
मार्गः सर्वक्रियाणा च नैरर्थक प्रसज्जते ॥

ज्ञान परीक्षा

ज्ञान का स्वरूप बडा ही विवाद पूर्ण है। दर्शन, श्रवण, घ्राण, रसन, स्पर्श और मन ये ६ इन्द्रिया है। विषयो का प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रियो के साधन से होता है। पर यह सत्य नही है, आभास मात्र है जो निरा निराधार है। साधारण दृष्टि से चाहे वे सत्य प्रतीत हो पर तथ्य तो प्रतिकूल है। नागार्जुन की तर्क समीक्षा का यही प्रतिफल है कि शून्य ही एक मात्र सत्ता है, जगत प्रति-बिम्बवत् क्षणिक है।

परमार्थ सत्य

वस्तु का वास्तविक स्वरूप ही सत्य है, परमार्थ है। वस्तु को यथार्थ रूप मे देखने वालो का सत्य सावृतिक सत्य मे सिद्धान्तत भिन्न है। वास्तव मे परमार्थ है समस्त धर्मो की नि स्वभावता। ससार के सभी प्रतीत्यसमुत्पन्न पदार्थों की स्वभावहीनता ही परमार्थ का स्वरूप है। हेतु प्रत्यक्ष से समुत्पन्न होने के कारण उसका कोई विशिष्ट रूप नही है। निर्वाण ही परमार्थ सत्य है, परमार्थ सत्य मौन रूप है।

व्यवहार की उपयोगिता

व्यवहार के आश्रय के अभाव मे परमार्थ का उपदेश सम्भव नही है और परमार्थ के बिना निर्वाण असम्भव है। नागार्जुन के शब्दो मे —

व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते।
परमार्थक नागम्य निर्वाण नाधिगम्यते ॥

इस प्रकार 'माध्यमिक प्रासगिक' के प्रतिपादक नागार्जुन ने इन उपर्युक्त सिद्धान्तो के आधार पर तर्क के द्वारा जगत् के सभी तत्वो को नि सार, शून्य निर्धारित किया। नागार्जुन द्वारा तार्किक दृष्टि से शून्य सिद्ध होने वाले इन सिद्धान्तो का चित्र इस प्रकार से होगा —
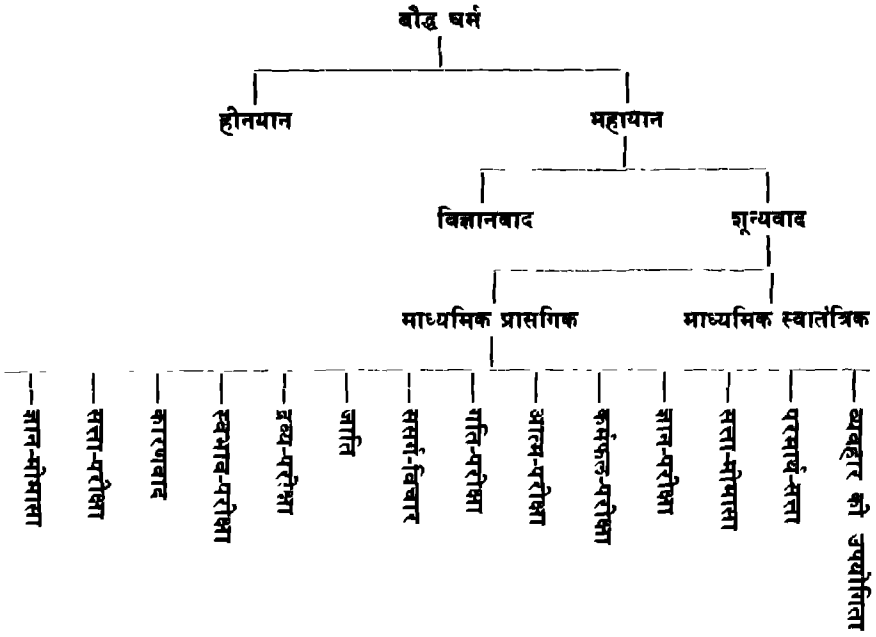
शून्यवाद

यही परमार्थ सत्य ही 'शून्य' नाम से अभिहित हुआ। 'शून्य' शब्द के आधार पर इस वाद का निर्माण हुआ। शून्यवाद के इस तात्विक स्वरूप के निरूपण मे विचारको का बडा मत-वैषम्य है। हीनयानी आचार्य एव ब्राह्मण जैन विद्वानो ने शून्य शब्द का अभिप्राय सत्ता का निषेध या अभाव किया। माध्यमिक आचार्यो के ग्रन्थो मे शून्य का अर्थ 'नास्ति' या 'अभाव' नही सिद्ध होता है। नागार्जुन ने शून्य की व्याख्या 'शून्याशून्य' कह कर की, अर्थात् यह शून्य भी नही है और अशून्य भी नही है फिर भी इसे शून्य भी नही कह सकते है और अशून्य भी नही कह सकते है। शून्य शब्द का प्रयोग इसी भाव को ज्ञापित करने के लिए होता रहा है। नागार्जुन के शब्दों मे —

> शून्यमिति न वक्तव्य शून्यमिति वा भवेत्।
> उभय नोभयं नैव प्रज्ञाप्यर्थं तु कथ्यते ।।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि महायान सम्प्रदाय के साधना एव चिन्तन पक्ष मे शून्य के विषय मे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्द्धन और परिवर्तन हुये । वज्रयान के विचारको की कृपा से शून्य-वाद ही ससार का 'सारतत्व' निर्द्धारित हुआ। 'शून्य' शून्य न रह गया वरन् माया के अतिरिक्त ससार में जो भी है उसे 'शून्य' सज्ञा दी गई। यहा तक कि ससार के सभी देवी-देवताओ की कल्पना

विनष्ट हो गई और रह गया केवल 'शून्य'। इस सम्बन्ध मे श्री क्षितिमोहन सेन का यह कथन पठनीय है—

"शहायान शायनाय शून्य तत्वटि क्रमश नाना भाव शूखे ओ ऐश्वर्य भारिया उठिते लागिल। क्रमें माध्यमिक मतवादे बुद्ध, धर्म, ईश्वर, शबाई शून्य होइया उठिलेन। बज्रयान योगाचार प्रभृति मतवादी देर कृपया शून्यई क्रमे होइया दांडाइल विश्वेर मूलतत्व। शून्य छाडा बिश्व जगत् देव देवी प्रभृति कि छुई किछू नय शवई माया।" (दादू, पृ० १७९)

इन्ही मतवादियो की विचारधारा से प्रभावित होने के कारण हिन्दी के सिद्ध कवियो के उपदेशो मे एक मात्र 'शून्य' का ही गुण गान उपलब्ध होता है। 'शून्य' उस अवस्था का द्योतक है जहा द्वैत भावना विनष्ट हो जाती है और सत्, चित, आनन्द की अनुभूति साधक को होने लगती है। यह 'शून्य' शरीर, मन एव प्रज्ञा की पहुच के ऊपर है। सिद्धो मे यही 'शून्य' 'परमतत्व' है, यही 'परमसुख' है। यही शून्य उनकी साधना का 'चरम लक्ष्य' था। बौद्धधर्म की परम्परा मे होने के कारण ही इन सिद्धानीश्वरवादियो ने इस परम सुख 'ब्रह्मानन्द' की कल्पना नही की।

नाथ सम्प्रदाय मे शून्य शब्द का बड़ा प्रयोग हुआ है। सर्व प्रथम 'गोरख बोध' मे गोरख नाथ और मत्स्येन्द्रनाथ के वार्तालाप मे शून्य शब्द का प्रयोग देखिये —

गोरख कुण बोलै कुण सोवै,
कुण रूप में माया जोवै,
कुण रूप में जुगजुग रहै ?
सद्गुरु होइ सो पूछै कहै।

मछंदर शब्द बोलै सुरति सोवै।

गोरख कुणि सुनि उत्पन्ना,
सुमि सुनि गुरि बुझाई,
कुण सुनमें रहा समाई ?

मछन्दर सहजेन सुनि उत्पन्ना,
सगि सुनि सतगुरु बुझाई,
अजित सुनि में रहा समाई।

स्पष्ट है कि सहज मे अजित आत्मा ही शून्य मे लीन हो जाती है। गोरखनाथ के काव्य मे 'शून्य' शब्द खूब प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ कुछ पक्तिया यहा उद्धृत है —

बसती न सुन्य सुन्य न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिखर महि बालक बोलै ताका नावधर हुगे कैसा॥

(गोरखबानी पृ० १)

सत मत मे 'शून्य' विषयक धारणा में पूर्णतः एक नवीन और महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। ऊपर के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि नाथ सम्प्रदाय मे 'शून्य' का सकेत ईश्वर की ओर है पर सत मत मे इस धारणा मे और भी विकास हुआ। सत मत मे शून्य शब्द का प्रयोग निर्गुण सर्वात्मा के लिए भी हुआ है और 'सहस्र दल कमल' के लिए भी। सम्भवत इसलिए कि ब्रह्म के निवास स्थान की कल्पना योगियो ने सहस्र दल कमल मे की है और 'ब्रह्म' शून्य है इसलिए उसका निवास स्थान भी 'शून्य' ही है। ब्रह्मरन्ध्र का छिद्र शून्याकार होता है। इसी शून्याकार मे कुडलिनी का सयोग होता है। ब्रह्म का वास स्थान यही माना जाता है। साधक एव योगी इस रन्ध्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहते है। इसी शून्याकार के छ द्वार है जिन्हे कुडलिनी के अतिरिक्त और कोई भी नही खोल सकता है। इसी की साधना मे योगी रत रहते है। डाक्टर रामकुमार वर्मा ने सतमत मे 'शून्य' के विकास के विषय मे लिखा है—"इसी 'शून्य' को कबीर ने आगे चल कर सहस्र दल कमल का 'शून्य' माना है जहा अनहद नाद की सृष्टि होती है और ईश्वर की ज्योति के दर्शन होते है।" (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, द्वितीय सस्करण, पृ० १५३) परन्तु सन्तो का काव्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होने शून्य को दोनो ही अर्थों मे ग्रहण किया, केवल सहस्र दल कमल के अर्थ मे नही जैसा कि डाक्टर वर्मा का मत है। इस विषय पर सन्तो की कुछ बानिया विचारणीय एव अध्ययनीय है।

ऊपर उल्लेख हो चुका है कि सन्तो ने शून्य शब्द का प्रयोग दो अर्थों 'ब्रह्म' एव 'शतदल कमल' म किया है। इस शब्द का प्रयोग कबीर, दादू, नानक, मलूक, गरीबदास, धरनीदास, रैदास, यारी साहब चरनदास, दूलनदास आदि सभी सन्तो ने अपने काव्य मे किया है। शून्य शब्द का प्रयोग 'सहस्र दल कमल' के अर्थ मे करने वालो मे विशेष रूपेण उल्लेखनीय है कबीर दास, चरनदास, धरनीदास, भीखा, तुलसी साहब, रैदास और धनी धर्मदास एव यारी साहब, गरीबदास, धरनीदास, भीखा, दयाबाई, सहजोबाई, पलटू साहब, तुलसी साहब आदि उन सन्तो मे उल्लेखनीय है, जिनके 'शून्य' शब्द से निर्गुण सर्वात्मा की ओर सकेत मिलता है। प्रथम वर्ग के इन मतवादियो ने "सुन्न गढ", "सुन्न महल" "सुन्न मडल," तथा "सुन्न बस्ती" मे विचरण करने का उल्लेख भी किया है और इन्ही मे से कतिपय सन्तो ने "सुन्न सरोवर" में स्नान करने का वर्णन भी किया है।

अन्य साधको की अपेक्षा 'सुन्न सिखर' और 'सुन्न गढ' मे प्रवेश पाने के लिए कबीर अधिक उत्सुक एव व्यग्र प्रतीत होते है। ऐसा ज्ञात होता है कि कबीर को उस शिखर पर अधिकार प्राप्त था। वे उस दिव्य प्रदेश की झाकी पा चुके थे और वहा के अक्षय सुख का भी अनुभव कर चुके थे। इसीलिए वे टन्टे-बन्टे मे मस्त, बाह्याडम्बरो मे सलग्न साधको को 'सुन्न गढ' पर विजय

प्राप्त करने अथवा सुन्न मडल मे प्रवेश करने एव उद्योगशील होने के लिए उपदेश देते हैं।[१] 'सुन्न मडल' में प्रवेश पाते ही अनहद नाद की माधुर्य से ओतप्रोत सगीतात्मक ध्वनि प्रतिश्रुत होने लगी। मोह और अज्ञान का प्रकाश तिरोभूत हो गया, दिव्य प्रकाश से जीवन आलोकित हो गया और दीनदयालु के दर्शन हुये।[२] इसी प्रकार स्थान-स्थान पर साखियो में कबीर ने 'सुन्न महल' मे नौबत, किंगरी एव सितार आदि वाद्यो के ध्वनित होने का और उनके अनुभव का उल्लेख किया है। गरीबदास ने 'सुन्न सिखर' मे हस के विश्राम[३] एव 'सुन्न सरोवर' मे हस के स्नान[४] करने का वर्णन किया है। इसी प्रकार गरीबदास ने 'सुन्न बस्ती,'[५] 'सुन्न मडल,'[६] 'सुन्न सरोवर,'[७] 'सुन्न सिखर गढ'[८] आदि का वर्णन किया है जहा शब्दातीत ब्रह्म का निवास स्थान है।[९] गरीबदाम ने सुन्न सरोवर मे स्नान करने[१०] और सुन्न महलमे प्रवेश के लिए[११] साधन करने का अनेक बार उपदेश दिया है। कबीर एव गरीबदास की भाति ही सुन्न सरोवर, एव सुन्न महल के लिए साधको को प्रयत्नशील रहने के लिए सचेष्ट करनेवालो मे चरनदास,[१२] धरनीदास,[१३] भीखा[१४], तुलसी साहब,[१५] रैदास,[१६] धनी धर्मदास[१७] और यारी साहब[१८]

---

१ रोम रोम दीपक भया प्रकटे दीनदयाल। स० वा० स०, भाग १, पृ० ८

२ सुन्न मडल मे घर किया बाजे सबद रसाल।

३ सुन्न महल मे नौबत बाजै किंगरी बीन सितारा।

४ सुन्न सिखर के महल मे हस कियो विश्राम। गरीबदास की बानी, १

५ गरीबदास की बानी, पृ० १८

६ " " २१ ३२

७. " " १९

८. " " २५ ३३

९ " " २६

१० स० वा० स०, भाग १

११ " " " " २, पृ० १९९

१२ चरनदास की बानी, पृ० ५१, १२०

१३ धरनीदास की बानी, पृ० १५

१४ भीखा साहब की बानी, पृ० १०, १७, ४०, ६४

१५ स० वा० सग्रह, पृ० २३३

१६ " " भाग २, पृ० ३३

१७. " " " ४२

१८. " " " ११ १४५

उल्लेखनीय है। धनी धर्मदास ने तो एक स्थान पर [1] सुन्न महल से अमृत की वर्षा का हवाला दे कर सतो को उसी में नहाने के लिए उपदेश किया है —

सुन्न महल से अमृत बरसे। प्रेम अनन्द ह्वै साध नहाय ॥
खुली किवरिया मिटी अंधरिया। धन सतगुरु जिन दिया है लखाय ॥

और यारी साहब ने सुन्न (सहस्र दल कमल) को अन्य सन्तो की भाति बड़े स्पष्ट शब्दो में 'मालिक' के निवास का स्थान बताया है —

सुन्न के मुकाम में बेचून की निसानी है।
जिकिर रूह सोई अनहद बानी है ॥
(स० बा० स०, भाग २, पृ० १४५)

शून्य शब्द से ब्रह्म की ओर सकेत करने वालो की सूची ऊपर दी जा चुकी है। कथन के समर्थन मे कतिपय साखिया यहा उदाहरणार्थ उद्धृत की जाती हैं —

गरीबदास

सुन्न विदेसी मिल गया छत्र मुकट है सीस।
(बानी, पृ० ११)

सुन्न सनेही रम रहा दिल अन्दर दीदार।
(बानी, पृ० २०)

धरनीदास

सर्व सुन्न कै सुन्न एकै, दूसरी जनि राख।
(बानी, पृ० ३५)

भीखा

बहतो सुन्न निरन्तर धुधुकत, निज आतम बरसाई।
(बानी, पृ० ३२ तथा देखिये पृ० ४१, ४२, स० बा० भाग १, पृ० २१३)

इस प्रकार प्रत्येक विचार धारा मे उसके मतवादियो की कृपा से 'शून्य' शब्द का अर्थ बदलता गया। आज शून्य का अर्थ नितान्त भिन्न अर्थ मे ग्रहण किया जाता है।

---

१. स० बा० संग्रह, भाग २ पृ० ४२

आज का गुजराती साहित्य

श्री जगदीश गुप्त

[गताक से आगे]

काव्य

गुजराती कविता की नव चेतना का आरम्भ नर्मद युग (१८३३-१८८६ ई०) से होता है। पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी मे जो स्थान हरिश्चन्द्र का है गुजराती मे वही नर्मदाशकर का। नर्मद का व्यक्तित्व अनेक दिशाओ मे प्रकट हुआ जो उनकी रचनाओ नर्म-गद्य, नर्म-कोश, नर्म-कथाकोश और नर्म-कविता मे स्पष्ट है। वह केवल कवि ही नही थे परन्तु काव्य मे उनका स्थान विशेष रूप से आदरणीय है। लगभग सभी नवीन विषयो पर उन्होने काव्य-रचना की। प्रकृति और स्वदेश के प्रति वे मुख्यतया जागरूक थे। महाकाव्य और महाछदो के स्वप्नदर्शी नर्मद का व्यक्तित्व गुजराती साहित्य मे अद्वितीय है। उनकी उग्र लेखनी और क्रान्तिकारी भावनाओ ने पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। वे स्वतन्त्रता को पुकार कर कह उठे—

ओ स्वतन्त्रता जनदेवि ! रूठि गई क्याह
तु विना प्राणि नव जिवे।

और बलि-पथ के राही को उत्साह दिलाते हुए लिख गये—

झट झट चालो जी
समरांगणमा जो, रंगमचावता जो,
उत्साहे उत्साहे।
शुभ स्वतन्त्रता ने गाने,
उर प्रफुल्ल करी अभिमाने समरागणवाने धाये
सुभट सहु उत्साहे उत्साहे।

दूसरा प्रभावशाली व्यक्तित्व दलपतराय (१८२०-१८९८ ई०) का है। इनका ध्यान पिगल शास्त्र की ओर अधिक आकृष्ट हुआ और 'दलपत पिगल' की रचना हुई। छद-रचना पर इन्होने पर्याप्त प्रभुत्व भी पा लिया और सामाजिक जीवन की तमाम प्रवृत्तियो को अपने काव्य

का विषय बनाया। हरिऔध की तरह इन्होने सस्कृत वृत्तो का प्रयोग किया। यथा शार्दूल विक्रीडित —

हे प्यारा हरि हुं हमेश हठ थी फूड्यो फुडा कर्ममा।
पामी दड पवित्र पाँच पगलां धर्यां नहीं धर्म मां॥
पापी साथ प्रपंच पाप पडमां भूल्यो भम्यो भवे।
तारे साथ अनाथ नाथ मुजने ले हाथ झाली हवे॥

इसी प्रकार अन्य कवियो ने भी संस्कृत वृत्तो मे रचना की। एक छद मे तो हरिऔध के प्रियप्रवास की झलक आ जाती है —

धीमे धीमे ध्वनन मधुरे वेणु-सूरे छवाता।
केकोत्कंठा थनथननता मोर पिच्छे सुहाता॥
सोनेरी कं धरि उपरनी बीजळी सामळाअे।
काना आव्या हजी य हठिला मीठडा मेहुला अे॥

नर्मद और दलपत दोनो ही कवियो का अनुकरण हुआ। नर्मद की शैली मे नवलराम (१८३६-१८८८ ई०) ने मेघदूत, बाल-लग्न-बत्तीमी आदि की रचना की और दलपत की शैली मे केशवराम हरिराम भट्ट (१८५१-१८९६ ई०) तथा भोलानाथ साराभाई (१८३३-१८८६ ई०) ने भजन और प्रार्थनाएँ लिखी। इस परम्परा मे और भी अनेक कवि हुये।

इमी काल मे पारसी गुजराती मे 'मनमुख', मचेरजी, रुस्तम ईरानी, नाजुक आदि ने विभिन्न प्रकार की काव्य रचना की। खबरदार नामक कवि ने उमर खय्याम का अनुवाद किया —

'And that inverted Bowl we call The Sky
Whereunder crawling coopt' we live and die'

पृथ्वी पर प्यालु छे ढाक्युं आकाशनुं
खदबदी रहे महीं सर्व प्राणी।

पारसी बोली मे 'नाजुक' साहब फर्माते हैं —

याव राख ! के मारो ते मोटो खोदाय,
रब करवा सामर्थवान छे तारा दाव।

बाद मे उर्दू की तरह गुजराती मे गजलो की भी रचना हुई। 'महागुजरात गझल मंडल' के गझलकारो मे शयदा, नसीम, सीरती, गनी, व्यास, चमकार, बेकार, आसी आदि तखल्लुस के कवि हैं। इस विषय के कुछ उदाहरण विशेष मनोरजक हैं —

हिन्दी ने यूरोपियन मेलाप जो।
देशी तबला पर विदेशी थाप जो॥

* * *

बधे वध नाच मुजराना भवाडा।
सभा ठंडी पडी ईश्वर भजन नी॥

* * *

घणी वेला सरलता ने समजातां वार लागे छे।
कदिक समज्या छतां समज्या कहेतां वार लागे छे॥

* * *

अेक अेछे जेमने इकरार थी बनतु न थी।
अेक हुं छु के मने इन्कार थी बनतुं न थी॥

* * *

कोमवादी लीडरोनी पूछडा हनुमान सम।
ज्या पसाडो त्यां हवे लकादहन भइ जाइ छे॥

फारसी छदो का प्रचार गुजराती मे अपेक्षाकृत कम है। बालाशकर, अमृत केशव नायक, दीवाना, कान्त, मणिलाल नभ भाई, कलापी, सागर, देशसरी, ठक्कुर नारायण आदि सिद्धहस्त कवियो ने इन छदो का प्रयोग किया है।

सस्कृत-जागृति के कवियो मे भीमराव भोलानाथ दिवेटिया (१८७५ ई०), दौलतराम कृपाराम पण्ड्या (१८८७ ई०), गोवर्धन राम माधवराम त्रिपाठी (१८८९ ई०), मकरद (१८१३ ई०) तथा हरिहर्षद घ्रुव (१८९५ ई०) प्रमुख है। हिंदी मे जिस प्रकार गुप्त जी तथा हरिऔध जी का व्यक्तित्व काव्य के उत्तरोत्तर विकास मे सहायक हुआ उसी प्रकार गुजराती मे कवि नानालाल (१८७७ ई०), नरसिह राव भोलानाथ दिवेटिया (१८५९-१९३७ ई०) तथा कान्त मणिशकर रत्न जी भट्ट (१८६७-१९२३ ई०) इन तीन विभूतियो ने काव्य को अभिनव समृद्धि प्रदान की। गुजराती मे छायावाद जैसा कोई पृथक् वाद नही प्राप्त होता अतएव महादेवी, पत, प्रसाद और निराला का कार्य भी इन्ही तीन कवियो द्वारा हुआ। हिंदी मे जिसे गीति काव्य कहते है, गुजराती मे उसकी सज्ञा उर्मि काव्य है। नानालाल से इसका प्रारभ हुआ और नरसिह राव तथा मणिशकर से पोषण मिला। अग्रेजी काव्य का प्रभाव दिवेटिया पर विशेष रूप से परिलक्षित होता है। 'कुसुममाला', 'हृदय वीणा' तथा 'नूपुर झकार' मे इन्होने उर्मि गीत एव प्रकृति परक काव्य की रचना की, इसके साथ-साथ 'बुद्ध चरित' आदि खण्ड काव्य और कथाकाव्यो का भी सृजन किया। अंग्रेजी साहित्य के परिशीलन-स्वरूप भावगीत

और सस्कृत-साहित्य के परिशीलन स्वरूप भाषा गौरव और छद सौष्ठव की स्थापना हुई। उदाहरणार्थ नानालाल —

बनो वसन्ते हजो कूलके फूले
रात्रे उजाले नभकुज तारला
अखंड वेणु न थी वागती शमी।
(वेणु-विहार)

नरसिहराव दिवेटिया —

कुसुमो तो थया म्लान वीणाना तार तूटिया
नूपुरे किंकिणी सर्व वागे छे खोखरी हवा।
रह्यो मात्र हवे गूढ करुणारस तेवडे
चले उरनो भूमि भीजांती सर्वदा रहे ॥
आवाद्य ने करुणगान विशेषभावे ॥

मणिशकर भट्ट की 'पूर्वालाप' स्मरणीय रचना है। अर्वाचीन काव्य मे भट्ट जी के द्वारा कलायुक्त आत्मपरक रचना का विकास हुआ। वृत्तयोजना और भाषा के स्वरूप मे इन्होने क्रान्ति की, निराला की तरह मुक्त छद और अतुकान्त काव्य का सृजन किया, जिसमे अर्थानुसार ही यति और विराम चिन्ह प्रयुक्त किये गये। खण्डकाव्यो की भी रचना इन्होने की और स्थल-स्थल पर पुरानी और नई धाराओ का सम्मिश्रण भी। माधुर्य इनकी रचना का विशेष गुण है। सगीतात्मकता, कोमलता और भावो की सुकुमारता की दृष्टि से इनका स्थान गुजराती साहित्य मे अद्वितीय है।

प्रेम भक्ति का कवि कलापी सीधी सादी भाषा मे तरुणाई की जो तरग व्यक्त कर गया उसका भी अपना एक मूल्य है। कलापी मे काव्य कौशल न हो पर लोकप्रियता तो उसे प्राप्त हुई।

कवि नानालाल यद्यपि स्वामीनारायण सम्प्रदाय के थे परन्तु उनका काव्य साम्प्रदायिकता की सीमा से निश्चय ही मुक्त है। भाव व्यजना और गीतात्मकता से ओतप्रोत इनके भावगीत गुजराती साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है। शैली अलकृत, झकारमय और राग प्रधान तथा विचार सामाजिक स्वातन्त्र्य के पक्ष मे है।

इस त्रयी के साथ ही बलवन्त राव क० ठाकुर (१८६९ ई०) का नाम भी आता है। देखने से पता नही चलता कि यह व्यक्तित्व इतना कवित्व पूर्ण होगा। 'भणकार' नामक अपनी कृति मे इन्होने कविता को आधुनिक पथ पर चलाया है। 'म्हारा सॉनेट' और 'गोपी हृदय' क्रमश. अग्रेजी और धार्मिक प्रभाव को व्यक्त करते है। इन्होने अपनी रचनाओ मे विचारो

को प्रधानता दी है। परिणामस्वरूप कुछ काव्य शास्त्रीय और कुछ दार्शनिक हो गया है। अपनी रुचि के अनुकूल इन्होंने 'पृथ्वी' नामक छद नवीन प्रकार से रच लिया। परिच्छेद बद्ध रचना पद्धति, चितन-प्राधान्य, वस्तुस्पर्शी कल्पना-विहार और सादे प्रयोग करने की प्रवृत्ति इनके काव्य के मुख्य लक्षण है।

इसके उपरान्त कुछ काव्य चेतना लोकभाषा की ओर और कुछ सस्कृत मिश्र भाषा की ओर बढ़ी। एक ओर काव्य में गेयता अनावश्यक मानी गई और दूसरी ओर गेय काव्य मे प्रासो और छदो की जटिलता आई परन्तु यह विरोधात्मक स्थिति स्थायी सिद्ध न हुई। नवीन काव्य-धारा मुक्त हो कर बह रही है। उसमे साम्प्रदायिकता से हीन धर्म को विशाल रूप से समझने की क्षमता है और मध्यकाल की पौराणिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप स्वतत्रता प्रियता है। विषयो की बहुलता और चितन तथा भावो का विस्तार भी शनै-शनै बढ़ रहा है। इस समय गुजराती काव्य की प्रवृत्ति ऊर्मि गीतो और भावात्मकतामयी रचनाओ की ओर अधिक है। हिन्दी साहित्य के प्रगतिवाद जैसा कोई आन्दोलन अभी काव्य क्षेत्र मे प्रकट नही हुआ। इस दृष्टि से गुजराती काव्य की प्रगति अपेक्षाकृत कुछ कम प्रतीत होती है। वर्तमान कवियो मे मुख्य है सुन्दरम्, मेघाणी, गजेन्द्र, स्नेहरश्मि, उमाशकर जोशी, नाथालाल दवे, शेष, झावेरी, स्वप्नस्थ आदि। मेघाणी लोकगीत और लोक साहित्य की ओर अधिक आकृष्ट है। उमाशकर जोशी का आधुनिक कवियो मे विशिष्ट स्थान है। इनकी विश्व शान्ति, गगोत्री, निशीथ, आतिथ्य, प्राचीना आदि रचनाएँ महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

गुजराती काव्य-रचना के इस नव उत्साह की कुछ मर्यादाएँ भी है। असफल प्रयोग अनेक मिलते है। काव्य के स्वरूप की परख सब कवियो मे प्राप्त नही होती। कही-कही स्थूलता अधिक आ गई है।

सूफी काव्य को मस्तरग का काव्य कहा जाता है। इस प्रकार के काव्य की ओर प्रवृत्त होने वाले कवि है बालाशकर, उल्लास राम, त्रिभुवन प्रेमशकर, मणिलाल नभुभाई, कलापी तथा सागर। इनकी रचनाओ मे प्रेम की पीर के दर्शन होते है।

सुदरम् ने नवीन कविता पर 'अर्वाचीन गुजराती कविता' नामक सुन्दर ग्रथ रचा है, जिसके तीन स्तवको मे सारे गुजराती काव्य का दिग्दर्शन कराया गया है।

नाटक : १९०० ई० से पहले

गुजरात मे नाटय प्राचीन काल से चला आया है। वसतोत्सव, यात्रोत्सव तथा विजयोत्सव के अवसर पर इनका अभिनय होता था। 'भवाई' सज्ञक लोकनाटय जनसमाज के मनोरजन का एकमात्र आधार था। नवीन युग के आगमन से इस भवाई का लोप होता जा रहा है। उसके स्थान पर अर्वाचीन पद्धति की रगभूमि प्रचलित होती जा रही है।

नर्मद आद्य कविकी तरह आद्यनाटककार भी हुये। उनके नाटक 'राम जानकी दर्शन', 'द्रोपदि दर्शन', 'बाल कृष्ण विजय', 'सारशाकुतल' तथा 'कृष्ण कुमारी' आदि सस्कृत और धार्मिक प्रभाव के अन्तर्गत रचे गये है।

दलपतराम के दो नाटक 'मिथ्याभिमान' तथा 'लक्ष्मी' अत्यन्त प्रसिद्ध हुये। इनमे नाट्य तत्व के साथ-साथ मनोरजन की भरपूर सामग्री प्राप्त होती है।

नवलराम लक्ष्मीराम पड्या ने विवेचन के साथ ही नाट्यरचना भी की। उनका 'धीरमती' नामक ऐतिहासिक नाटक अभिनेयता की दृष्टि से सदोष हैं। 'भटनु भोपाळ' एक अन्य सुन्दर रूपान्तरित नाट्य कृति है।

रणछोड भाई उदयराम गुजराती रगभूमि के पिता माने जाते हैं। इनके 'जया कुमारी नो विजय' तथा 'ललिता दु ख दर्शन' नाटक विशेष महत्वपूर्ण हैं। अन्तिम नाटक गुजरात मे सुधार लक्षी पहला दु खान्त (करुणान्त) नाटक है।

गणपतराम राजाराम ने लम्बी कविताओ और विस्तृत भाषणो से युक्त 'प्रताप' नामक वीर रस का नाटक रचा। मणिलाल नभुभाई द्विवेदी का 'कान्ता' नामक दु खान्त नाटक बाह्यत. सस्कृत नाटक परम्परा और अन्तर से शेक्सपियर की ट्रैजिक भावना को व्यक्त करता है।

इनके अतिरिक्त रगभूमि की दृष्टि से सफल नाटककारो मे निम्नलिखित रचनाकार प्रसिद्ध हैं —

काबराजी, वाघजी आशाराम ओझा, डाह्याभाई घोळशाजी, कवि नथुराम सुदर जी शुक्ल, मूलशकर मूलाणी, कवि चित्रकार फूलचद्र शाह तथा नृसिह विभाकर।

१९०० ई० से पूर्व के अन्य प्रतिष्ठित नाटको मे भीमराव दिवेटिया की देवलदेवी, कवि प्रेमानद के तीन नाटक तपत्याख्यान, सत्यभामाख्यान तथा द्रोपदीहरण, दौलतराम पड्या का 'अमरसव', हरीलाल ध्रुव का प्रह्लाद, ललिताशकर व्यास के हरिश्चन्द्र और करणघेलो, मणिशकर पडित के कलियुग न्याय दर्शन और लालबा, दुर्गानाथ दवे का सगीत कादबरी तथा गोवर्धनराम का क्षेमराज अने साध्वी नामक अधूरा नाटक मुख्य गिने जाते है।

नाटक : १९०० ई० के बाद

बीसवी शती के पहले दो दशाब्दो मे कवि नानालाल तथा रमणभाई नीलकठ ने नाट्य साहित्य की रचना मे गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त गिया। रमणभाई की एकमात्र कृति 'राई नो पर्वत' पुरोगामी गुजराती नाटको की अपेक्षा अधिक परिष्कृत रचना है। यह नाटक गुजराती नाट्य प्रगति का एक महत्वपूर्ण सीमाचिन्ह गिना जाता है।

कवि नानालाल के नाटको मे काव्य तत्वकी प्रधानता है। वे क्लासिकल न हो कर रोमाटिक हैं और कालिदास तथा शेक्सपियर की अपेक्षा शेली के प्रोमिथियस अनबाउण्ड तथा गेटे

के फाउस्ट से अधिक प्रभावित हैं। इनके नाटको मे जया अने जयत, इन्द्रकुमार, प्रेम कुज, गोपिका, पुण्यकन्या, जगत्प्रेरणा, राजर्षि भरत, सघमित्रा, जहाँगीर-नूरजहाँ, अकबरशाह तथा विश्वगीता प्रमुख है। विश्वगीता मे ऐतिहासिक और काल्पनिक वस्तु का मिश्रण है।

गत २५ वर्षों मे यूरोप की नाटक-शैली मे होने वाली क्रान्ति का सीधा असर यहाँ पडा। नाटक को कला और जीवन का सगम बनाया गया। नाट्यकारो की सख्या मे वृद्धि हुई और नये-नये कलाविधान विकसित हुये। वस्तु मे नवीनता आई। बलवन्त राव ठाकुर का उगती जुवानी तथा रमणलाल देसाई के शकित हृदय, सयुक्ता, अजनी एव परि अने राजकुमार सफल नाटक है।

चंद्रवदन मेहता ने रगभूमि और शिष्टता का ध्यान रखते हुए विभिन्न प्रकार के नाटक रचे। 'अखो' और 'नर्मद' दोनो चरित्र नाटक है। 'सताकुकडी' तथा 'रमवडानी दुकान' बाल नाटक हैं। 'मूगी स्त्री', 'देउकानी पाचशेरी' तथा 'त्रियाराज्य' प्रहसन है। 'संध्याकाल' और 'सीता' ऐतिहासिक है। 'आगगाडी' और 'नागाबावा' यथार्थ जीवन की रचनाए है। 'आराधना' भावप्रधान प्रयोग है।

मुशी ने लोपामुद्रा आदि पौराणिक आख्यानो पर नाटक रचे और अभिनेयता का ध्यान रक्खा। यशवतराव पड्या विषय की नवीनता की ओर अधिक प्रवृत्त हुये। इनके सवादो मे भाषा चमत्कारिक हो गई है। 'पडदा पाछळ', 'मदन मदिर', 'रसजीवन' आदि इनके प्रमुख नाटक है।

कृष्णलाल श्रीधराणी ने कल्पना लालित्य और ध्वनि से युक्त नाटक रचे। वडलो, पीळा पलाश, पद्मिनी, मोरना इडा आदि इनकी रचनाए है।

एकाकी नाटको का विकास भी गुजराती साहित्य मे सुचारु रूप से हुआ। उमाशकर जोशी का 'सापनामारा' यथार्थ वस्तु पर आधारित एकाकियो का उत्तम सग्रह है।

इन्दुलाल गाधी मे सवादो का परिष्कृत रूप प्राप्त होता है। इनके 'नारायणी अने बीजा नाटको', 'गोमतीचक्र अने बीजा नाटको' आदि पाँच सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

प्राणजीवन पाठक के टैगोर और इब्सन की शैली मे लिखे एकाकी नाटक 'अनता अने बीजा एकाकी नाटको' मे सग्रहीत है।

वर्तमान नाटककारो मे प्रोफेसर खुशाल शाह, व्योमेशचद पाठक जी, लीलावती मुन्शी, हँसा मेहता, सजय, इन्दुलाल याज्ञिक, गजेन्द्र शकर पड्या, मेघाणी, रमण वकील, धूमकेतु, पुरुषोत्तम त्रीकमदास, घन सुखलाल महेता, गोविन्द भाई अमीन, भास्कर वहोरा, दुर्गेश शुक्ल तथा पुष्कर चदरवाकर के नाम अग्रगण्य है।

नवल कथा : उपन्यास

प्रथम नवल कथा है "करण घेलो"। यह रचना अग्रेजी उपन्यासो के सदृश रचना करने के

प्रयास का पहला फल है। इसके रचयिता हैं नन्दशकर मेहता । १८६६ ई० में यह प्रकाशित हुई। इसकी शैली कथा की न हो कर निबन्ध जैसी लगती है। स्थान-स्थान पर ज्ञानचर्चा तथा शिक्षात्मक आख्यान दिये गये हैं। अनेक पात्र पत्र का भी व्यवहार करते हैं। सभाषण लबे-लबे हैं। इतनी मर्यादाओ के बाद भी अपने समय मे यह पर्याप्त लोकप्रिय हुई और इसका अनुकरण भी हुआ ।

इसके बाद अग्रेजी जासूसी कथाओ-उपन्यासो (ठगलावदा वार्ताओ) के अनुवाद और रूपान्तरो की एक बाढ-सी आ गई। मध्यम कोटि के रचनाकार, जिनमें स्वतन्त्र उद्-भावना की शक्ति कम थी, अनुवाद की ओर प्रवृत्त हुये और अग्रेजी उपन्यासो का बोलबाला हो गया। रमणलाल देसाई के मत से इनमें सुरुचि का आग्रह नही था और न भाषा, कथा तथा शैलीकार के गुण ही। नैसर्गिक उत्पादक शक्ति के कही दर्शन नही होते, केवल वार्ता की तरह वर्णन मिलता है।

नदशकर के समकालीन और मित्र महिपतराम नीलकठ की 'सास बहुनी लड़ाई' बहुत प्रसिद्ध रचना है। गुजराती मे यह प्रथम लोक कथा (सासारिक कथा) है । यह १८-८६ ई० मे प्रकाशित हुई । सारी रचना वर्णन प्रधान है। अप्रस्तुत अशो की अधिकता के कारण मूल कथा-सूत्र छिन्न-विच्छिन्न हो गया है ।

'करण घेलो' के अनुकरण पर महिपतराम ने 'सघराजेसिग' तथा 'वन राज नावडो' की रचना की। इन ऐतिहासिक कथाओ मे अतीत और वर्तमान का विचित्र मिश्रण है।

अनतप्रसाद त्रिकमलाल कृत 'राणकदेवी' भी 'करण घेलो' के ही अनुकरण पर रची गई, परन्तु इस प्रकार की रचनाओ मे यह सर्वोपरि है ।

हरगोविददास काटावाला कृत 'अधेरी नगरी नो गधर्व सेन' अनैतिहासिक किन्तु ऐतिहासि-कता भास वाली रचना है। 'रजवाडी उटग वार्ता' मे इसकी गणना है । शब्द-भडार का विस्तार, प्रान्त भेद परक कथन तथा ठेठ (ळलयदा) शब्दो का व्यवहार इसमे हुआ है।

पारसीशाई वार्ताएं

स्काट और टेलर रेनाल्ड्स की रचनाओ के अनुकरण पर अनेक रचनाए हुई। इसमे पारसीयो की देन पर्याप्त है। पारसी, गुजराती, यूरोपीय जीवनादर्श, रीति-रिवाज और कला के सम्मिश्रण से ये कथाए जितनी कृत्रिम प्रतीत होती है, उतनी ही विचित्र भी। जहागीर तालियार खाँ की कृतियाँ अपवाद स्वरूप है। इनकी 'मुद्रा अने कुलीन' महत्वपूर्ण रचना है। प्रकरण के आरभ मे कविता की पक्तियाँ, वस्तु सासारिक और आधार सामयिक, सरस्वती चन्द्र की भूमिका-सी है ।

हिंद अने ब्रिटानिया

यह स्वर्गीय इच्छाराम देसाई ने राजकीय सबध की निडर चर्चा करते हुए मीरजा मुराद अली बेग की लेखमाला के आधार पर लिखी है। सरस्वती चन्द्र के तीसरे तथा चौथे भाग मे इन वार्ताओ का विस्तार हुआ है ।

सरस्वतीचन्द्र

१८८७ और १९०१ ई० तक के १५ वर्षो मे गोवर्द्धनराम त्रिपाठी ने सरस्वतीचन्द्र के चार भाग प्रकट किये । इस रचना को आदर देते हुए स्वर्गीय आचार्य आनद शकर ध्रुव ने इसे 'सरस्वती चन्द्र पुराण' की सज्ञा दी । यह सामाजिक उपन्यास है । इसमे नवीन भावो का स्वागत किया गया है। यह इतनी विशाल रचना है कि लगभग जीवन के सभी पक्ष इसमे आ गये है ।

हिन्दी मे जिस प्रकार स्वर्गीय देवकीनन्दन खत्री की 'चन्द्रकान्ता' विख्यात हुई उसी प्रकार गुजराती मे यह रचना भी । पात्र-पात्र की मानव-सुलभ मर्यादा और उससे सरस्वती चन्द्र तथा कुमुद के धीरे-धीरे मुक्त होने का प्रयास अनेक सोपानो मे व्यक्त है। साधना की कठिनाइया तथा प्रणय की आत्यन्तिक स्थिति का सफल चित्रण इस प्रथम नवल कथा की असाधारण सिद्धि है। इस देश की सास्कृतिक परम्परा के गुण-दोष, देश-काल की वर्तमान अवस्था, कर्तव्य और भावना का द्वद्व तथा मानव स्वभाव का सूक्ष्म चित्रण उपस्थित करने मे गोवर्द्धन राम त्रिपाठी को अभूतपूर्व सफलता मिली। इनके बाद के किसी रचनाकार को इतना गौरव प्राप्त नही होता ।

गुलाबसिंह

लिटन कृत झेनोनी के अनुकरण रूप में मणिलाल नभुभाई द्विवेदी ने गुलाबसिह की रचना की। यह रचना अध्यात्म प्रधान है। आचार्य ध्रुव के अनुसार लेखक ने इसमे प्रवृत्ति और निवृत्ति के महा प्रश्न पर उदात्त और सजीव शैली मे चर्चा की है। कथा वक्तव्य का साधन मात्र लगती है। घटनाए असभव प्रतीत होती है। फिर भी इसमे पर्याप्त सूक्ष्म आलेखन है।

भद्रंभद्र

सीधी अगभीर वार्ता की तरह स्वर्गीय रमणभाई की यह रचना अद्वितीय है। यह पात्र प्रधान उपन्यास है। मानव व्यवहार के वर्णन की एक नवीन दिशा का उद्घाटन इसके द्वारा होता है। आडबरी भाषा, कुरूढियो की निंदा को लिये यह भद्रभद्र पात्र वाली रचना चिरजीव कृति बन गई है।

भोगीन्द्रराव की नवल कथाएं

इनकी मुख्य कृतियाँ उषाकान्त, तरला आदि है । इन्होंने प्रेरणा सरस्वतीचन्द्र से पाई । नई आकाक्षाए, नई रस वृत्ति, नवीन भावनाए इन सब का सुन्दर समन्वय इनकी रचनाओ मे है । इनकी मनोवृत्ति क्रान्तिकारी की न हो कर सुधारक की है । छोटे वाक्य, प्रचलित प्रयोग, नवीन-पुरातन का सघर्ष, भावुक नायक, सभासभ्य नायिकाएँ, समुचित सम्वाद इनके लक्षण है । इन्होने अनेक अनुवाद भी किये ।

अमृत केशव नायक और ठक्कुर नारायण

विदेशी शिक्षा के घातक प्रभाव के प्रतिरोध मे प्रतिज्ञाबद्ध हो कर लिखने वालो में ये दोनो लेखक है । अ० के० नायक की 'एम० ए० पढाके क्यो मेरी मिट्टी खराब की' नामक रचना शिथिल परन्तु तीव्र और मनोरजक व्यग से युक्त है ।

लोकधर्म, शिक्षा, स्वदेश-सेवा की विचारधाराए, यात्रा-लेखन तथा सम्वादो के वर्णन मे नवीनता से कथाए सुन्दर हो गई है । बधनो से मुक्ति इनका प्रधान स्वर है । ठक्कुर नारायण विसन जी ने बहुत से उपन्याम लिखे है । इनमे ऐतिहासिक कथाए अनेक है । औपन्यासिक तत्वो की कमी के कारण ये रचनाए सदोष लगती है ।

श्री क० मा० मुशी

जिन्हे वास्तव मे उपन्यास कहा जा सकता है, ऐसी मौलिक कलात्मक रचनाएँ श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी द्वारा रची गईं । आधुनिक गुजराती उपन्यास के क्षेत्र मे मुशी जी का व्यक्तित्व अद्वितीय है । इन्होने ड्यूमा के प्रभाव मे आ कर तथा अपने गभीर इतिहास अध्ययन के आधार पर जिन ऐतिहासिक उपन्यासो की शृखला निर्मित की, वह अत्यन्त दृढ और प्रभावशाली है । जैसे बँगला उपन्यासकार शरच्चद्र सामाजिक उपन्यासकारो मे भारतवर्ष मे अद्वितीय है, उसी प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकारो में श्री मुशी जी ।

वस्तु, पात्र-विधान, सवाद और वातावरण आदि कथा के सभी अग इनके उपन्यासो में विकसित रूप मे प्राप्त होते है । दृढ़ रेखाओ से सजीव पात्रालेखन, नाटकीय कार्य वेग और जितनी शिष्ट उतनी ही स्वाभाविक भाषा इनकी मुख्य विशेषताए है । कुछ रचनाओ मे सामाजिक पक्ष भी इन्होने ग्रहण किया है और ऐसे पात्र भी सर्जित किये है जो सामाजिक रूढ़ियो और कुरीतियो से विद्रोह करते है । परन्तु मुख्यत मुशी जी की प्रवृत्ति ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना में ही अधिक है । गुजरात के सोलंकी युग की पृष्ठ भूमि को ले कर रची गई गुजरातनो नाथ, पाटणनी प्रभुता, जय सोमनाथ, महाराजाधिराज, पृथ्वीवल्लभ तथा वेरनी वसुलात इनकी मुख्य नवल कथाएँ है । भगवान् कौटिल्य पौराणिक और ऐतिहासिक दोनो दृष्टिकोणो से महत्वपूर्ण रचना है । हिन्दी में इनके लगभग सभी उपन्यास अनूदित हो चुके है ।

रमणलाल वसन्तलाल देसाई

किसी ने इन को 'युगमूर्ति वार्ताकार' कह कर उचित ही किया है। युग के विविध प्रश्न और मनोमथन के विविध प्रतिबिम्ब इनके उपन्यासो मे प्राप्त होते है। भावनाशील युवक-युवतियो की आशास्पद जीवनी तथा विषम सामाजिक पृष्ठभूमि का आलेखन कर के प्रेम त्रिकोणो द्वारा कथा-प्रवाह मे वेग, चिंतनशील प्रासादिक वर्णन तथा सुन्दर कटाक्षो द्वारा पाठको के मन को इन्होने मुग्ध किया। लोकप्रियता मे यह मुशी जी से कुछ कम ही है। इनकी मुख्य रचनाए है—कोकिला, स्नेहयज्ञ, दिव्यचक्षु तथा ग्रामलक्ष्मी। इनमे से अनेक हिन्दी मे अनुवादित हो चुकी है।

चुन्नीलाल वर्धमान शाह

कर्मयोगी राजेश्वर, रूपमति, अकलवीर, तपोवन आदि के रचयिता चुन्नीलाल शाह की रचनाए लम्बी और प्राचीनतामय है। कर्मयोगी राजेश्वर अर्वाचीनता का स्पर्श रखती हुई सफल ऐतिहासिक रचना है।

झवेरचंद मेघाणी

इस स्वाभाविक कलाकार की रचनाए कुछ स्वतन्त्रता और कुछ विदेशी प्रभाव को लिये है। इनके सामाजिक और ऐतिहासिक दोनो प्रकार के उपन्यास मिलते है। चित्रात्मकता, कार्यवेग और उत्कटता इनकी वार्ताओ के मुख्य लक्षण है। इनकी रचनाओ मे जीता-जागता सोरठ का चित्र मिल जाता है। कुछ घटनाए असभाव्य है और कुछ परिस्थितिया अप्रतीतिकारक, फिर भी कथाए मर्मस्पर्शी है। इनकी मुख्य कृतियाँ है सोरठ-तारा बहेता पारभी वेविशाळ, तुलसी क्यारो तथा अपराधी।

इनके अतिरिक्त अन्य मुख्य उपन्यासकार सर्वश्री गुणवतराय आचार्य, पन्नालाल पटेल, सोपान, दर्शक, चुन्नीलाल मडिया, ईश्वर पेटलीकर तथा विनोदिनी नीलकठ है।

टूकी वार्ता : नवलिका (कहानी)

हिन्दी की तरह यहाँ भी अँग्रेजी के प्रभाव से ही कहानी साहित्य का आविर्भाव और वकास; आ। सामयिक पत्रो के प्रकाशन के कारण इसकी उपयोगिता उत्तरोत्तर बढती गई। पहले केवल 'सुन्दरी सुबोध', 'ज्ञानसुधा' आदि पत्रिकाओ मे अनुवादित कहानियाँ प्रकाशित होती थी, परन्तु बीसवी सदी के प्रारम्भ होते ही इस शैली को विशेष उत्तेजन मिला। पहले रचनाकारो मे रणजीतराम मेहता तथा राममोहनराय जसवतराय ये दो व्यक्तित्व ही इस दिशा मे विशेष प्रवृत्त रहे।

टूकी वार्ता के विशेष लक्षणो से युक्त मलयानिल की गोवालणी पहली सफल रचना है। इसके बाद गत तीस वर्षो मे सतोषकारक कहानी साहित्य की रचना हुई।

१९१८-२० ई० के लगभग मुशी जी ने 'मारी कमळा अने बीजी वालो' नामक कृति प्रसिद्ध की, जिसमे विशेषतया व्यक्ति-जीवन और समाज-जीवन की विषमताओ को ले कर उपहास किया गया था। वह परिस्थिति की विभिन्नता से हास्य उत्पन्न करने का प्रयास था। मुशी जी ने गभीर कहानिया भी लिखी है और कथा साहित्य के विकास मे पर्याप्त सहायता की है। बटु भाई उमरवाडिया तथा लीलावती मुशी ने भी कहानिया लिखी।

जीवन की अनुभूति और अदृष्ट की सत्ता को व्यक्त करने वाली द्विरेफ की वार्ताए गुजराती साहित्य मे अनुकरणीय बनी रही। मानव स्वभाव की लगभग सभी प्रवृत्तियो का आलेखन इन्होने किया। इनकी सारी रचनाओ मे जीवन को विकास पथ पर ले जाने का आग्रह और मानवीयता का सदेश है। इन्होने अत्यन्त सरल, सादी शैली मे रचना की, परन्तु प्रभाविष्णुता अक्षुण्ण रही।

गुजरात के सम्पूर्ण अर्वाचीन साहित्य पर गाधी जी के व्यक्तित्व का विशेष प्रभाव पडा। कहानी के क्षेत्र मे यह प्रभाव धूमकेतु और मेघाणी मे व्यक्त हुआ।

कहानी मे आवश्यक सूक्ष्मता, कलात्मक प्रारभ और अत, भाषा की सचोट भावप्रणता आदि को व्यक्त करने वाली धूमकेतु की रचनाओ ने अपना स्वतन्त्र मार्ग बनाया। तणाखा, मडळो, अवशेष प्रदीप आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाए है।

स्वर्गीय झवेरचद मेघाणी कहानियो मे पात्रो और परिस्थितियो के शब्दचित्र उपस्थित करने मे अद्वितीय सिद्ध हुये। कलाकार की दृष्टि से धूमकेतु श्रेष्ठ है, परन्तु चित्रण की दृष्टि से मेघाणी। मेघाणी की नवलिका तथा विलोपन आदि मुख्य कृतिया है।

अन्य सफल कहानीकार सर्वश्री रसिकलाल परिख, धनसुखलाल महेता, स्नेहरश्मि, रमणलाल देसाई, उमाशकर जोशी, सुन्दरम्, पन्नालाल पटेल, चुन्नीलाल शाह, किशनसिह चावडा, जयन्ती खत्री, वकुलेश, जयन्ती दलाल, चुन्नीलाल मडिया, गुलाबदास ब्रोकर तथा अशोकहर्ष है।

निबंध

गुजराती मे निबध रचना के आदि प्रवर्त्तक नर्मद और नवलराम है। इनके पहले दलपतराम ने १८४८ तथा १८५० ई० मे 'भूतनिबन्ध' तथा 'ज्ञानिनिबध' नामक दो निबध प्रकाशित किये थे, पर वे आधुनिक निबध की परिभाषा के अन्तर्गत नही आते।

सादी शैली मे महिपतराम, धरमदास, हरगोविन्ददास तथा सस्कृतमय शैली मे मनसुख राम सूर्यराम, नर्मद-नवल के समकालीन थे।

नर्मद

नर्मद के अनेक निबध मुख्यत दो प्रकार के है—(१) जोशपूर्ण उद्बोधनकारी (सचोट

प्रभावशाली) तथा (२) शान्त, गभीर विचारपरक (सौम्य शैली, आदि से अत तक सम, शास्त्रीय)।

नवलराम

इन्होने निबन्ध को ही अपने विवेचन कार्य का माध्यम बनाया। गभीरता और आवेग हीनता इनका गुण है।

मणीलाल

इनके निबध आदर्श रूप मे ग्रहण किये जा सकते है। इन्होने एक ओर नर्मद की तरह आवेगपूर्ण शैली मे और दूसरी ओर चितनपूर्ण गवेषणात्मक निबन्ध लिखे। इनमे विशदता, शास्त्रीयता, विद्वत्ता, प्रौढि, सस्कारिता आदि गुण प्राप्त होते है तथा हृदय-बुद्धि, विचार-उर्मि तथा शास्त्र और साहित्य का सुन्दर सयोग है।

न० दि्वेटिया

इन्होने पुष्कल गद्य साहित्य का निर्माण किया, पर खडन-मडन परायण और प्रमाण मान रहित शैली के कारण इनके सुग्रथित निबध कम मिलते है। कविता और दर्शन विषयक रचनाओ मे इनकी शैली रुचिर हो कर सुचारु निबन्ध-निर्माण मे सहायक हुई।

रमणभाई

विचार सामर्थ्य, शब्द प्रभुत्व, निरूपण पद्धति, कथन प्रवाह तथा निष्कर्ष की स्वाभाविकता से ओतप्रोत इनके निबन्धो मे व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। इनके निबध प्रवचन शैली मे है।

नानाभाई भट

इन्होने धर्मपूत दृष्टि से उच्च कोटि के निबन्ध लिखे।

नानालाल

कवि-सहज काव्य गुण तथा पडित पुत्र सहज विद्वत्ता, शिष्टता, गौरव आदि से ओत-प्रोत इनके निबध कवि नानालाल को निबधकार के रूप मे सफलता से प्रस्तुत करते है।

आनन्द शंकर ध्रुव

समर्थ विद्वान हो कर केवल निबन्धकार के रूप मे आचार्य आनंदशकर ध्रुव ही है। इन्होने परम्परा प्राप्त रूप के निबधो के उपरान्त साहित्यिक शिष्टता से पूर्ण राजकीय निबध, सपादकीय लेख तथा 'सर्मन' की तरह प्रवचनपरक निबध भी लिखे। शास्त्र व्युत्पन्न कुशाग्र बुद्धि,

अनेकदेशीय विशाल विद्वत्ता तथा रसार्द्र हृदय इन तीनो के सयोग से इनका व्यक्तित्व निर्मित हुआ था । इन्ही गुणो के कारण निबधकारो मे इनका अनोखा स्थान है ।

ब० क० ठाकुर

इन के निबधो के विशेष गुण स्वतन्त्र दृष्टि, विचार प्रेरकता, सकुलता तथा अर्थघनता है । विचारतत्व की मौलिकता इनकी श्रेष्ठता का मुख्य आधार है । भाषा ओजस्वी है ।

गाधीजी

समस्त गुजराती साहित्य के नवयुग मे प्रवर्तनकार महान् विभूति गाधी जी पत्रकार और निबधकार की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी है । सादे, सशक्त, निराडबर और आत्म-बल देने वाले इनके निबध गुजराती साहित्य की अमूल्य निधि है ।

इस युग के अन्य गणना पात्र निबध लेखक है उत्तमलाल त्रिवेदी, रणजीतराम बाबा भाई, चद्रशकर पड्या तथा अति सुखशकर त्रिवेदी ।

काका कालेलकर

विविध विषय, बहुल रचना, सुन्दर शैली, विचारो की स्पष्ट अभिव्यक्ति आदि बहुत सी विशेषताए इनके साहित्य मे मिलती है । मणिभाई को छोड कर समस्त गुजराती निबधकारो मे काका जी अद्वितीय है ।

मुन्शी

मुख्यतया उपन्यासकार हो कर भी इन्होने अनेक निबन्ध लिखे । एकपक्षीय दलीलो का आग्रह तथा वकालत मे अपने मत की पुष्टि यही इनकी विशेषता है ।

किशोरलाल मशरूवाला

जीवन के तात्विक मूल्यो, बुद्धि की कसौटी पर कसे विचारो तथा क्वचित् उपदेश-परक वक्तव्यो से युक्त इनके निबध एक वैज्ञानिक की तटस्थता से लिखे गये है । उनमे धार्मिक पुरुष की श्रेयस वाछना भी व्यक्त है ।

धूमकेतु तथा रतिलाल त्रिवेदी

सबल शैलीकार धूमकेतु के निबध आवेगपूर्ण भावनात्मक शैली मे लिखे गये है । सस्कृत तथा अग्रेजी साहित्य के परिशीलन से पोषित रतिलाल त्रिवेदी के निबध प्रौढ, गभीर तथा चितन प्रधान है ।

अन्य प्रमुख निबधकार सर्वश्री भट्टु भाई काटावाला, प्राण जीवन पाठक, रविशकर रावळ, अबालाल पुराणी, जयसुखलाल मेहता, हरि नारायण आचार्य तथा सुरेश दीक्षित है ।

विवेचन (आलोचना)

गुजराती विवेचन-स्वरूप मुख्यतया अँग्रेजी काव्यशास्त्र की प्रेरणा से विकसित हुआ है। परिभाषाए सस्कृत से ली गई है। अन्य अनेक प्रकार की साहित्यिक धाराओ की तरह इसका भी प्रारम्भ नर्मद के समय से हुआ। नर्मद ने गद्य, पद्य और नाटक इन तीन विषयो मे अपने विवेचनात्मक विचार व्यक्त किये। इनमे से कुछ उनकी मौलिक, कुछ सस्कृत के आधार पर और कुछ अँग्रेजी साहित्य के आधार पर रचनाएँ है। नर्मद से पहले कविता विषयक निरूपण दलपतराम ने किया था।

नवलराम

नर्मद और दलपतराम दोनो के विचारो का समन्वय कर के शास्त्रीय पद्धति से विवेचना प्रस्तुत करने वाले पहले व्यक्ति नवलराम ही थे। एक विवेचक के लिए अपेक्षित गुण इनमे थे।

नरसिंह राव

विवेचन के क्षेत्र मे नरसिह राव का विशिष्ट स्थान है। अपनी दीर्घायु मे इन्होने अगाध पाडित्य प्राप्त कर लिया। सहृदयता और तटस्थता से साहित्य का जो विवेचन इन्होने प्रस्तुत किया, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इन्होने दोषो का निर्भय हो कर विचार किया और गुणो की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की। मनोमुकुर के चार भाग, गुजराती भाषा और साहित्य, प्रेमानदना नाटको वाली चर्चा और विविध पत्रो तथा ग्रथो की भूमिकाओ मे इनकी विवेचन-प्रतिभा के दर्शन होते है।

मणिलाल नभुभाई द्विवेदी

अँग्रेजी का ज्ञान होते हुए इनका झुकाव अधिकतर सस्कृत की ओर ही था। अनेक स्थल पर काव्य शास्त्र मे इन्होने वेदान्त और योग के सिद्धान्तो का आधार लिया है।

रमणभाई

इन्होने सस्कृत और अग्रेजी के आधार पर विवेचना लिखी। कविता और साहित्य के चार भागो मे इनके लेख सग्रहीत है। उनमे प्रमाण, गुणवत्ता और वैविध्य ये तीनो ही गण प्राप्त हो जाते है।

गोवर्धनराम

यह विवेचक की अपेक्षा चितनशील सर्जक ही अधिक थे। विवेचन मे शास्त्रीय विचारणा के अश पर इन्होंने दृष्टिपात किया।

आनन्द शंकर ध्रुव

आचार्य ध्रुव भी केवल विवेचक ही नही थे वरन् चिंतक, विचारक और दार्शनिक भी थे। विवेचना के सिद्धान्तो में तत्वज्ञान के सिद्धान्तो को घटित कर के उनका समन्वय करने की प्रवृत्ति मणीलाल और गोवर्धनराम की तरह इनमे भी थी। 'वसत' नामक साहित्यिक मासिक पत्र में इनके विचार सम्पादक होने के नाते बराबर व्यक्त होते रहे। काव्य तत्व विचार, साहित्य विचार, दिग्दर्शन, विचारमाधुरी आदि ग्रथो का निर्माण इन्होने किया।

बलवन्तराव क० ठाकुर

इन्होने अर्थघन, अगेय और क्रमबद्ध पद्य रचना सबन्धी अपने सिद्धान्तो का विवेचन किया, अपनी काव्य प्रवृत्ति की व्याख्या की। लिरिक, कविता शिक्षण, अर्वाचीन गुजराती कविता, विविध व्याख्यानो, पचोतेर, भणकार और 'मारा सॉनेट' के प्रवेशको तथा प्रकीर्ण लेखो मे इनके विचार व्यक्त है।

तीन कवि विवेचक

कान्त, नानालाल और खबरदार ये तीनो मुख्यतया तो कवि है, परन्तु इन्होने सौदर्य-परीक्षा की दृष्टि से कुछ विवेचन सामग्री भी प्रस्तुत की है। नानालाल इन तीनो में इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है।

कन्हैयालाल मा० मुन्शी

ये मुख्यतया सर्जक है और सर्जक की लाक्षणिक भावना तथा कल्पना से इन्होने विवेचन किया है। इनके विविध व्याख्यान, स्फुट लेख, थोडाक रसदर्शनो तथा Gujrat & Its Literature इनकी मुख्य विवेचनात्मक कृतिया है।

रामनारायण पाठक

सर्जक होते हुए भी ये अधिकांश विवेचक है। गूढार्थ की खोज तथा काव्य परीक्षण मे ये विशेष रूप से पटु है। काव्य की शक्ति, साहित्य विमर्श तथा आलोचना इनकी मुख्य प्रवृत्तियो के द्योतक लेख-सग्रह है।

काका कालेलकर

काका जी साहित्य व्यवसायी तो नही है, परन्तु राजनीति के वातावरण से अवकाश निकाल कर जो गद्य इन्होने प्रस्तुत किया, वह महत्वपूर्ण है। 'साहित्य' और 'काव्य' इनकी विवेचन परक रचनाए है। इनके जीवन भारती और जीवन सस्कृति जैसे लेख-सग्रहो मे प्राचीन काल से ले कर आज तक के विविध विषयो की चिंतनपूर्ण विवेचना है।

सुन्दरम्

गत शताब्दी के गुजराती साहित्य मे कविता की विविध प्रवृत्तियो के अध्ययन स्वरूप 'अर्वाचीन गुजराती कविता' नामक इनकी कृति कवि की कृति होने के नाते नही वरन् विशुद्ध विवेचनात्मक रचना होने के कारण आदरणीय है।

अन्य प्रमुख विवेचक सर्वश्री विश्वनाथ भट्ट, विजयराम वैद्य, विष्णु प्रसाद त्रिवेदी, रसिकलाल पारीख, अनतराय रावल, मनसुखलाल झवेरी, चुन्नीलाल शाह, स्वर्गीय नवलराम त्रिवेदी, उमाशकर जोशी, स्वर्गीय झवेरचन्द मेघाणी, ज्योतीन्द्र दवे, डोलाराय माकड, रमणलाल देसाई, यशवत शुक्ल, नगीनदास पारेख, भृगुराय अजारिया, हीराबेन महेता, शकर प्रसाद रावल आदि है।

गुजराती साहित्य के इस सक्षिप्त परिचय मे स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि जिस प्रकार बँगला मे बकिम, शरद, रवीन्द्र और मधुसूदनदत्त, हिन्दी मे भारतेन्दु, द्विवेदी, प्रसाद और प्रेमचन्द तथा मराठी मे चिपळूणकर, आगरकर, तिलक, आपटे, देशमुख और परांजपे के नाम अग्रगण्य है, उसी प्रकार गुजराती मे भी नर्मद, दलपतराम, गोवर्धनराम, मणिलाल, नानालाल, नरसिहराव दिवेटिया, आनदशकर ध्रुव, बलवतराव ठाकुर, कन्हैयालाल मुशी, मेघाणी और रमणलाल देसाई के नाम लिये जा सकते है।

सशोधन और इतिहास आदि के क्षेत्र मे गुजराती विद्वानो की जो देन है, उसका कुछ भी समावेश इस स्थल पर नही हो सका, किन्तु जो वस्तु उपस्थित की गई है, उससे प्रकट है कि गुजराती साहित्य भी एक समृद्ध साहित्य है और उसकी विकासशीलता अपने लिए नये-नये पथ रच रही है। समाजवादी और साम्यवादी विचारधाराओ का प्रस्फुटन गाँधीवाद की प्रमुखता के कारण इसमे अभी नही हुआ है। उमाशकर जोशी आदि कुछ साहित्यकार इस ओर प्रवृत्त हुये, परन्तु सस्कारो के अभाव मे प्रगतिशीलता का आन्दोलन कुछ भी सफलता न पा सका। कविता के क्षेत्र मे गुजरात बँगला और हिन्दी के पीछे है, परन्तु उपन्यास के क्षेत्र मे मुशी के रूप मे उसने भारतीय साहित्य को जो देन दी है, वह अद्वितीय है। भावनात्मक उपन्यासो मे शरद, ऐतिहासिक उपन्यासो मे मुशी तथा सामाजिक उपन्यासो मे ग्रामीण समाज के शिल्पी प्रेमचन्द का स्थान सर्वोपरि है। अत आज के भारतीय साहित्य से परिचय प्राप्त करने वाले जिज्ञासु के लिए गुजराती साहित्य से परिचित होना आवश्यक ही नही, अनिवार्य भी है।

हिन्दी की गिनतियों में सुधार की आवश्यकता

डाक्टर आद्या प्रसाद चतुर्वेदी, एम० डी० एम० एस० एच०, साहित्यरत्न

यों तो आये दिन हिन्दी भाषा मे नाना प्रकार के परिवर्तनो, सशोधनो एव परि-वर्द्धनो के सुझाव हमारे सम्मुख रखे जाते हैं । हिन्दी के धुरन्धर एव सुधारवादी विद्वान इस दिशा मे सतत् प्रयत्नशील तो है ही, साथ ही सरकार भी यदा-कदा नई-नई समितियो वा सघटन भी एतदर्थ करती रहती है । पर आश्चर्य तो इस बात का है कि गिनतियो, जो शिशु-वर्ग के विद्यार्थियो के सम्मुख एक जटिल समस्या बन कर उनके कोमल मस्तिष्क के लिए एक भारी बोझ बन जाती है, की ओर किसी की दृष्टि नही पडी । हिन्दी की गिनतियो को, जो सहज बोधगम्य नही है, अध्यापक मार-मार कर रटा देता है । प्राय देखा गया है कि सातवी कक्षा तक के विद्यार्थी ६९, ५९, ८९, ७९ आदि का अन्तर नही समझ पाते और कभी-कभी वे ५९ को ६९ कह बैठते है और ७९ को ८९ या ६९ को ५९ और ८९ को ७९ ।

यह भी देखा गया है कि बच्चे अग्रेजी भाषा की गिनतियो को स्वल्प काल मे एव सुरुचि पूर्वक सीख लेते है, पर इसके विपरीत हिन्दी की गिनतियो को अपेक्षाकृत अधिक समय मे तथा मन को बलात् इस ओर लगा कर, अनेकानेक कठिनाइयो के पश्चात् ही सीख पाते है । सभव है, पाठक-गण यह दोष अध्यापको के सिर मढना चाहे । पर विचार करने एव अग्रेजी-हिन्दी की गिनतियो का तुलनात्मक अध्ययन करने पर वस्तुस्थिति का भली भाँति आभास मिल जायगा । अतएव आवश्यक है कि सर्व प्रथम हम इनका तुलनात्मक ज्ञान पाठको को कराये ।

एक से ले कर दस तक तो दोनो भाषाओ की गिनतिया समान रूप मे चलती है, केवल नामकरण मात्र का अन्तर है । किन्तु दहाई के साथ जब इकाइयाँ मिलती है, तब उनके नाम-करण का साँचा परिवर्तित होता दिखाई पडता है । १० के पश्चात् की दो गिनतिया ११, १२ (ग्यारह और बारह) हिन्दी मे नियमानुसार पायी जाती है । ग्यारह (एकादश) दस और एक के योग (१० + १ = ११) से बनता है, इसके नामकरण का वही नियम है जो कि आगे की गिनतियो का । हिन्दी मे दहाई सूचक अक बायी ओर तथा इकाई सूचक अक दायी ओर लिखा जाता है, किन्तु पढने मे इकाई का उच्चारण पहले और दहाई का बाद मे होता है, जैसे एकादश या ग्यारह मे एक अर्थात् इकाई का उच्चारण पहले और दश या 'रह' (जो दश का ही अपभ्रश है) का उच्चारण बाद मे होता है । इसी प्रकार आगे दहाई के साथ जब

और इकाइया आ कर मिलती है, तब भी उनके नामकरण मे यही नियम कार्य करता है। यदि बच्चो को आप अको तथा दहाइयो के नामो के अपभ्रश रूप समझा दे, तो उन्हे गिनतियो को लिखने-पढने मे अधिक सरलता हो जाय :—

अको के शुद्ध नाम	परिवर्तित या अपभ्रश रूप
एक	इक
द्वि, विवि, दो	बा, बया, ब या दो
तीन	तिन, तिर, ते, तै
चार	चौ
पांच	पन, पॅच, पच, पं, पच
छ.	सो, छिया, छि, छा
सात	सत्, सैं, सता
आठ	अठ, अठा, अड
नौ	नव, निन
दस	वह, रह
बीस	बिस, इस, ईस
तीस	तिस
चालीस	तालीस, लीस, वालीस
पचास	वास, वन, पन
साठ	सठ
सत्तर	हत्तर
अस्सी	असी
नब्बे	नबे, नब्बे

उपर्युक्त परिवर्तित या विकृत रूपो का व्यवहार सरलता के ध्यान मे किया गया है। अब नीचे कुछ ऐसे उदाहरण दिये जा रहे है, जिनमे इनका स्वरूप स्पष्ट हो जायगा :—

ग्यारह (इक्+रह अर्थात् एक और दस का योग = ग्यारह)

११ १ + १० ('रह' 'दस' का विकृत रूप है।)

बारह (बा+रह अर्थात् दो और 'रह' या 'दस' का योग = बारह)

१२ २ + १०

१३ तेरह (ते + रह अर्थात् तीन और दस का योग = तेरह)

३ + १०

१४ **चौदह (चौ+दह अर्थात् चार और दस का योग = चौदह)**
४ +१०

यही क्रम आगे भी चलता है।

अब अंग्रेजी की गिनतियो पर ध्यान दीजिये। हिन्दी के ११ ग्यारह और १२ बारह तो यौगिक हैं और इनका अर्थ समझ लेने पर पूरा स्वरूप ध्यान मे आ जाता है। बच्चा स्वय सोच सकता है कि 'बारह' मे 'रह' का स्पष्ट सकेत १० दस की ओर है और 'बा' का लक्ष्य '२' की ओर है, अतएव वह लिखते समय '१०' और '२' के योग-स्वरूप '१२' को अवश्य लिख लेगा। किन्तु अग्रेजी के ११ Eleven और १२ Twelve के विषय मे बच्चे को सिवा रटने के और कोई मार्ग नही है, क्योकि ये शब्द रूढि है और इनका परम्परागत अर्थ ही ग्रहण करना पडता है। पर १२ के पश्चात् तो हिन्दी और अग्रेजी की गिनतियाँ समान रूप से चलती है। अग्रेजी की गिनतियो मे भी इकाई का नाम पहले और दहाई का नाम बाद में लिया जाता है। जैसे —

13	Thirteen	(Three and Ten) 3 + 10	**तेरह—थर्टीन**
14	Fourteen	(Four and Ten) 4 + 10	**चौदह—फॉरटीन**
15	Fifteen	(Five and Ten) 5 + 10	**पन्द्रह—फिफ्टीन**
16	Sixteen	(Six and Ten) 6 + 10	**सोलह—सिक्स्टीन**
17	Seventeen	(Seven and Ten) 7 + 10	**सत्रह—सेवेण्टीन**
18	Eighteen	(Eight and Ten) 8 + 10	**अठारह—एट्टीन**
19	Nineteen	(Nine and Ten) 9 + 10	**उन्नीस—नाइनटीन**

तेरह से ले कर १८ तक दोनो भाषा की गिनतियाँ एक ही नियम पर चलती है, पर १९ से दोनो के मार्ग भिन्न हो गये है। अग्रेजी मे जब दहाई के साथ '९' नामक इकाई मिलती है, तब उसका नामकरण उसी नियम के अनुसार होता है जैसा कि अन्य इकाइयो के सयोग पर हुआ करता है। हिन्दी मे '९' अक जब किसी दहाई से मिलता है तब इसका और ही स्वरूप दिखाई पडता है। इसके लिए यह नियम है कि दहाई और नौ के सयोग

मे बनी हुई सख्या आगामी (आनेवाली) सख्या मे 'उन' लगा कर पुकारी जाती है । 'उन' का अर्थ है 'एक कम' जैसे १० मे जब ९ का योग होता है तब इसका नाम आगामी दहाई २० बीस मे 'उन' लगा कर 'उनवीस' या 'उन्नीस' रखा जाता है, जिसका अर्थ है 'बीस मे एक कम' अर्थात् १९ । यह सस्कृत के 'एकोनविंशति' के ढग पर रखा गया है । इसी प्रकार '९' के अन्य यौगिक देखिये --

२०+९=२९ उनतीस (अर्थात् तीस में एक कम)
३०+९=३९ उनतालीस (आगामी सख्या ४० में १ कम)
४०+९=४९ उनचास (आगामी सख्या ५० में १ कम)
५०+९=५९ उनसठ (अर्थात् आगामी संख्या ६० में एक कम)
६०+९=६९ उनहत्तर (अर्थात् आगामी संख्या ७० में एक कम)
७०+९=७९ उन्नासी (अर्थात् आगामी सख्या ८० में एक कम)

किन्तु ८०+९=८९ नवासी मे उपर्युक्त नियम नही दिखाई पडता और इसका नामकरण वैसा ही होता है जैसा अन्य अको के योग मे हुआ करता है, अर्थात् पूर्ववर्ती सख्याएँ सतासी, अट्ठासी जिस रूप मे बोली जाती है, उसी तुक तथा उसी रूप मे 'नवासी' का भी उच्चारण किया जाता है। इसी प्रकार सत्तानवे, अट्ठानवे के क्रम पर 'निन्यानवे' भी चलता है। तात्पर्य यह कि ८९ और ९९ मे 'उन' के नियम का अपवाद देखा जाता है । कितना अच्छा होता यदि १९, २९, ३९, ४९, ५९ ६९, और ७९ मे भी यही अपवाद मिलता ! इस अपवाद मे ये सख्याएँ अधिक सरल और बोधगम्य हो जाती और बच्चो के कोमल मस्तिष्क का बहुत बडा बोझ हल्का हो जाता। इस प्रकार '८९' और '९९' के क्रम पर इन सख्याओ का निम्नलिखित स्वरूप होता --

(१) 'उन्नीस' का रूप पूर्ववर्ती क्रमानुसार 'नौरह' (सत्रह, अठारह के तुक पर) होता।
(२) 'उन्तीस' का रूप पूर्ववर्ती क्रमानुसार 'नौविस' (सत्ताइस, अट्ठाइस के तुक पर) होता।
(३) 'उन्तालीस' का रूप पूर्ववर्ती क्रमानुसार 'नौतीस' (सैंतीस, अडतीस के तुक पर) होता।
(४) 'उन्चास' का रूप पूर्ववर्ती क्रमानुसार 'नौतालीस' (सैतालीस, अडतालीस के तुक पर) होता।
(५) 'उन्सठ' का रूप पूर्ववर्ती क्रमानुसार 'नौवन' (सत्तावन, अट्ठावन के तुक पर) होता।
(६) 'उनहत्तर' का रूप पूर्ववर्ती क्रमानुसार 'नौसठ' (सडसठ, अडसठ के तुक पर) होता।
(७) 'उन्यासी' का रूप पूर्ववर्ती क्रमानुसार 'नौहत्तर' (सतहत्तर, अठहत्तर के तुक पर) होता।

नवासी (८९) तथा निन्यानबे (९९) के रूप पूर्ववर्ती क्रमानुसार है ही। यदि '९' की सभी यौगिक सख्याओ का नामकरण उपर्युक्त पद्धति पर होता, तो बच्चे ६९, ५९ या ७९, ८९ के लिखने-पढने मे भूल न करते ।

अच्छा, अब आप बीस के पश्चात् की गिनतियो पर ध्यान दे। अग्रेजी भाषा की गिनतियाँ एक सुन्दर एव बोधगम्य प्रणाली पर चलती हैं और बच्चे इन्हे बड़ी ही प्रसन्नता से स्वल्प काल मे सीख लेते हैं। २० के बाद की गिनतियो को अध्यापक कदाचित् ही पुनर्वार बच्चो को बताता हो। लिखने पढने मे एक ही नियम चलता है। जिस प्रकार दहाई के अक का प्रथम तथा इकाई अक का उसके बाद नाम लिया जाता है, उसी प्रकार दहाई का अक पहले और इकाई का अक उसके बाद लिखा भी जाता है, जैसे २४ मे 'ट्वेन्टी' पहले और फिर 'फोर' बाद मे लिखा और पढा भी जाता है। यदि आपने बच्चे को ट्वेन्टीफाइव लिखने को कहा है तो बच्चा तुरन्त ही आपके बोलने के क्रम पर 'ट्वेन्टी' के लिए दहाई के स्थान पर 'दो' (टू) और इकाई के स्थान पर पांच (फाइव) लिख कर आपको '२५' दिखा देगा। इसी प्रकार बीस से ले कर सौ तक की गिनतियो को वह सहज ही लिख लेगा।

यदि आप स्वय कुछ गिनतियाँ लिखे और बच्चे मे उन्हे पढने के लिए कहे तो बच्चा सीधे क्रम पर उन्हे पढ भी देगा। जैसे '८५' आपने लिखा और बच्चो को इसे पढने या इसका नाम अक्षरो मे लिखने को कहा। बच्चो को इमे लिखते हुए बडी प्रसन्नता भी होगी और तुरन्त दहाई के स्थान पर लिखे हुए 'फोर' के लिए 'फॉरटी' और इकाई के स्थान पर लिखे अक के लिए 'फाइव' वे लिख-पढ देगे और इस भाँति उन्हे 'फारटीफाइव' लिखने या कहते विलम्ब न होगा। इस प्रकार हम देखते है कि अग्रेजी भाषा की गिनतियाँ (१ से १९ तक के अतिरिक्त) अत्यन्त सरल एव सहज बोधगम्य है। यही कारण है कि बच्चे इन्हे अनायास ही सीख लेते है।

पर यदि आप अग्रेजी की गिनतियो मे पूर्णत अभिज्ञ बालक को हिन्दी की गिनतिया सिखाना चाहे तो आप देखेगे कि बालक इन्हे सीखने मे आनाकानी करता है और पढने-लिखने से जी चुराता है। आपके पास सिवाय रटाने के और कोई चारा नही। यदि आप उसे बता दे कि '९' के यौगिको के अतिरिक्त अन्य यौगिक अपने ही अगो के नामानुसार पुकारे जाते हैं पर बोलने मे इकाई प्रथम और दहाई बाद मे कही जाती है जैसे २४ मे 'चौ' (चार का रूप) प्रथम और 'बीस' बाद मे बोला जाता है किन्तु लिखने मे दहाई प्रथम और इकाई बाद मे लिखी जाती है जैसे पैंतालीस मे 'तालीस' (चालीस का रूप) के लिए '४' दहाई पहले और (५) 'पैं' बाद मे लिखा जाता है, तो भी बालक के लिए ये गिनतियाँ सहज साध्य नही हो सकती। विवश हो, अध्यापक उसे मार-मार कर रटायेगा। यहाँ तक तो विशेष कष्ट नही, पर १९, २९, ३९, ४९, ५९, ६९, ७९, ८९ तथा ९९ मे बालक को लोहे के चने चबाने पडते हैं।

पाठकगण हिन्दी की गिनतियो से तो परिचित ही होगे, पर सभव है कि कतिपय पाठक अग्रेजी भाषा की गिनतियो से अनभिज्ञ हो। अतएव हम आवश्यक समझते है कि यहाँ दोनो

भाषाओं की गिनतियों के नाम अक्षरों में लिख दें और फिर इनकी विशेषताओं एवं त्रुटियों पर प्रकाश डालते हुए सुधार का सुगम पथ निर्दिष्ट करें --

हिन्दी		अंग्रेजी		हिन्दी		अंग्रेजी	
१	एक	1	वन	३२	बत्तीस	32	थर्टी टू
२	दो	2	टू	३३	तैंतीस	33	थर्टी थ्री
३	तीन	3	थ्री	३४	चौंतीस	34	थर्टी फोर
४	चार	4	फोर	३५	पैंतीस	35	थर्टी फाइव
५	पाँच	5	फाइव	३६	छत्तीस	36	थर्टी सिक्स
६	छ.	6	सिक्स	३७	सैंतीस	37	थर्टी सेविन
७	सात	7	सेविन	३८	अड़तीस	38	थर्टी एट
८	आठ	8	एट	३९	उनतालीस	39	थर्टी नाइन
९	नौ	9	नाइन	४०	चालीस	40	फॉरटी
१०	दस	10	टेन	४१	एकतालीस	41	फॉरटी वन
११	ग्यारह	11	एलेवन	४२	बयालीस	42	फॉरटी टू
१२	बारह	12	ट्वेल्व	४३	तैंतालीस	43	फॉरटी थ्री
१३	तेरह	13	थर्टीन	४४	चौवालीस	44	फॉरटी फोर
१४	चौदह	14	फॉरटीन	४५	पैंतालीस	45	फॉरटी फाइव
१५	पन्द्रह	15	फिफ्टीन	४६	छियालीस	46	फॉरटी सिक्स
१६	सोलह	16	सिक्स्टीन	४७	सैंतालीस	47	फॉरटी सेविन
१७	सत्रह	17	सेवेन्टीन	४८	अड़तालीस	48	फॉरटी एट
१८	अठारह	18	एट्टीन	४९	उनचास	49	फारटी नाइन
१९	उन्नीस	19	नाइनटीन	५०	पचास	50	फिफ्टी
२०	बीस	20	ट्वेन्टी	५१	इक्यावन	51	फिफ्टी वन
२१	इक्कीस	21	ट्वेंटी वन	५२	बावन	52	फिफ्टी टू
२२	बाईस	22	ट्वेंटी टू	५३	तिरपन	53	फिफ्टी थ्री
२३	तेइस	23	ट्वेंटी थ्री	५४	चौवन	54	फिफ्टी फोर
२४	चौबीस	24	ट्वेंटी फोर	५५	पचपन	55	फिफ्टी फाइव
२५	पच्चीस	25	ट्वेंटी फाइव	५६	छप्पन	56	फिफ्टी सिक्स
२६	छब्बीस	26	ट्वेंटी सिक्स	५७	सत्तावन	57	फिफ्टी सेविन
२७	सत्ताईस	27	ट्वेंटी सेविन	५८	अट्ठावन	58	फिफ्टी एट
२८	अट्ठाईस	28	टवेंटी एट	५९	उनसठ	59	फिफ्टी नाइन
२९	उनतीस	29	ट्वेंटी नाइन	६०	साठ	60	सिक्स्टी
३०	तीस	30	थर्टी	६१	इकसठ	61	सिक्स्टी वन
३१	इकतीस	31	थर्टी वन	६२	बासठ	62	सिक्स्टी टू

हिन्दी			अंग्रेजी	हिन्दी			अंग्रेजी
६३	तिरसठ	63	सिक्स्टी थ्री	८२	बयासी	82	एट्टी टू
६४	चौंसठ	64	सिक्स्टी फोर	८३	तिरासी	83	एट्टी थ्री
६५	पंसठ	65	सिक्स्टी फाइव	८४	चौरासी	84	एट्टी फोर
६६	छासठ	66	सिक्स्टी सिक्स	८५	पचासी	85	एट्टी फाइव
६७	सड़सठ	67	सिक्स्टी सेविन	८६	छियासी	86	एट्टी सिक्स
६८	अड़सठ	68	सिक्स्टी एट	८७	सत्तासी	87	एट्टी सेविन
६९	उनहत्तर	69	सिक्स्टी नाइन	८८	अट्ठासी	88	एट्टी एट
७०	सत्तर	70	सेवेंटी	८९	नवासी	89	एट्टी नाइन
७१	एकहत्तर	71	सेवेंटी वन	९०	नब्बे	90	नाइटी
७२	बहत्तर	72	सेवेंटी टू	९१	एक्यानवे	91	नाइटी वन
७३	तिहत्तर	73	सेवेंटी थ्री	९२	बानवे	92	नाइटी टू
७४	चौहत्तर	74	सेवेंटी फोर	९३	तिरानवे	93	नाइटी थ्री
७५	पचहत्तर	75	सेवेंटी फाइव	९४	चौरानवे	94	नाइटी फोर
७६	छिहत्तर	76	सेवेंटी सिक्स	९५	पचानवे	95	नाइटी फाइव
७७	सतहत्तर	77	सेवेंटी सेविन	९६	छियानवे	96	नाइटी सिक्स
७८	अठहत्तर	78	सेवेंटी एट	९७	सत्तानवे	97	नाइटी सेविन
७९	उन्यासी	79	सेवेण्टी नाइन	९८	अट्ठानवे	98	नाइण्टी एट
८०	अस्सी	80	एट्टी	९९	निन्यानवे	99	नाइटी नाइन
८१	इक्यासी	81	एट्टी वन	१००	सौ	100	हण्ड्रेड

ऊपर लिखी गिनतियो का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है—

(१) रेखांकित हिन्दी गिनतियां विचित्र नियम पर हैं एव बच्चो के लिए दुर्बोध है, किन्तु रेखांकित अंग्रेजी गिनतिया सुबोध एव नियमित ढंग पर हैं।

(२) हिन्दी की सभी यौगिक गिनतियाँ दुर्बोध हैं तथा इनके लिखे जाने का क्रम पढे जाने के क्रम के विपरीत है। परन्तु अंग्रेजी की सभी गिनतियां (२० के आगे की) सरल हैं तथा उनके लिखने-पढने का एक ही नियम है।

(३) हिन्दी की गिनतियों के नामकरण के नियम का कहीं-कहीं अपवाद भी पाया जाता है, जैसे ८९ और ९९ में, पर अंग्रेजी में केवल ११, १२ में ही ऐसा हुआ है।

(४) अंग्रेजी की गिनतिया प्राय एक ही सुबोध प्रणाली पर चलने के कारण सरल एव सहज बोधगम्य हैं, पर हिन्दी की गिनतियो में इसका सर्वथा अभाव है।

अब हम इनमें सुधार की योजना आप के सम्मुख रखते हैं। सुधार के दो मार्ग है —

(१) 'नौ' के यौगिकों के नाम उनकी पूर्ववर्ती गिनतियों के ढग पर रख दिये जायं, जैसे

'उन्नीस' के स्थान पर 'नौरह', 'उन्तीस' के स्थान पर 'नौबिस'। ऐसा कर देने पर ९ के सभी यौगिक 'नवासी' तथा 'निन्यानबे' की भाँति एक शृंखला में आ जायेंगे और उनका स्वरूप इस प्रकार हो जायगा—१९, २९, ३९, ४९, ५९, ६९, ७९, ८९ और ९९ के लिए क्रमश: नौरह, नौबिस, नौतिस, नौतालिस, नौवन, नौसठ, नौहत्तर, नवासी और निन्यानबे।

इस सुधार से बच्चो का विशेष इष्ट सिद्ध न होगा। केवल ९ के यौगिक सरल हो जायेंगे, शेष समस्याएँ पूर्ववत् ही रहेगी। अतएव आमूल परिवर्तन कर देने पर ही हिन्दी की गिनतियाँ सुबोध हो सकेगी।

(२) **दहाई और इकाई के क्रम से, जैसे ये अक लिखे जाते हो, इनका नामकरण हो अर्थात् बोलने में दहाई पहले और इकाई बाद में बोली जाय, जैसा कि अग्रेजी की गिनतियो में होता है।**

इस नियम से गिनतियो का जो स्वरूप बनेगा वह बडा ही सरल एव बोधगम्य होगा तथा अग्रेजी-हिन्दी की गिनतियो की एकरूपता हो जाने के कारण दोनो भाषाओ के जिज्ञासुओ के सीखने का मार्ग सरल एव प्रशस्त हो जायगा। अतएव अग्रेजी की गिनतियो का साधारण एव हिन्दी की गिनतियो का आमूल सुधार आवश्यक है।

अब हम पाठको को इन नये रूपो से परिचित करा दे —

(१) **अग्रेजी की गिनतिया ११ से १९ तक बदल दी जायें और उनका स्वरूप ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ और १९ के स्थान पर क्रमश: टेनवन, टेनटू, टेनथ्री, टेनफोर, टेनफाइव, टेन सिक्स, टेनसेविन, टेनएट और टेननाइन के रूप में मान्य हो और २० ट्वेण्टी के आगे की सभी गिनतियां ज्यो की त्यो रख दी जाय। इस प्रकार सभी गिनतिया शृंखलाबद्ध एवं व्यवस्थित रूप में हो जायेंगी।**

यदि रूढिवादी विद्वान्, अध्यापक एव शिक्षा विभाग के उच्चाधिकारी बच्चो के कोमल मस्तिष्क के अनुकूल इन गिनतियो को बनाने का प्रयत्न करे और प्राचीन परिपाटी पर चलने का लोभ सवरण कर अपनी उदारता प्रदर्शित करे, तो निस्सदेह शिशु-जगत् का प्रारम्भिक गणित अधिक सरल हो जाय। अन्य भाषा-भाषियो के लिए भी राष्ट्रभाषा हिन्दी की गिनतियो का ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यन्त सरल हो जाय।

(२) हिन्दी गिनतियो का नवीन नामकरण इस प्रकार हो —

**एक, दो, तीन, चार, पाच, छ, सात, आठ, नौ, दस।
दसएक, दसदो, दसतीन, दसचार, दसपांच, दसछ, दससात, दसआठ, दसनौ, बीस।
बीसेक, बीसदो, बीसतीन, बीसचार, बीसपांच, बीसछ, बीससात, बीसआठ, बीसनौ, तीस।
तीसेक, तीसदो, तीसतीन, तीसचार, तीसपांच, तीसछ, तीससात, तीसआठ, तीसनौ, चालीस।**

चालीसेक, चालीसदो, चालीसतीन, चालीसचार, चालीस पांच, चालीसछः, चालीससात, चालीस-आठ, चालीसनौ, पचास ।

पचासेक, पचासदो, पचासतीन, पचासचार, पचासपांच, पचासछ, पचाससात, पचासआठ, पचासनौ, साठ ।

साठेक, साठदो, साठतीन, साठचार, साठपांच, साठछ, साठसात, साठआठ, साठनौ, सत्तर ।

सत्तरेक, सत्तरदो, सत्तरतीन, सत्तरचार, सत्तरपांच, सत्तरछ, सत्तरसात, सत्तरआठ, सत्तरनौ, अस्सी ।

असीएक, असीदो, असीतीन, असीचार, असीपांच, असीछ, असीसात, असीआठ, असीनौ, नब्बे ।

नब्बेएक, नब्बेदो, नब्बेतीन, नब्बेचार, नब्बेपांच, नब्बेछ, नब्बेसात, नब्बेआठ, नब्बेनौ, सौ ।

उपर्युक्त नामकरण अत्यन्त सरल, स्वाभाविक, नियमबद्ध एवं एक शृंखला में है। यही क्रम अंग्रेजी में भी है।

यदि हिन्दी संसार ने मेरा यह नवीन सुझाव स्वीकार किया, तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

श्री गुरु-ग्रंथ-साहिब के धार्मिक सिद्धान्त

श्री जयराम मिश्र, एम० ए०, एम० एड०, साहित्यरत्न

श्री गुरु नानक देव जी ने सिक्ख धर्म की स्थापना अपनी चार रचनाओ जप जी, ओंकार, पट्टी सिद्ध तथा गोष्ठ एव दो सहस्र के ऊपर पदो के आधार पर की। उनके नौ उत्तराधिकारी गुरुओ ने उन के सिद्धान्तो को और भी व्यापक तथा ग्राह्य बनाने का प्रयास किया। भाई गुरुदास जी ने भी सिक्ख-धर्म के परिवर्द्धन मे पर्याप्त योग दिया। ये सिक्खो के पाँचवे गुरु श्री गुरु अर्जुन देव के समकालीन थे।

सिक्ख धर्म का प्रधान लक्ष्य जीवन को वीरतापूर्ण ढग से व्यतीत करना है। वे जीवन की अस्वीकृति तथा बाह्य त्याग को पाखण्ड समझते है। दसो गुरुओ का जीवन ही इस बात का साक्षी है। सद् आचारो की जीवन की व्यावहारिकता मे महान आवश्यकता पड़ती है। सत्य, शिव और सुन्दरम् सदाचरण के ही आश्रित है। यही सत्य, शिवम् और सुन्दरम् जीवन के प्रधान लक्ष्य है। सदाचार बर्तने वाला व्यक्ति ही सच्चा साधु, महान् दार्शनिक और आदर्श पथ-प्रदर्शक है, क्योकि उसे अनन्त शक्तिमान परमात्मा से प्रकाश और शक्ति मिलती रहती है।

अब स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि सत्य क्या वस्तु है? क्या यह सत्य ससार से परे की वस्तु है? क्या हम कार्य और कारण से बाहर जा सकते है? आत्मा क्या है और इसका ज्ञाता कौन है? अन्तर्साधन और बहिर्साधन क्या है? इन साधनो का परिणाम क्या है? इन सब का उत्तर सिक्ख गुरुओ ने देने की चेष्टा की है।

अकाल पुरुष

यद्यपि गुरुओ की रचनाओ मे बहुत से देवी-देवताओ के नाम आये है, पर वास्तविकता यह है कि वे लोग बहु देववाद के कट्टर विरोधी है। सिक्ख धर्म-ग्रन्थ का प्रारम्भ १ अक से होता है। किसी शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले जा सकते है, पर अक के अर्थ मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही हो सकता। अको का अर्थ एक प्रकार से सदैव के लिए निश्चित-सा रहता है। एक का अर्थ एक है। इसी प्रकार सौ का अर्थ सौ होगा, अट्ठानबे अथवा अस्सी नही। गुरु नानक देव ने परमात्मा की एकता प्रदर्शित करने के लिए १ अक का प्रयोग किया है—

"एक ओंकार सतिनाम करता पुरख निरभउ निरवैर अकाल मूरति, अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।"

"वह परमात्मा एक है । वह ओकार स्वरूप है, सद्रूप है, कर्ता पुरुष है, निर्भय है, निर्वैर है, अकालमूर्ति है, योनि-रहित है, स्वयम् है । गुरु के प्रसाद (से प्राप्त होता है ।)"

उपर्युक्त शब्द सिक्खो के मूल मन्त्र है । प्रत्येक व्यक्ति, जो सिक्ख धर्म मे दीक्षित किया जाता है, को उपर्युक्त मन्त्र की पाच बार आवृत्ति करनी पडती है । एक ही सत्य परमात्मा है, चाहे उसे राम कहो या रहीम, खुदा या गोविन्द । सिक्ख धर्म के जीवन का चरम लक्ष्य परमात्मा की अनुभूति करनी है और उसी के साथ अपना तदाकार सबध स्थापित करना है ।

जो कुछ भी दृश्य ओर अदृश्य सृष्टि है, सब परमात्मा की रची हुई है । स्वय परमात्मा समस्त सृष्टि का निर्माण करता है । सृष्टि के निर्माण मे परमात्मा को किसी अन्य कारण की आवश्यकता नही पडी —

"आपे पटी कलम आपि उपरि लेखु भि तू ।
एको कहीऐ नानक दूजा काहे कू ॥
तू आपे आपि वरतदा आपि बणत बणाई ।
तुधु बिनु दूजा को नही तू रहिआ समाई ॥
तेरी गति मिति तू है जाणदा तुधु कीमति पाई ।
तू अलख अगोचर अगमु है गुरमति दिखाई ॥"

(वार मलार महला १, पौडी २८)

"तुम्ही पट्टी हो, तुम्ही कलम हो और तुम्ही उस पर की लिखावट हो । तुम अकेले हो, नानक कहते है तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन कहा जा सकता है ? तुम अपने आप स्वय बर्तते हो । तुम्ही ने अपने को ससार के रूप मे बनाया है । तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है ही नही । तुम्ही सब मे व्याप्त हो । अपना विस्तार और अपनी गति तुम आप जानते हो । तुम अलक्ष्य और अगोचर हो । तुम गुरु के शब्दो द्वारा जाने जा सकते हो ।"

प्रकृति, माया, मोह, गुण, देव और दानव सभी उसकी सृष्टि है । इन सब की परमात्मा से पृथक् कोई भी सत्ता नही है —

"कोटि बिसन कीने अवतार । कोटि ब्रहमड जाके ध्रमसाल ॥
कोटि महेस उपाइ समाए । कोटि ब्रहमे जगु साजण लाए ॥
ऐसो धणी गोविन्दु हमारा । बरनि न साकउ गुण बिसथारा ॥"

(भैरव अष्टपदीआ महला ५)

"उसने करोड़ो विष्णुओ की सृष्टि की । करोडो सृष्टियाँ उसके धर्म सिखलाने की पाठशालाए है। उसने करोड़ो शिवो की सृष्टि की और उनका सहार किया। उसी ने करोड़ो ब्रह्मा का निर्माण सृष्टि-रचना के निमित्त किया । मेरा गोविन्द इतना महान् है कि मै उसके अनन्त गुणो का वर्णन कर ही नही सकता ।"

वह अकाल पुरुष सबसे महान है। उसका आदि-अत देवी और देवता तथा अवतार नही जान सकते —

"महिमा न जानहि बेद । ब्रहमे नही जानहि भेद ॥
अवतार न जानहि अतु । परमेसरु पारब्रहम बेअतु ॥१॥
अपनी गति आपि जानै । सुणि सुणि अवर बखानै ॥१॥ रहाउ
सकरा नही जानहि भेव । खोजत हारे देव ॥
देवीआ न जानै मरम । सभ ऊपरि अलख पारब्रहम ॥२॥
आपनि रगि करता केल । आपि बिछोरै आपे मेलि ॥
इकि भरमे इक भगती लाए । आपणा कीआ आपि जणाए ॥३॥
सतन की सुणि साची साखी । सो बोलहि जो पेखहि आखी ॥
नही लेपु तिस पुनि ना पापि । नानक का प्रभु आपे आपि ॥४॥२५॥३६॥"

"उसकी महिमा वेद नही जान पाते । ब्रह्मादिक देवता भी उसके भेद को नही जान सकते । अवतार उसका अत नही जानते है । वह पारब्रह्म परमेश्वर अतरहित है । वह अपनी गति स्वय आप ही जानता है। अन्य लोग तो सुन-सुन कर उसके गुणो का बखान करते है । शकर इत्यादि उसका भेद नही जानते है । देव गण उसको खोज-खोज कर हार गये है । देवियाँ उसके मर्म को नही जान पाई है । अलक्ष्य, परब्रह्म परमात्मा सबके ऊपर है। वह अपने रग मे स्वय क्रीडा करता है । वह अपने को अपने मे मिलाता है और अपने को अपने मे पृथक् करता है । कुछ मनुष्य तो सशय मे इधर-उधर भटकते रहते है और कुछ उसकी सच्ची भक्ति मे अनुरक्त है । वह ससार की सृष्टि करके अपने को उसमे व्यक्त करता है । सन्तो और भक्तो की सच्ची साखी सुनिये। वे जो कुछ अपनी आँखो से प्रत्यक्ष देखते है, वही कहते है । वह सभी पाप-पुण्यो से परे है । नानक का प्रभु स्वयम् है ।"

अकाल पुरुष ही सत्य है और वही शाश्वत है —

"प्रीति लगी तिसु सच सिउ मेरे न आवै जाइ ।
ना वेछोड़िया विछुड़ै सभ महि रहिआ समाइ ॥
दीन दरद दुख भजना सेवक कै सति भाइ ।
अचरज रूप निरंजनो गुरि मेलाइया माइ ॥१॥

भाई रे मीतु करहु प्रभु सोइ ।
माइआ मोह परीति ध्रिग सुखी न दीसै कोइ ॥ रहाउ
दाना दाता सीलवंतु निरमलु रूप अपारु ।
सखा सहाई अति वडा ऊचा वडा अपारु ॥
बालक बिरधि न जाणीऐ निहचलु तिसु दरबारु ।
जो मंगीऐ सोई पाइऐ निधारा आधारु ॥२॥
जिसु पेखत किलविख हिरहि मनि तनि होवै सांति ।
इकु मनि एकु धिआइऐ मन की लाहि भरांति ॥
गुण निधानु नव तनु सदा पूरन जाकी दाति ।
सदा सदा आराधीऐ दिनु विसरहु नही राति ॥३॥१३॥८३॥"

"मेरी प्रीति उस सत्य पुरुष से लगी है, जो न जन्म लेता है, न मरता है। वह पृथक नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका सब मे निवास स्थान है। वह दीनो के दु:ख-दर्द को दूर करने वाला है। अपने सेवक को सत्य रूप से प्रतीत होता है। ऐ माँ, सद्गुरु ने मुझे उसके आश्चर्य-मय और निरन्जन-स्वरूप से मिला दिया है। ऐ भाई, ऐसे प्रभु को अपना मित्र बनाओ। माया, मोह और प्रीति को धिक्कार है, इनमे पड कर कोई भी सुखी नही दीख पडता। वही बुद्धिमान है, दाता है, शीलवत है तथा निर्मल है। उसका रूप अनन्त है। वह महान् मित्र और सहायक है। वह अपरम्पार है, वह न बालक होता है और न वृद्ध। उसका दरबार निश्चल है। हम जो कुछ भी उससे माँगते है, सभी कुछ उससे पाते है। वह निराधारो का आधार है। उसका साक्षात्कार होने पर सारे कल्मष नष्ट हो जाते है, तन और मन को महान् शान्ति मिलती है। वह सदैव नवीन तन वाला है। उसके दान सदा पूर्ण है। ऐसे प्रभु की सदैव आराधना कीजिये, न उसे दिन मे भूलिये, न रात मे।"

सृष्टि-रचना

सिक्ख गुरुओ ने इस प्रश्न पर बहुत विचार नही किया है कि सृष्टि-रचना क्यो और कैसे हुई ? उन्होने यही कहा है कि परमात्मा की इच्छा से सृष्टिरचना हुई। सृष्टि-रचना का क्रम मनुष्य जान ही नही सकता। सृष्टि-निर्माता ही सृष्टि-रचना का क्रम जानता है। गुरुओ का यही सिद्धात है कि ससार परमात्मा के 'हुक्म' से उपजता है —

"हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई ।
हुकमी होवनि जीव हुकमि मिलै वडिआई ॥"

(जपु महला १।२)

"सभी आकारो की उत्पत्ति उसके 'हुक्म' से हुई है। उसके 'हुक्म' का वर्णन नही किया जा सकता। उसके ही 'हुक्म' से सभी जीवो की उत्पत्ति हुई। उसका 'हुक्म' सबके ऊपर है।"

गुरुओ ने अपनी वाणी मे एक ऐसे समय की चर्चा की है, जब सृष्टि-रचना थी ही नही, केवल निरकार ही मात्र था --

"अरबद नरबद धुधूकारा। धरनि न गगना हुकुम अपारा॥
न दिनु रैनि न चन न सूरज सुन समाधि लगाइदा॥१॥"

(मारू अजली महला १)

"अगणित युगो पर्यंत महान अन्धकार था। न तो पृथ्वी थी और न आकाश था, प्रभु का अपार 'हुकुम' मात्र था। न दिन था, न रात थी। न तो चन्द्रमा था, न सूर्य, केवल शून्य मात्र था।" किन्तु कोई भी यह नही बतला सकता कि सृष्टि-रचना का प्रारभ कब और कैसे हुआ --

"कवणु सु बेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु।
कवणि सि रुती माहु कवण जितु होआ आकार॥
वेल न पाईआ पडती जि होवै लेखु पुराणु।
वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु॥
थिति वारु न जोगी जाणै रुति माहु न कोई।
जा करता सिरठी कओ सजि आपे जाणै सोई॥२१॥"

(जपु जी महला १)

"सृष्टि की जब रचना हुई, तो कौन घडी, कौन वक्त, कौन तिथि, कौन वार, कौन ऋतु, कौन महीना था, इसे कोई भी नही जानता। पडित लोग वेला नही जानते, क्योकि यदि वे निश्चित घडी जानते होते, तो पुराणो मे अवश्य इसका उल्लेख करते। काजी भी सृष्टि-रचना का समय नही जानते, क्योकि यदि जानते होते, तो निश्चय ही कुरान मे लिखते। योगी-गण भी सृष्टि-रचना की तिथि और घडी नही जानते। अन्य कोई भी सृष्टि रचना की ऋतु अथवा महीना नही जानते। जिसने सृष्टि की रचना की है, वही इन सब वस्तुओ को जानता है।"

सिद्ध-गोष्ठ मे जब सिद्धो ने श्री नानक देव से सृष्टि-प्रारभ के विषय मे प्रश्न किया कि **"आदि कउ कवनु बीचारु कथीअले सुंन कहा धरि वासो ?" (सिद्ध गोष्ठ २१)** अर्थात् "सृष्टि आरभ के सबध मे आप क्या विचार कथन करते है और सृष्टि के प्रारभ के पूर्व उस निरकार के रहने की स्थिति किस प्रकार थी ?" तब इसका उत्तर नानक जी ने यह दिया कि **"आदि कउ बिसमादु बीचारु कथीअले सुंन निरन्तरि वासु लीआ।" (सिद्ध-गोष्ठ २३)**

इसका तात्पर्य यह है कि सृष्टि-रचना के प्रारभ के सबध में विचार करना आश्चर्यमय है । सृष्टि-रचना के प्रारभ पर विचार करना हैरानी मोल लेना है । निरंकार का वास तब भी हर स्थान पर था । शून्य अवस्था मे भी निरकार सर्व स्थान पर व्यापक था । दशम गुरु का भी इस सबध में यह कथन है—**"तुमरा लखा न जाइ पसारा । किह बिधि सजा प्रथम ससारा ॥ १७॥"** "हम लोग नही जान सकते कि पहले किस प्रकार सृष्टि-रचना हुई ।"

सिक्ख गुरु यह मानते है कि सृष्टि-रचना और विनाश का क्रम अगणित बार हुआ है । गुरु अर्जुन देव सृष्टि-रचना और इसके विनाश के क्रम की तुलना बाजीगर के खेल से करते है । उनका कथन इस प्रकार है—

"बाजीगरि जैसे बाजी पाई । नाना रूप भेख दिखलाई ॥
सांगु उतारि थाम्हिओ पासारा । तब एको एककारा ॥
कवन रूप द्रिस्टिओ बिनसाइओ । कतहि गइओ उह कनते आइओ ॥१॥ रहाउ
जल ते उठहि अनिक तरगग । कनिक भूखन कीन्हे बहु रंगा ॥
बीजु बीजि देखिओ बहु प्रकारा । फल पाके ते एकंकारा ॥
सहस घटा महि एकु अकासु । घट फूटे ते ओहि प्रगासु ॥
भरम लोभ मोह माइआ बिकार । भ्रम छूटे ते एककारु ॥
ओह अविनासी बिनसत नाही । नाको आवै नाको जाही ॥
गुरि पूरै हउमै मलु खोई । कहु नानक मेरी धरम गति होई ॥४॥१॥"

(सूही महला ५)

"जब बाजीगर अपना खेल दिखाता है, तो वह अपने नाना रूप तथा वेष दिखाता है । जब वह अपना स्वाग उतार कर रख देता है, तो सारे विस्तार समाप्त हो जाते है और बाजीगर अकेला रह जाता है । जो स्वरूप दिखलाई पडते थे, उन्हे किसने नष्ट कर दिया ? वे कहाँ से आये थे और कहाँ चले गये ? जल मे अनेक तरगें उठती है और सुवर्ण से नाना आभूषण बनाये जाते है । अनेक प्रकार के बीज बोये गये, तो उनमे वही बीज फिर दिखाई देते है । अनेक घटो मे एक ही आकाश व्याप्त है । किन्तु जब घट फूट जाते है, तो आकाश फिर पहले के ही रूप मे घटो का स्थान ग्रहण कर लेता है । भ्रम, लोभ और मोह आदि माया के विकार है, किन्तु जब भ्रमादिक छूट जाते है, तो एक परमात्मा अवशिष्ट रहता है । वह अविनाशी है, और उसका कभी नाश नही होता । वह न कही आता है, और न कही जाता है । पूर्ण गुरु ने "मै पन" का मल नष्ट कर दिया और नानक कहते है कि मैने परम गति प्राप्त कर ली ।"

कुछ दार्शनिकों ने संसार का अस्तित्व ही मिथ्या माना है, किन्तु गुरु लोग ससार को परिवर्तन-शील, नाशवान मानते हुए भी सत्य समझते है.—

"आप सति सति सब धारी । आपे गुण आपे गुण कारी ॥१॥१७॥"

(गउड़ी सुखमनी महला ५)

"आप (परमात्मा) स्वय सत्य है, और जो कुछ उसने रचा है, वह भी सत्य है। आप ही गुणकर्ता है, और आप ही गुण है।"

"सति करम जाकी रचना सति । मूलु सति सति उत्पति ॥६॥१६॥"

(गउडी सुखमनी महला ५)

"उसके कार्य और उसकी रचना सभी सत्य है। सत्य रूपी मूल से सत्य की ही उत्पत्ति हुई है।"

इस स्थान पर इस शका का उठना स्वाभाविक है कि गुरु-वाणी के बीच ही इस ससार को 'स्वप्न' और "धुए का पहाड" कह के वर्णन किया गया है, फिर यह सत्य स्वरूप किस प्रकार हुआ ? "स्वप्न" और "धुए का पहाड" का आशय यह है कि ससार को जो हम स्थायी और शाश्वत समझते है, वह गलत है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि ससार सत्य रूप है ही नही —

"सच तेरे खड सच्चे ब्रहमड। सच्चे तेरे लोअ सच्चे आकार ।
सच्चे तेरे करणे सरब बीचारु ॥१॥२॥"

(सलोक महला १, वार आसा)

"तुम्हारे ब्रह्माण्ड और उसके खण्ड सच्चे है। तुम्हारे लोक और उसके आकार सभी सच्चे है। जो कुछ तुमने रचे है, सब सच्चे है।"

अत जीवन सत्य है। सभी सृष्टि की रचना के पीछे कुछ न कुछ मन्तव्य अवश्य है। किन्तु उस मन्तव्य का रहस्य केवल मनुष्य पर प्रकट होता है। किन्तु कब ? जब वह अपने सपूर्ण अहभाव को नष्ट कर देता है।

किन्ही दार्शनिकों के अनुसार परमात्मा को सृष्टि-निर्माण मे पचभूतो की आवश्यकता पडी। वे यह तर्क उपस्थित करते है कि जिस भाँति कुम्हार को बर्तन बनाने के लिए मिट्टी और चाक की आवश्यकता पडती है, उसी भाँति परमात्मा को भी सृष्टि-रचना के निमित्त कुछ उपादानो की आवश्यकता पडती है। पर सिख-धर्म मे इस प्रकार की धारणा नही है —

"तू पेड़ साख तेरी फूलनी । तू सूखम होआ असथूली ॥
तूं जलनिधि तूं फेन बुदबुदा ॥
तुध बिनु अवर न भालीए जोउ ॥

तूं सूतु मणीए भी तू है। तू गंठी मेरु सिरि तूं है ॥
आदि मधि अंति प्रभु सोई ॥
अवरु न कोई दिखालिऐ जीव ॥२॥२१॥२८॥"

(माझ महला ५)

"तुम वृक्ष हो, और ये (जगत्) तुम्हारी फूली हुई शाखाएँ हैं। सूक्ष्म से स्थूल तुम्ही हुये हो। तू ही समुद्र है, तू ही फेन है, और तू ही बुदबुदा है। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नही है। तू ही सूत है, और तू ही माला की गुरिया है। तू ही उस माले की गाँठ है, और तू ही उसका सुमेरु है। वही प्रभु प्रारम्भ, मध्य और अन्त मे है। उसके अतिरिक्त और कोई दिखाई ही नही देता।"

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रभु ही सृष्टि का कर्ता है, और वही उसका निमित्त उपादान कारण भी है।

मनुष्य

सभी जीवो मे जीवन और चेतनता पाई जाती है। किन्तु मनुष्य मे चेतनता जितनी अधिक मात्रा मे पाई जाती है, उतनी और किसी भी जीव मे नही। इसी से मनुष्य योनि सब योनियो से बडी मानी गई है—

"अवर जोनि तेरी पनिहारी। इसु धरती महि तेरी सिकदारी॥४॥१२॥"

(आसा महला ५)

"अन्य योनियाँ तुम्हारी पनिहारिनें है। इस धरती के स्वामी तुम्ही हो।"

गुरुमत का यह सिद्धान्त है कि मनुष्य केवल साढे तीन हाथ का शरीर ही मात्र नही है, उसके बीच महान ज्योति निरकार परमात्मा ने रखी है.—

"ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी।
ता तू जगु महि आइआ ॥३३॥"

(रामकली महला ३, अनन्द)

"ऐ मेरे शरीर, तुममे परमात्मा ने ज्योति रखी है, फिर तुम जगत् में आये हो।"

"मैं पन" ही सृष्टि के निर्माण का प्रधान कारण है—

"हउ मैं एहा जाति है हउ मैं करम कमाहि।
हउ मैं एई बन्धना फिरि फिरि जोनि पाहि॥
हउ मैं किथहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ।
हउमैं एहो हुकुम है पइऐ कीरति फिराहि॥
हउमैं दीरघ रोग है दारू भी इस माहि।

किरपा करे जि आपणी ता गुरु का सबदु कमाहि ॥
नानक कहै सुणहु जनहु इनु संजम दुख जाहि ॥२॥"

(महला २, आसा दी वार)

"अहभाव मे जातिगत अहकार होता है। सभी कर्म भी इसी पर अवलबित हैं। इसी अहम् मे ही बन्धन है, जिससे हमे बार-बार योनि के अन्तर्गत आना पडता है। (जन्म धारण करना पडता है।) यह अहभाव कहा से उपजता है? किस सयम से इसका नाश होता है? इसकी उत्पत्ति परमात्मा के 'हुकुम' से हुई है। अपने ही सस्कारो से बधा हुआ यह आता है, और जाता है। इस अहम् मे महान् रोग है, और इसमे औषधि भी है। यदि परमात्मा (जीव के ऊपर) अपनी कृपा कर दे, तो मनुष्य गुरु के शब्द पर अभ्यास करना प्रारभ कर देता है। 'नानक' का कथन है कि ऐ परमात्मा के भक्तो, सुनो, इसी सयम से दुखो का नाश होता है।"

सक्षेपत जीवात्मा का स्वरूप इस भाँति निरूपित किया जा सकता है। चैतन्य महासागर मे परमात्मा की इच्छा मे जीव रूपी अगणित बुलबुले उठा करते है। ये बुलबुले व्यक्तिगत अहकार से युक्त हो जाते है। वे व्यक्तिगत अहकार के वशीभूत हो कर पृथक्-पृथक् स्वभाव धारण कर लेते है। इन जीवों का व्यक्तिगत क्रिया-कलाप ही "वियोग" है। तात्पर्य यह कि जीव परमात्मा से "वियोगी" हो जाता है। जीव का 'अहभाव' अथवा 'मै पन' उसके अन्तर्गत अनेक समस्याओ की सृष्टि करता है। इस "मै पन" की रक्षा मे ही प्राणी सदैव तत्पर रहता है। प्राणियो का सघर्ष इसी "मै पन" के कारण अत्यत दुरूह होता जाता है। "मै पन" की भावना से किये हुए सारे कार्य हमारे गले की फाँसी बन जाते है। "अहभाव" हमारे पैरो की बेडी बन जाता है। किये हुए कार्य हमारे मस्तिष्क पर अपना सस्कार छोड जाते है, और जब उसी कार्य की पुनरावृत्ति की जाती है, तो सस्कार और भी प्रबल बनते जाते है। उसी कार्य की अनेक बार पुनरावृत्ति से मस्तिष्क के सस्कार हमारे स्वभाव बन जाते है, और हम अपने स्वभाव के दास बन जाते है। इस भाँति हमारे पूर्व कर्म हमारे वर्तमान कर्म को प्रभावित करते रहते है। गुरु नानक देव ने अपने एक शब्द मे इसे अत्यत सुन्दर रूप मे व्यक्त किया है—

"करणी कागदु मन मस वाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाएनि तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अतु हरे ॥१॥
चित चेतसि की नही बावरिआ।
हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥१॥ रहाउ
जाली रैनि जाल दिन हूआ जेती घड़ी फाही तेती।
हसि हसि चोग चुगहि नित फासहि छूटसि मूड़े कवन गुणी ॥२॥

काइआ आरणु मनु विचि लोहा पंच अगिनि तिनु लागि रही ।
कोइले पाप पड़े तिस ऊपरि मनु जलिआ संन्ही चिन्त भई ॥३॥"
(मारू महला १)

"मन कागज है, और कर्म स्याही है। बुरी और भली दो प्रकार की लिखावट इस पर लिखी गई है। हम अपने पूर्व कर्मों द्वारा चलाये जाते है। परमात्मा, तुम्हारे गुणो का अन्त नही है। अरे बावरे, तू क्यो नही चेतता कि प्रभु के भूलने से तुम्हारे सभी गुणो का नाश हो जायगा। रात जाली (छोटा जाल) है, दिन (बडा) जाल है। जितनी घडियाँ है, तुम्हे निरन्तर फँसाती रहती है। तुम हँस-हँस कर जाल के भीतर रखे हुए दाने को चुगते रहते हो, और प्रति क्षण फँसते जाते हो। तुम अपने को उस जाल से किस भाँति मुक्त करोगे? शरीर भट्टी है। मन इस भट्टी का लोहा है। पाँच अग्नियाँ (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह) निरन्तर इस शरीर रूपी भट्टी मे जल कर, मन रूपी लोहे को जलाती रहती है। तुम्हारे पाप रूपी कोयले उस अग्नि के ऊपर पड कर उसे और भी प्रज्वलित करते रहते है। मन रूपी लोहा चिन्ता रूपी सणसी के द्वारा पकडा जा कर निरन्तर जलता रहता है।"

जीव की मुक्ति तब कैसे हो? उपर्युक्त पद के अतिम चरण मे उत्तर दिया गया है। वह इस प्रकार है—

"भइआ मनूर कचनु फिरि होवै जि गुरु मिलै तिनेहा ।
एकु नाम अमृत ओहु देवै तउ नानक त्रिसटसि देह ॥४॥३॥"
(मारू महला १)

"लोहा सद्गुरु की प्राप्ति होने पर, कचन के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। वह सद्गुरु नाम रूपी अमृत का पान कराता है, और शरीर की पाँच अग्नियाँ शान्त हो जाती है।" गुरु लोग जीवो की पृथकता पर बल नही देते। वे उनके बीच एकरूपता स्थापित करने की चेष्टा करते है --

"जिउ जल महि जलु आइ समाना । तिउ जोती सग जोति समाना ॥
मिटि गए गवन पाए बिस्राम । नानक प्रभ कै सद कुरबान ॥८॥११॥"
(गउड़ी सुखमनी, महला ५)

"जिस भाँति जल में आ कर जल उसी का रूप हो जाता है, उसी भाँति जीव की ज्योति परमात्मा की ज्योति से मिल कर एक हो जाती है। इस प्रकार जीव का आवागमन मिट जाता है। उसे परम विश्राम की प्राप्ति होती है। नानक कहते हैं कि मैं तो प्रभु की महती अनुकम्पा पर न्यौछावर हूँ।"

यही सयोगावस्था है। इसी सयोगावस्था में दु खो की निवृत्ति होती है और परम पद की प्राप्ति होती है ।

सद्गुरु

मनुष्य को इस भवसागर से पार करने के लिए गुरु की परमावश्यकता होती है। सिक्ख-गुरुओ के उपदेशानुसार परमात्मा कभी जन्म नही लेता है। किन्तु समय-समय पर गुरु अवतरित होते हे, और लोगो को पथ दिखाते हैं। सद्गुरु कौन है ? जिसने सत्य वस्तु को जाना है, वही सद्गुरु है। उसकी सगति से शिष्य की रक्षा होती है और शिष्य के अनर्गत देवी गुणो की उत्पत्ति होती है —

"वाहु वाहु सति गुरु पुरखु है जिनि सति जाना सोइ ।
जितु मिलिअै तिख उतरै तनु मनु सीतलु होइ ॥
वाहु वाहु सति गुरु सति पुरखु है जिसनो समंतु सभु कोइ ।
वाहु वाहु सति गुरु निरवैर है जिसु निन्दा उसतति तुलि होइ ॥
वाहु वाहु सतिगुरु सुजाणु है जिसु अन्तर ब्रह्म वीचारु ।
वाहु वाहु सतिगुरु निरकारु है जिसु अतु न पारावारु ॥
वाहु वाहु सतिगुरु है जि सचु द्रिड़ाए सोइ ।
नाना सतिगुरु वाहु वाहु जिसते नामु परापति होइ ॥२॥"

(सलोक महला ४, सलोक वारां तो वधीक)

"सद्गुरु पुरुष धन्य है, धन्य है, जिसने सत्य परमात्मा का साक्षात्कार किया, जिसके मिलने से तृष्णा की निवृत्ति होती है, और शरीर तथा मन दोनो ही शीतल होते है। सद्गुरु पुरुष धन्य है, धन्य है, जिसकी सब पर सम दृष्टि है। निर्वैर सद्गुरु धन्य है, धन्य है, जिसे निन्दा और स्तुति समान है। वह सुजान सद्गुरु धन्य धन्य है, जिसके अतर निरतर ब्रह्म का विचार उठता रहता है। वह सद्गुरु धन्य धन्य है, जो निर्गुण परमात्मा के साथ एक है, और जिसके पारावार का अत नही है। वह सदगुरु धन्य धन्य है, जो मनुष्यो से सदाचरण करवाता है। नानक कहते है कि सद्गुरु धन्य धन्य है, जिससे राम की प्राप्ति होती है।"

"तिसु मिलीऐ सतिगुर सजणै जिसु अतर हरि गुणकारी ।
तिसु मिलीऐ सतिगुर प्रीतमै जिन हउमै बीचहु मारी ॥
सो सतिगुरु पूरा धंनु धनु है ।
जिनि उपदेसु दे सब सृसटि सवारी ॥२॥"

(वार वडहंस महला ४)

"उस सज्जन सद्गुरु से मिलो जिसके अतर मे परमात्मा के अनन्त गुणो का निवास है। उस प्रियतम सद्गुरु से मिलो जिसने अपने समस्त अहभाव का नाश कर दिया है। वह सद्गुरु पूर्ण है और धन्य है जिसने अपने उपदेश से सारे ससार को सँवारा है।"

इस प्रकार वही आत्मा जिसने परमात्मा का साक्षात्कार करके पूर्णता की प्राप्ति की है और उपर्युक्त गुणो से युक्त है, सद्गुरु है।

दृढ विश्वास

शिष्य को गुरु मे महान श्रद्धा और विश्वास रखना चाहिए। सिक्ख-गुरुओ की शिक्षा के अनुसार धार्मिक जीवन एक प्रकार का अनुभव है, जो शिष्य को गुरु की महती अनुकम्पा से प्राप्त होता है। शिष्य का परम कर्तव्य है कि वह अनन्य भाव से अपने को गुरु के चरणो मे सौप दे। शिष्य को अपनी इच्छा को गुरु की इच्छा मे मिला देना चाहिए। शिष्य की कोई स्वतत्र इच्छा ही नही होनी चाहिए। इस भाँति वह अपने महान अहकार से निवृत्ति पाता है और कर्म की बेडियो को तोड कर मुक्त हो जाता है—

"किउ करि इहु मनु मारीऐ किउ करि मिरतकु होइ।
कहिआ सबदु न मानई हउमै छडै न कोइ॥
गुर प्रसादी हउमै छूटै जीवन मुकति सो होइ।
नानक जिसनो बखसे तिसु मिलै तिसु बिघनु न लागै कोइ॥२॥४॥"

(सलोक महला ३, वार रामकली महला ३)

"यह मन किस प्रकार मारा जाय और यह किस भाँति मृतक बनाया जाय ? कोई भी मनुष्य कहे हुए शब्द को नही मानता (उस पर आचरण नही करता) और कोई भी अहभाव को नही छोडता। (इसी कारण मन मृतक नही होता।) गुरु की कृपा से जिसका अहभाव छूटता है, वही जीवन-मुक्त होता है। नानक कहते है, जिस पर गुरु की कृपा होती है, उसी को प्रभु मिलता है और उसको कोई विघ्न नही लगता है।"

सत्संगति और साधु संग

गुरमत के अनुसार सत्सग श्रेष्ठ ही नही, प्रत्युत आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक अग है। गुरु प्राप्ति के लिए भी सत्सग आवश्यक अग है, क्योकि बिना विवेक बुद्धि के सद्गुरु और असत् गुरु के पहचानने मे महान कठिनाई पडती है। विवेक-बुद्धि हमे सत्सग द्वारा प्राप्त हो सकती है। इसीलिए सत्सग नित्य के कर्मो मे रखा गया है। नित्य की "अरदास" (प्रार्थना) मे प्रत्येक सिक्ख परमात्मा से यह माँगता है—

"साध दा संग गुरमुख दा मेल।"

"हे परमात्मा, मुझे साधु की सगति दो और गुरमुख पुरुषो से मेल कराओ।"

"उतम संगति उतम होवै । गुण का धावै अवगुण धोवै ।।"

(आसा महला १ अष्टपदीआँ)

"उत्तम सगति से उत्तम ही हो जाता है, गुण की ओर आकृष्ट होता और अवगुणो को धो डालता है।"

सत्सग से ही साधक माया के प्रभाव से मुक्त होता है —

"ऐ साजन कछ कहउ उपाइआ । जाते तरउ बिखम इह माइआ ।।

करि किरपा सतसंगि मिलाए । नानक ताकै निकटि न आए ।।"

(गउड़ी बावन अक्खरी, म० ५)

"हे साजन, कुछ ऐसा उपाय बताओ जिससे इस विषम माया को पार किया जाय । नानक कहते हैं कि परमात्मा यदि कृपा करके सत्सग की उपलब्धि करा दे, तो उस व्यक्ति के निकट माया नही फटक सकती ।"

"सत्सगति क्या है ?"—अब यह प्रश्न उठता है। सक्षेप मे सद्गुरु के शब्दो का ही जहाँ विचार किया जाता है, वही सत्सगति है —

"सत संगति कैसी जाणीऐ । जिथै एकै नाम बखाणीऐ ।।५।।१।।"

(सिरी राग महला १)

"वही सत् सगति है जहाँ एक परमात्मा के नाम की ही चर्चा होती है।"

इसी प्रकार साधु-सग की महिमा भी अत्यन्त पुनीत है —

"साध कै संगि मुखु ऊजल होत । साध सगि मलु सगली खोत ।।

साध कै संगि मिटै अभिमानु । साधु कै सगि प्रगटै सुगिआनु ।।

साधु कै संगि बूझै प्रभु नेरा । साधु संगि सभु होत निबेरा ।।

साधु कै संगि पाए नाम रतन । साधु कै संगि एक ऊपरि जतनु ।।

साध की महिमा बरनै कौन परानी । नानक साधु की सोभा प्रभ माहि समानी ।।१।।७।।

(गउडी सुखमनी महला ५)

"साधु के सग से मुख सतोगुण के कारण उज्ज्वल हो जाता है। साधु-सग से सारे मल नष्ट हो जाते हैं। साधु-सग से अभिमान मिट जाते हैं, और निर्मल ज्ञान प्रकट होता है। साधु-संगति से परमात्मा निकट ही प्रतीत होने लगता है, और साधु-सग से सारी बाधाएँ शान्त हो जाती है। साधु-सग से ही नाम रूपी रत्न की प्राप्ति होती है, तथा साधु-सग सब प्रयत्नो का शिरोमणि है। इस प्रकार कौन ऐसा प्राणी है जो साधु महिमा का वर्णन कर सके ? नानक कहते हैं कि साधु की महिमा प्रभु मे ही समा जाती है ।"

नाम

प्रत्येक पदार्थ के सकेत के लिए कोई न कोई नाम होता है। नाम और पदार्थ में कोई

अतर नही होता। उसी प्रकार परमात्मा के बोधक असख्य नाम है। नाम और नामी में कोई भी अन्तर नही होता। गुरुओ ने अपनी वाणी में निरकार परमात्मा के सकेत के लिए, बहुत से नामों का प्रयोग किया है। इन नामो मे बहुतो का प्रयोग पहले से ही होता था। नाम परमात्मा का साक्षात स्वरूप ही है। नाम मे परमात्मा की ही शक्ति है——

"नाम के धारे सगले जन्त। नाम के धारे खड ब्रहमंड ॥
नाम के धारे सिम्रित बेद पुरान। नाम के धारे सुनन गिआन धिआन ॥
नाम के धारे आगास पाताल। नाम के धारे सकल आकार ॥५॥१६॥"
(गउड़ी सुखमनी, महला ५)

"नाम ने ही सारे प्राणियो को धारण किया है। नाम ने ही खण्ड और ब्रह्माण्ड धारण किये हैं। स्मृतियाँ, वेद, पुराणादि नाम ने ही धारण किये है। श्रवण, ज्ञान और ध्यान नाम के आधार पर अवलबित है। आकाश, पाताल तथा सभी आकारो का धारण करने वाला नाम ही है।"

इस प्रकार नाम की महत्ता वही है, जो परमात्मा की है। ऐसे दुर्लभ मानवीय शरीर को पा कर जिसने नाम का स्मरण और जप नही किया, उसका जीवन निरर्थक है——

"दुलभ देह पाई वड भागी। नामु न जपहि ते आतमघाती ॥
मरि न जाही जिन बिसरत राम।
नाम बिहून जीवन कउन काम॥१॥" रहाउ

"मनुष्य की देह पाना अत्यत कठिन है, और बडे भाग्य का कारण है। ऐसे बडभागी मनुष्य शरीर को पा कर, जो नाम नही जपते, वे आत्म हत्यारे है। ऐसे लोग, जो राम का नाम भूल जाते है, मर क्यो नही जाते ? नाम के बिना जीवन भला किस काम का है ?"

किन्तु इस नाम की प्राप्ति गुरु के उपदेश तथा उनके उपदेश के अनुसार आचरण करने से ही होती है——

"नामु अमोलकु रतनु है पूरे सति गुरु पासि।
सति गुरु सेवै लगिआ कढि रतन देवै परगास।
धंन वडभागीआ जो आइ मिले गुरु पासि॥२॥२॥६६॥"
(श्री राग, महला १)

"नाम रूपी अमूल्य रत्न पूर्ण सद्गुरु के पास ही है। जो गुरु पुरुष सद्गुरु की लगन से करता है, उसी को सद्गुरु उस रत्न को प्रदान करते है। वे अत्यन्य भाग्यवान हैं, जो सद्गुरु के पास आते है।"

[क्रमश]

हिन्दी साहित्य द्वारा सामाजिक सदाचार के प्रचार की संभावना

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रत्येक जाति अपने धर्म और अपनी संस्कृति को विशाल और चिरस्थायी बनाना चाहती है। उस जाति के प्रत्येक व्यक्ति मे यही भावना प्रबल रहती है कि वह अपनी विचारधारा को मनुष्य जीवन से सवलित कर दे और इसके लिए समय-समय पर उस जाति या सम्प्रदाय या राष्ट्रमे विभिन्न क्षेत्रोंकी योग्यतासे सपरिनिष्ठ आदर्शवादी व्यक्ति आविर्भूत हुआ करते हैं, जो तत्कालीन मनुष्य-जीवनके आवाह-प्रवाहके प्रगतिशील रुखको देख अपना कार्य प्रारम्भ करते है। जर्मनी मे बिस्मार्क ने यही किया। इसी प्रकार अमेरिका का भी उदाहरण हमारे सामने है, जिसने अपनी सभ्यताके सर्वविश्रुत अग को विश्वव्यापी बनाने के लिए आर्थिक आधार पर विज्ञान को प्रतिष्ठित करते हुए अन्य जातियो से होड लगाई है। अत अमेरिका के विचारको का रुख सर्वथा तत्तद्रूपगुणानुकूल हो गया है, तभी तो उनकी विचारधारा सर्वत्र व्यापार और आर्थिक विकास के गीत गाती है!

यही अवस्था प्रत्येक जाति की है और प्रत्येक राष्ट्र किसी-न-किसी ऐसे विचारो के कारण अपना सिर समय-समय पर जगत्मे उठाता आया है। किसी ने विज्ञान की उन्नति की तो किसीने भौगोलिक स्थिति का नेतृत्व किया तो किसी ने जनसाम्य की लहर चलाई और काल क्रमसे प्रत्येक जाति के प्रत्येक व्यक्ति ने तत्तद्गुणो के रूप के अनुकूल अपना जीवन बना लिया और अपनी सस्कृति बना ली तथा समयके व्यतीत होते ही वही प्रगति तथाकथित राष्ट्रके जीवनकी सास्कृतिक उत्तराधिकारिता हो गई, जिस पर उसके व्यक्ति गर्व करने लगे।

परन्तु यह कैसे हो पाया और कौन सा ऐसा माध्यम था, जिसके द्वारा मनुष्य ने अपनी सास्कृतिक परम्परा के गीत गाये और अपने नागरिको को समय-समय पर सचेत किया और उन को यह बतलाया कि उन का जीवनमे क्या कर्तव्य है? यह प्रश्न अत्यन्त दुरूह नही, क्योकि यह सर्वसिद्ध है कि किसी भी जाति की भाषा और उस भाषा का साहित्य उस जाति की सजीवता को सदा के लिए बनाये रखता है और उस जाति की पीढियो के अस्त होते रहने पर भी परम्परा को यथा पूर्व ही रखता है। हो सकता है कि प्रत्येक जाति का लक्ष्य भिन्न-भिन्न हो—कोई पदार्थवादी हो सकता है तो कोई ईश्वरवादी हो सकता है और कोई समाजवादी भी हो सकता

है—परन्तु विभेद होने पर भी विचार को विस्तृत और विपुलीकृत करनेका माध्यम उस जाति की भाषा और उस भाषाके साहित्य पर ही निर्भर है। यदि आप किसी जाति का समुचित लोप किया चाहते हों, तो आप उस जाति के साहित्यका सर्वथा लोप कर दीजिये। बस, आप अल्प कालमें ही उस जाति को निर्जीव होता पायेंगे—यह अनुभूत सत्य है। अग्रेजो ने भी यही किया। यद्यपि उनका उद्देश्य, जैसा आज का विचारक कह सकता है, ऐसा नही था कि वे भारतीय सस्कृति का लोप किया चाहते थे परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि उनके साहित्य के हमारे देश मे आ जाने से हमारे देशकी मौलिक सभ्यता का स्वरूप विकृत होता गया और ज्यो-ज्यो कालान्तर मे उन की भाषा और उन की सस्कृति जड पकडती गई, त्यो-त्यो हमारे विचार भी उनकी भाषा के अनुकूल ही होने लगे।

कहने का तात्पर्य यही है कि अग्रेजी भाषा के आने पर यद्यपि हमारी सामान्य चेतना का अभ्युदय हुआ और हम भी आर्थिक स्तरस्थ जातियो से लोहा लेने की सोचने लगे तथा उनके जीवन के रहन-सहन और आचार-विचारो को अपने जीवन मे अपनाने लगे, तथापि हमारा निरन्तर सास्कृतिक पतन होता गया और यह पतन तब तक हुआ, जब तक हमारे देश मे यह लहर नही आई कि हम हिन्दू है और हमारी भाषा हिन्दी है और हमारा साहित्य सर्वथा हिन्दी साहित्य है। जब तक हमारे विचार इतर भाषाओ मे व्यक्त किये गये, तब तक हमारे भारतीय विचारो की मौलिकता का अभ्युदय ही नही हुआ। जब शरीर विज्ञान भी इतर विचारधारा से समनुयुक्त था तो अन्यान्य सभी लौकिक विज्ञानो की विचारवादिता तत्कथित भाषाओ से सप्रजाता थी ही। कहाँ तक कहे, हमारे विचार हमारी भावनाओ के परतन्त्र होने के कारण इतने सकुचित हो गये कि हम न तो अपने विचार विदेशी भाषा मे व्यक्त करने की क्षमता रख पाये और न अपने स्वतत्र साहित्य का निर्माण ही कर पाये।

परन्तु चिर-चिर जीवित भारत के लिए यह शाश्वत पीडा नही थी। अत एक नवीन और वेगवती लहर आई और हमने विचार किया कि हमारा साहित्य स्वतत्र होना चाहिए, जिसमे कट्टरवादिता भी न हो, रूढिवादिता भी न हो, कूपमण्डूक परम्परा भी न हो, परन्तु उसमे उन्मुक्त विचारो की लीला हो, जिससे उस साहित्य को जनव्यापी बनाया जा सके और उसके विचारो को स्वतत्र बनाया जा सके।

स्वप्न चल रहा है। कह नही सकते कि कब हमारे विचार हिन्दीमय होगे और कब हम साहित्य के सच्चे वरदान को प्राप्त कर सकेगे। अभी तक जो कुछ हो चुका है, वह असन्तोषजनक नही तो पर्याप्त भी नही है, क्योकि हमारे देश के विशाल जीवन को धर्म और व्यवहार के सूत्र मे पिरोने के लिए, आर्थिक और राजनीतिक अग को बलिष्ठ करने के लिए यथा योग्य प्रयत्न नही हो रहा है। **जब तक सामाजिक आचार के प्रचार की सम्भावना को हिन्दी के माध्यम से भारत व्यापी नहीं बनाया जायगा, तब तक हम अपने स्वराज्य के सच्चे**

अर्थ को स्पष्ट नहीं कर सकेंगे। राष्ट्र की राजनीति और समाज की आर्थिक व्यवस्था और राजतान्त्रिक शासन पर उस देश के व्यक्तियो के आचार-विचार का प्रबल प्रभाव पड़ता है और वह जातिही जीवित नही, जिसकी सामाजिक दुर्व्यवस्था अपनी सीमा का अतिक्रमण कर चुकी हो।

इसीलिए जब हम अपनी भाषा के भविष्यात्मक उत्तरदायित्व की विवेचना करते हैं, तब हमारा सकेत सर्वथा हिन्दी के माध्यम से सामाजिक जागरण की ओर जाता है। हम यह भी नही चाहते कि हिन्दी मे सामाजिक अभ्युदय के दृष्टिकोण को प्रमुख बना कर अन्य राष्ट्रोचित नीतियो की अवहेलना की जाय। हमारा ध्येय तो यह होना चाहिये कि हम सामाजिक जागरण की आधार शिला पर अपनी वर्तमान सभ्यता की प्राणप्रतिष्ठा करे, जिसमे अर्वाचीन और प्राचीन, धर्म और व्यवहार, पदार्थविज्ञान और आध्यात्मिक सस्कृति, मनुष्य और मनुष्य का मधुर समन्वय हो, जिससे हमारी सस्कृति तो सजीव रहेगी ही, अपि च हमारे देश की नैतिक चेतना का मानवोचित उदय भी होगा। जहा तक आज के विज्ञान से हमारा सम्बन्ध है, हम अपना कर्तव्य पूरा करें और सकुचित विचारो को त्याग कर क्या विज्ञान, क्या भूगोल, क्या इतिहास और क्या चिकित्साशास्त्र सबकी यथा योग्य सेवा करे——साथ-साथ हिन्दी के कर्तव्य को न भुलावे कि इसे भारतकी धार्मिक और सामूहिक सस्कृतिका उद्धार करना है, जो कई शताब्दियो से निश्चेतन पडी हुई है।

आप पूछेगे कि सामाजिक जागरण की आवश्यकता आर्थिक और वैज्ञानिक विकास की अपेक्षा क्योंकर श्रेष्ठ मानी गई है, क्या मनुष्य आर्थिक और राजनीतिक विकास की प्राप्ति कर आप्तकाम नही हो जाता ? यह भी ठीक है, परन्तु इतना अवश्य विचार करना चाहिये कि किसी भी देश के लिए यह आवश्यक है कि उसके व्यक्ति अपने आचार-विचार मे परिपक्व हो और परिशुद्ध हो। यदि ऐसा नही हुआ तो उस देशकी आर्थिक व्यवस्थाके अच्छे होने पर भी, उद्योग-धन्धो के उन्नत होने पर भी उसकी सभ्यता विनाश के पथ पर ही जाती रहेगी और वह कभी भी अक्षुण्ण नही रह सकती।

अत हमे आज अपनी भाषा के द्वारा जो कार्य प्रारम्भ करना है, वह है हमारे देश की त्रुटियो का उद्घाटन और उनका निराकरण। हमारे समाजमे जो सामान्य और असाधारण कुरीतियाँ फैलती जा रही है, जो कूपमण्डूकपरायणता विस्तृत होती जा रही है, जो अन्धविश्वास परायणता व्याप्त होती जा रही है और जो नास्तिकवाद गहनतर होता जा रहा है, उस का निवारण करना होगा और साथ-साथ हमारे शास्त्रो ने मनुष्य के जो-जो कर्तव्य निर्धारित कर दिये है और मनुष्य-मनुष्य का जो सम्बन्ध निर्धारित कर दिया है, वह भी आज जनता के आगे समुपस्थित किया जाना चाहिये, अन्यथा हमारे देश की अवस्था दिन प्रतिदिन गिरती जा रही है। पाश्चात्य सभ्यता को ग्रहण किये लगभग एक शताब्दि बीता चाहती है, परन्तु हमने कुछ भी अपने पल्ले लगता हुआ नही देखा, उल्टे हमारा दिन-पर-दिन पतन होता

जा रहा है, अत हमें अपने साहित्य के द्वारा इन विचारों को व्यक्त करना चाहिए और जनता को सचेत करना चाहिए कि आज उसे पश्चिमी सभ्यता के अमानुषिक जडवादी प्रभाव से मुक्तहोना है, नही तो विनाश सन्निकट है।

यह तो रही बाहर की बाते, जिन पर हमारे राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है और हमारी भाषा जिनका माध्यम बनेगी। इनके अतिरिक्त दूसरी बात है हमारी सामाजिक व्यवस्था। आज हम देख रहे है कि परिवार-परिवारमे निरन्तर कलह और क्रान्ति मची हुई है, पुत्र और पिता तथा भाई-भाई के कर्तव्यो का विस्मरण किया जा रहा है। जो जितने निकट आत्मीयत्व का अधिकारी है, वह उतनी ही दूर तक भेदभावकी खाई भी खोद रहा है, जिसका परिणाम है सामाजिक विकल्प और नैतिक पतन। अत आवश्यक है कि आजका साहित्यकार परिवार-परिवार मे जावे और उसके चित्रो का दिग्दर्शन करावे, जिससे हमारी आने वाली पीढियाँ इन कार्यों के भयकर कुपरिणामो से सुविज्ञ रहे तथा पुत्र होने के नाते, पति होने के नाते, भाई होने के नाते, मित्र होने के नाते, सम्बन्धी होने के नाते, प्रवासी होने के नाते अपने कर्तव्यो का पालन करे। आज हमारे समाजको इसकी महान् आवश्यकता है, आदर्श विचारो से समनुयुक्त काव्यो से इस आचार का प्रचार करे, आदर्श भाषा द्वारा जनता के विचारो को तत्तद्भावनामय कर दे।

कहा जाता है कि राज्य मे क्रान्तियाँ हो जाती है, रक्त बहने लगता है, राजकुटुम्ब अस्त हो जाते है केवल एक सफल साहित्यकार के विचारो की शक्तिमत्ता के फलस्वरूप। इसी प्रकार हमारा राष्ट्र उन्नत हो सकता है, सुखी हो सकता है, समृद्ध हो सकता है, विश्व का नेतृत्व कर सकता है, अपने साहित्यकी मनोहरता, आदर्शवादिता और क्रियावादिता द्वारा जिसका प्रभाव मनुष्य पर इस प्रचण्ड गति से पडता है कि वह अपने आपको भूल जाता है और जो कुछ उसकी भावना कहती है, वही करने लगता है। एतदर्थ साहित्य की अवहेलना तो कभी करनी ही नही चाहिए और न उस साहित्य के रूपावर्तन की बात ही सोचनी चाहिए क्योकि भाषा मे साकर्य आने से उस भाषा के उपयोगियो के विचारो मे भी साकर्य आ ही जाता है। यदि साहित्य स्वतत्र हुआ तो हमारी भावनाए भी स्वतत्रता से अपना निर्माण कर पायेगी और हम पराई सभ्यता के वानरीकरण के दोष से मुक्त हो सकेगे।

यह है हमारे हिन्दी साहित्य का प्रथम पक्ष, जिस पर मनुष्य के आध्यात्मिक अग के निर्माण का उत्तरदायित्व है और सम्भवत यदि हमारा प्रयत्न निरन्तर और परिशुद्ध रहा तो हम यह आशा भी कर सकते है कि समस्त भारत की सस्कृति को सामूहिक रीत्या सक्रिय किया जा सकेगा। हमारे हिन्दी साहित्य का दूसरा पक्ष है लोकव्यवहार की समुचित प्रतीति और दैनिक आचार-विचारका समुचित और यथायोग्य ज्ञान। ऐसे ग्रथो का प्रणयन करना होगा, जो हमे यह निश्चित रूपसे बतलाए कि हमारा व्यवहार कैसा हो और कौन से व्यव

हार का हमे त्याग करना होगा और किसलिए ? वे ग्रथ सर्वथा मौलिक न भी हो तो कोई हानि नही, परन्तु उनका व्यावहारिक होना अनिवार्य है। हमारे शास्त्रो मे तो लोकव्यवहार की भरमार है, परन्तु आज हमारा दुर्भाग्य है कि हम उनसे यथेष्ट लाभ नही उठा सकते, क्योंकि समय-समय पर शास्त्रो पर अपना आधिपत्य स्थिर करने वाले धर्माचार्यों ने उनके रूप को इतना विकृत कर दिया है, इतना सशयात्मक कर दिया है, इतना अतिशय कर दिया है और इतना कट्टर कर दिया है कि आजके युग मे, जब कि समय सकुचित होता जा रहा है और विश्व भी छोटा होता जा रहा है, हमारे देशवासियो के लिए यह सम्भव नही कि वे उन पर प्रयोग करें और जिन्होने प्रयोग भी किया, वे अपने जीवन की ही बाजी लगा कर कृतकर्म हुये। इस पर भी आज के लोगो मे विवेक बुद्धि का प्राचुर्य नही कि वे शास्त्र मनन कर हस क्षीर न्यायेन सत् और असत् का विवेचन कर पावे। अत आवश्यकता है कि आज ऐसी पुस्तके होनी चाहिए जो समयानुकूल हो, जो उपासना, कर्म और बौद्धिकता और अध्यात्म तथा लोकवाद के समन्वयात्मक पक्ष को ग्रहण कर जनता को जीवन के सत्य की ओर जागृत करे।

इसका यह अर्थ नही कि लोक व्यवहार को सकुचित दृष्टि से परखा जावे, अपितु लेखको का दृष्टिकोण विशाल होना चाहिए, विश्वात्मक होना चाहिए, सार्वभौमिक होना चाहिए। जीवनयापन की कौशलता, सास्कृतिक विकास की चतुराई, विश्व मे रहे और सत्य आचरण का पालन करे, प्रवासी के प्रति उचित व्यवहार करे---ऐसे सिद्धान्तो पर रोचक आख्यानो का प्रणयन कर साहित्य के उत्तरदायित्व के इस पक्ष की पूर्ति करनी होगी।

दूसरे हमे एक बात पहिले से अखरती आई है, वह है स्थितप्रज्ञ साहित्यकारो को ही मान्यता देना। हमारा तात्पर्य यह नही कि लब्धप्रतिष्ठ साहित्य सेवियो के मूल्य का अवमूल्यन किया जावे, परन्तु हमारा विचार है कि आज कई ऐसे साहित्यकार भी रहस्य की कन्दरा मे छिपे है, जो कारणवश अथवा विपरीत परिस्थितियो से क्षेत्र मे आ कर अपनी कुशलता का प्रदर्शन करने में असमर्थ है और जिनकी प्रतिभा समयानुकूल है, प्रगतिमय है और आदर्शवादी है। चल चित्रो के अभिनेताओ के समान हमारे साहित्य क्षेत्र मे भी यही रोग व्याप्त है। हमारा ध्येय होना चाहिए कि नित्य नवीन साहित्यकारो को मुख्य भूमि पर ला कर अपने साहित्य के भण्डार को भरते रहे उन नवीन कलाकारो की नवीन भावनाओ से, न कि पुराने विचारो को ही तोड़-मरोड़ कर सीमित परिधि मे भूमिस्थ रखे। कलाकारो की परीक्षा और उनकी योग्यता का समुचित उपयोग करना आवश्यक होगा। कौन जानता है कि कल उन्ही मे से कोई तुलसी-दास, सूरदास या कबीरदास हो सकेगा, जो अपने विचारो की अभिव्यक्ति के बल जन-जनकी भावनाओ मे नवीन क्रान्ति ला पावेगा, जिस से साहित्य का कलेवर पुनर्नव होगा। समय-समय पर कवि-सम्मेलनो द्वारा अपनी इष्टपूर्ति का आयोजन करना होगा और नित्य नूतन रत्नो को खोजना होगा, गुदडी मे से भी लाल निकालने होगे।

वैसे तो हमारी पत्रकला यथा साध्य परिश्रम कर रही है, तो भी हम यह नही कह सकते कि साहित्य कला क चरम विकास की दृष्टि से उन्होने प्रशसात्मक कार्य किया है। वैसे तो हिन्दी के पत्रों और पत्रिकाओ की सख्या है ही कितनी और जो कुछ अभी सत्ता प्राप्त है, वे प्राय निम्न स्तर पर ही हैं। न तो उन्होंने भाषा की दृष्टि से अपने कलेवर को स्वच्छ किया है और न किसी जनप्रिय, हितकर तथा लोकोपकारी विषय-प्रसग पर ही प्रकाश डाला है। वही पुराना राग अलापने से जनता भी ऊब जाती है। हमारे पत्रो की रूपरेखा अत्यन्त परिष्कृत होनी चाहिए और उसका स्तर इतना महान् होना चाहिए कि उसके अध्ययन करने वाले अपने जीवन पर भी उसके सत्प्रभाव को स्पर्श होता हुआ पावे। उनमे सामान्य प्रसग भी होवे, परन्तु मनुष्य जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कई ऐसी बाते भी होनी चाहिए, जिनसे शिक्षित समाज उनका आदर करे और उनकी उपयोगिता अपने परिवार के लिए अनुभूत करे। समाज मे से जिन-जिन विनाशकारी प्रथाओ का निर्मूलन करना है, उन पर साहसपूर्वक पर्याप्त प्रकाश डाला जाय और पाठको के लिए सदा यह विचार प्रधान रखा जाय कि उनका दूसरे मनुष्य के प्रति भी कुछ कर्तव्य है, उनका अपने समाज के प्रति भी कुछ कर्तव्य है, उनका अपने राष्ट्र के प्रति भी कुछ कर्तव्य है और उनका विश्व के प्रति भी कुछ कर्तव्य है। जिस प्रकार प्राचीन काल मे विद्यार्थी से कहा जाता था कि यह विशाल विश्व तुम्हारा परिवार ही है, माता, पिता, गुरु, देवता और अतिथि की पूजा करो अथवा उनका आदर करो, उसी प्रकार आज सामाजिक सदाचार को व्यक्ति से ले कर राष्ट्र तक जनश्रुत करते हुए हमारा कर्तव्य है कि हम साहित्य के माध्यम से सर्व प्रथम मनुष्य को मनुष्यत्व का ज्ञान कराये, व्यक्ति को व्यक्तित्व की मीमासा बतावे और स्त्री को स्त्रीत्व का पाठ पढावे, साथ-साथ उनको अपनी सकुचित विचारवादिता मे ही सीमित न रखे, अपितु उनको विशाल विश्व जीवन के सुन्दर दृश्य भी दिखलावे, जिससे वे "वसुधैव कुटुम्बकम्" ही नही, विश्व को सुन्दर और मगलमय आत्मा का विकास भी जान पावे—**आत्मा वै इद सर्वम्।**

यदि यह सम्भव हुआ और हिन्दी के द्वारा सामाजिक सदाचार के लोक-व्यवहार की सम्भावना की सम्पूर्ति हो गई तो हम समझते है कि हिन्दी साहित्य का रूप तो निखरेगा ही, उसकी कीर्ति जनव्यापी तो होगी ही, उसका डका भी दिग्यशस्वी तो होगा ही, साथ-साथ यह भी होगा कि हिन्दी केवल राष्ट्रभाषा रहने के स्थान पर, केवल राष्ट्र साहित्य की परिधि मे अवलम्बित रहने के स्थान पर राष्ट्र सस्कृति भी बन जायगी, राष्ट्रभारती भी बन जायगी, जो कालान्तर में अपने विशाल यशोमय अक मे जीवनोपयोगी समुचित विज्ञानो को आश्रय द सकगी, समुचित कलाओ को हरी-भरी, पनपती हुई, फलती-फूलती और लहलहाती हुई देख सकेगी, क्योकि उसकी भाषा के विज्ञान पर अभिव्यक्त किये हुए मानवोचित उज्ज्वल सिद्धान्त हमारी जनता के सिद्ध कर्म हो जावेगे, उसके प्रचारित किये हुए विचार केवल मात्र पुस्तको मे ही नही रहेंगे

और न केवल प्रात काल सूर्य उदय होने पर ही अधीत होंगे, अपि च वे हमारे समाज के आचार-विचार, रहन-सहन खान-पान के नैतिक अंगो मे अपने को व्याप्त करते हुए चिरस्थायी भी रह सकेंगे और पुन एक बार हमारी संस्कृति का रूप पुनरभ्युदय को प्राप्त होने लगेगा।

हमने केवल मात्र सामान्य कथा, कहानी पद्यादि के द्वारा ही सन्तोष का अनुभव कर लिया तो समझ लीजिये कि न तो हमारा साहित्य पनप सकेगा और न हमारा समाज ही। यदि साहित्य मे प्रगतिवाद को ही स्थान दे, तो हम पथ भूल जायेंगे और यदि उसको आदर्शवाद से भी समन्वित करे तो हम भाषा और भाषी दोनो का भला कर सकेंगे।

दीवान दौलत खाँ रचित हिन्दी वैद्यक ग्रन्थ

श्री अगरचंद नाहटा

भारत की आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति बहुत वैज्ञानिक एव देश के लिए परम हितकर है। भारतीय मनीषियो की यह एक महती देन है। यही की उत्पन्न जडी बूटियो व वनौषधियो के गुण-दोष एव रोगो के निदान एव परिहार के उपाय शोध कर उन्होने मानव जगत ही नही पशु जगत की भी महान सेवा की है। हाथी एव घोडे मध्यकालीन युद्धो के प्रधान सहायक पशु थे, अत उनका सरक्षण बडे यत्न से किया जाता था, उनके रोगो के निवारणार्थ गज एव अश्व चिकित्सा के शालिहोत्र-ग्रन्थ[1] काफी प्राचीन एव एक स्वतन्त्र शास्त्र के रूप मे उपलब्ध है। वैसे आयुर्वेदिक मानव चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थ तो सैकडो की सख्या में उपलब्ध है जिनका थोडा सा परिचय कविराज महेन्द्रनाथ शास्त्री लिखित और हिन्दी ज्ञान मन्दिर, बम्बई से गत वर्ष प्रकाशित "आयुर्वेद का सक्षिप्त इतिहास" से मिल जाता है। किन्तु मालूम पडता है कि इस ग्रन्थ के लेखक महोदय जैनागम एव आयुर्वेद सम्बन्धी जैन ग्रन्थ[2] व हिन्दी भाषा के प्राचीन ग्रन्थो से विशेष परिचित नही है। प्रस्तुत लेख में हाल ही में ज्ञात एक ऐसे ही हिन्दी वैद्यक ग्रन्थ का परिचय दिया जा रहा है।

वैद्यक विद्या स्वार्थ एव परमार्थ उभय साधिका है—परोपकार के निमित्त व्यवहृत होने से सदगति एव अर्थ उपार्जनार्थ व्यवहृत होने से समृद्धि देने वाली है। हिन्दी भाषा में रचित वैद्यक ग्रन्थो का प्रारभ[3] सत्रहवीं शती मे जैन कवि नैनसुख के 'वैद्य महोत्सव' ग्रन्थ से होता है। प्रस्तुत

---

१. हिन्दी भाषा में "करिकल्पलता" (केशवसिंह ताल्लुकेदार रचित) वेंकटेश्वर प्रेस, बबई से प्रकाशित है। यहीं से "शालिहोत्र व पशु चिकित्सा" नामक पद्यात्मक ग्रन्थ भी प्रकाशित है।

२. जैनो द्वारा रचित हिन्दी पद्य में वैद्यक ग्रन्थ, हिन्दुस्तानी, वर्ष ११, अंक २

३. डाक्टर रामकुमार वर्मा के इतिहास में रामचन्द्र मिश्र रचित 'रामविनोद' के सं०१५०६ में रचे जाने का उल्लेख है, पर यह भ्रान्त है। रचना-संवत् १५०६ आपने किस आधार से लिखा है यह अज्ञात है। मिश्र बन्धु विनोदादि में सं० १६२० बतलाया गया है, पर यह भी गलत है। वास्तव में रामविनोद के रचयिता रामचन्द्र जैन यति थे व रचनाकाल सं० १७२० है। ग्रन्थ लखनऊ से प्रकाशित भी हो चुका है।

ग्रन्थ की रचना स० १६४९ मे हुई थी। यह ग्रन्थ खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। इसके परवर्ती रचित २० हिन्दी वैद्यक ग्रन्थो की सूची डाक्टर रामकुमार वर्मा के "हिदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" के पृष्ठ ३४ में पाई जाती है। हिन्दी ग्रन्थो की खोज के प्रकाशित विवरण-ग्रन्थो से इतने ही अन्य ग्रन्थो का पता चल सकता है। हिन्दी विद्यापीठ, उदयपुर से प्रकाशित "राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज, द्वितीय भाग" मे मैंने राजस्थान के कतिपय ग्रन्थ सग्रहालयो से प्राप्त २१ अज्ञात हिन्दी वैद्यक ग्रन्थो का विवरण दिया है। स्वतत्र रूप से खोज करने पर सभव है समस्त हिन्दी वैद्यक ग्रन्थो[1] की सख्या सौ से ऊपर पहुँच जाय। प्राचीन पद्यमय हिन्दी वैद्यक ग्रन्थो मे वैद्य महोत्सव रामविनोद, मेघविनोद आदि ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है, जो बहुत उपयोगी है। अवशेष ग्रन्थो मे से चुने हुए ग्रन्थ शीघ्र ही प्रकाशित होने आवश्यक है।

हिन्दू कवियो की भाँति मुसलमान कवियो ने भी हिन्दी साहित्य की बडी सेवा की है व कई सम्राटो, नवाबो व सूबेदारादि ने हिन्दी कवियो को प्रोत्साहन दे कर ग्रन्थ बनवाये व अनेक मुसलमान कवियो ने हिन्दी भाषा मे उत्तमोत्तम साहित्य का सृजन किया है। पद्यमय हिन्दी वैद्यक ग्रन्थो के निर्माण मे भी मुसलमान कवियो का हाथ रहा है जिनमे से दरवेश हकीम के "प्राणसुख" एव जान कवि रचित "वैदक मति" ग्रन्थ के विवरण इन पक्तियो के लेखक द्वारा सपादित हिन्दी ग्रन्थ विवरण, भाग २ मे प्रकाशित हो चुके है। ये दो ग्रन्थ छोटे ही है जब कि प्रस्तुत लेख मे वर्णित किया जाने वाला ग्रन्थ बहुत बडा है। कवि श्रीपति भट्ट द्वारा स० १७३० मे 'माधव निदान' के भाषा-रूप 'हिम्मत प्रकाश' ग्रन्थ मुसलिम सूबेदार हिम्मत खाँ के आश्रय में बनाया हुआ उपलब्ध हुआ है।

हिन्दी भाषा मे सब से अधिक ग्रन्थो का प्रणेता फतेहपुर के दीवान अलफखाँ का पुत्र नियामत खाँ उपनाम जान कवि था, जिसके ७५ ग्रन्थो का परिचय मैंने राजस्थान भारती, वर्ष १, अक १ में दिया है। जान कवि रचित महत्वपूर्ण ऐतिहासिक हिन्दी काव्य 'कायमरासो'[2] है जिसमे कवि के वश का विस्तृत इतिवृत्त है। उस ग्रन्थ मे अलफ खाँ की (स० १६८३ मे)

---

१. दादूपंथी अर्गव सतो ने भी जैन यतियो की भाँति इधर १००-१५० वर्षों से जनता के उपकार के लिए वैद्यक को अपनाया है व जयपुर के स्वामी लच्छीरामजी आदि कई नामी वैद्य हो गये है। आत्माराम नामक दादूपथी द्वारा रचित 'आत्म प्रकाश' नामक पद्यमय हिन्दी वैद्यक ग्रन्थ की प्रति भाव हर्षीय भण्डार, बालोतरा में मेरे अवलोकन में आयी थी। अन्य सतो के भी रचित अनेक ग्रन्थ मिलने संभव है, जिनकी खोज आवश्यक है।

२. देखें हिन्दुस्तानी, वर्ष १५ अंक २ में प्रकाशित लेखक का लेख। प्रस्तुत ग्रन्थ ऐतिहासिक टिप्पणियों के साथ नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित होगा।

मृत्यु हो जाने के बाद का वृत्तात अनुपूर्ति रूप में जोड दिया गया है, जिसमें कवि के ज्येष्ठ भ्राता दौलत खां के उत्तराधिकारी होने, उसकी वीरता व स० १७१० मे स्वर्गवास हो जाने पर सरदार खाँ के शासक बनने तक का उल्लेख है। इस लेख में इन्ही दौलत खा द्वारा रचित वैद्यक ग्रन्थ का परिचय दिया जा रहा है। अत प्रसगवश दौलत खा का परिचय देना भी आवश्यक होने से 'कायमरासो' में दिये हुए वृत्तात का सार नीचे दिया जा रहा है.—

"दीवान अलफ खाँ के पीर हो जाने के बाद उसका पुत्र दौलत खाँ उत्तराधिकारी हुआ। बादशाह जहाँगीर ने उसे मनसब दे कर कागडे का गढ सुपुर्द किया। वह भी कागडे में रह कर पहाडी सरदारो की सहायता से शासन करने लगा। जहाँगीर की मृत्यु हो जाने पर गडबडी फैल गई और अराजकता छा गई, किन्तु दीवान दौलत खा अपने स्थान पर अविचल रहा। पहाडियो ने मिल कर गढ के चारो तरफ घेरा डाल दिया तब दीवान के दल ने सब पहाडियो को मार भगाया और नगरकोट की रक्षा की।

"शाहजहाँ ने दिल्ली के तख्त पर बैठते ही दौलत खाँ का मनसब बढा कर सम्मानित किया। दीवान ने १४ वर्ष कागडे मे रह कर शासन किया, फिर काबुल और पेशावर में जा कर रहा। सीमा के सब शासक दीवान से मिल कर चलते थ। दौलत खाँ के तीन पुत्र थे—नाहर खाँ, मीर खाँ और असद खाँ।

"दौलत खाँ का पुत्र नाहर खाँ बादशाह से मिलने अकबराबाद गया। बादशाह ने प्रसन्नता मे उसे मनसब दे कर बडा प्यार किया। जब शाही दरबार में गजसिह के पुत्र राठौड अमरसिह ने सलावत खाँ को मारा तो बडा घमासान मच गया। बादशाह ने हुक्म दिया कि राठौडो को मारो, जिसमे भविष्य में दरबार में कोई बेअदबी न करे। अमरसिह के जो सेवक आगरे मे थे, वे सब-के-सब लड मरे, कोई भी न भागा। रावजी का कुटुम्ब नागौर मे था। बहुत से जोधावत पास मे थे, अत उनके त्रास के कारण नागौर लेने की किसी ने भी स्वीकृति नही दी। आखिर वीर नाहरखाँ ने नागौर के लिए बीडा उठाया। बादशाह ने नागौर का पट्टा लिख कर दौलत खाँ को काबुल से बुलाने के लिए फरमान भेजा और मनसब भी ड्योढा कर दिया।

"एक दिन बादशाह ने खाँ से पूछा—"काबुल से अपने पिता के आने पर नागौर जाओगे या पहले ही जा कर राठौडो को निकालोगे?" नाहर खाँ ने कहा—"आपका फरमान मस्तक पर है। मै अभी जा कर नागौर दखल करता हूँ।" इस पर बादशाह ने उसे नागौर दे कर बडा उमराव बनाया और सिरोपाव दे बिदा किया। नाहर खाँ के पुत्र सरदार खाँ को बादशाह ने मनसब दे कर अपने पास रखा। नाहर खाँ ने स्वदेश लौट कर बडी भारी सेना के साथ नागौर की ओर प्रयाण किया।

"नाहर खाँ के नागौर आने पर जोधो ने गढ खाली कर दिया। नाहर खाँ ने उस पर कब्जा कर लिया और अमरसिह के स्थान पर जयगढ में रहने लगा। चार मास सुखपूर्वक बीतने

पर दीवान दौलत खाँ भी काबुल से आ पहुँचा और पिता-पुत्र दोनो आनन्दपूर्वक नागौर में रहने लगे। ७-८ महीने के बाद बादशाह ने फरमान भेजा कि फरमान पाते ही तुम शीघ्रता से पेशावर जाओ, शाहजादा वहाँ से बलख लेने के लिए जावेगा, तुम भी उसके साथ जा कर फतह करो। शाही फरमान पाते ही दीवानजी ने प्रयाण किया और नाहर खाँ नागौर मे ही रहा। ८ मास नागौर में सुखपूर्वक बीत गये। जब नाहर खाँ ने फौज के बलख जाने की बात सुनी, तो उसने बादशाह के पास लाहौर अर्ज भेजा कि हुक्म हो तो मैं भी हाजिर होऊँ। बादशाह ने उसे बलख भेज दिया। उसने छोटे शाहजादे के साथ बलख फतह कर लिया। दोनो शाहजादो ने दक्षिणी रुस्तम खाँ और दीवान दौलत खाँ को इद खोह स्थान मे भेज दिया। शाहजादे के पास बलख में नाहर खाँ था। आयु पूर्ण हो जाने से युवावस्था में ही अचानक उसकी मृत्यु हो गई।

"नगर मे शव आने पर हाहाकार मच गया। पिता दौलत खाँ को बडा दुख हुआ। बादशाह ने सुन कर बडा दुख प्रकट किया और सरदार खाँ को बुला कर दिलासा दिया। (इस प्रसग पर कवि जान ने बडे ही करुण शब्दो मे विलाप किया है।)

"बलख से शाही सेना लौट कर काबुल आयी, तो बादशाह ने कधार विजय करने की आज्ञा दे दी और कुमक भेजी। इधर शाहजहाँ की सेना परस्पर लडने लगी। शाही सेना के पैर उखडते देखे, तो रुस्तम खाँ दक्षिणी और दीवान दौलत खाँ रण में उतर पडे और उन्होने शत्रु सेना को परास्त कर दिया।

"जब शीत काल मे बर्फ जमने लगी तो शाही सेना कधार छोड कर काबुल आ गई। जब मौसम ठीक हुआ तो फिर सेना कधार लेने गई, पर वह हाथ न आने पर उसे काबुल वापिस लौटना पडा। तीसरी बार बादशाह ने फिर सेना को भेजा। कधार मे घमासान युद्ध होने लगा। दीवान दौलत खाँ भी चढ़ाई के दौरे करता था। इसी बीच उसे ज्वर हो गया और कुछ दिनो बाद उसकी मृत्यु हो गई। (मृत्यु वि० स० १७१० तथा हिजरी सन् १०६३ मे हुई।)

"बादशाह ने सरदार खाँ को दिलासा दिया और उसे सिरोपाव दे कर स्वदेश विदा किया। सरदार खाँ अपने वतन लौट कर सुखपूर्वक राज्य करने लगा।"

इन्ही दीवान दौलत खाँ द्वारा रचित हिन्दी वैद्यक ग्रन्थ का नाम है 'दउलति किनोदसार'। इसकी एक अपूर्ण गुटकाकार प्रति बीकानेर राज्य के अनूप सस्कृत लाइब्रेरी में विद्यमान है। प्रस्तुत प्रति मे अन्य कई वैद्यक ग्रन्थो का भी सग्रह है, केवल बीच के पृ० ३६७ से पृ० ३९७ तक में यह ग्रन्थ लिखा हुआ है। अविकल प्रति की अनुपलब्धि के कारण इसमें ग्रन्थ का कितना अश कम रह गया है व अन्त मे ग्रन्थ के रचना काल आदि का उल्लेख था या नही, यह कहा नही जा सकता। उपलब्ध पत्रो मे करीब १५०० पद्य है, जिनमें हिन्दी के अतिरिक्त सस्कृत के भी सैकड़ो श्लोक है। सभवत ये किसी अन्य ग्रन्थ से उद्धृत किये गये होगे। आश्चर्य नही कि वे

ग्रन्थकार के बनाये हुए भी हो, क्योकि उनमे किसी ग्रन्थ से उद्धृत किये जाने का उल्लेख देखने में नही आया।

जैसा कि राजा-महाराजाओं के नाम से रचित बहुत से ग्रन्थो के सम्बन्ध मे देखने मे आता है, सभव है कि यह ग्रन्थ भी स्वय दौलत खाँ का रचा न हो कर उसके आश्रित किसी वैद्य विद्या विशारद कवि का रचा हुआ हो। पर प्राप्त अश मे कही ऐसा नाम-निर्देश न मिलने से दौलत खाँ द्वारा रचित मान लेना ही ठीक जान पडता है। ग्रन्थ का प्रारभिक अश व अधिकारो के नामादि नीचे दिये जा रहे है, जिससे ग्रन्थ का महत्व भली भाँति विदित हो जायगा —

दउलति विनोद सार संग्रह

श्रीमंत सच्चिदानदं, चिद्रूप परमेश्वरम् ।
निरंजन निराकारं, त किंचित्प्रणमाम्यहम् ॥१॥
दोषकादि सद्वृत्तै, पाठैः पाठानुगे वरे ।
शास्त्र विरच्यते रुच्यं, हृ (वृ?) ष्ट्वा शास्त्राण्यनेकशः॥२॥
"दउलति विनोद सार संग्रह" नाम प्रकृष्ट परमार्थं।
यत्रा से परोपकृत्यं, सम्मते सुमतं कवीन्द्राणां ॥३॥
श्री मद्दागड मंडला खिल सिर· प्रोद्यत्प्रभा मंडन.।
श्रीमंतोलिफ खान भूपति वर. नन्द्या सुरा नन्ददा॥
तत्पट्टोदय स्थनुम दिवाकरै. भास्वित्प्रभा भास्करै ।
श्रीमद्दउलति खान नाम वसुधाधीशै· सुधी शाश्रितै : ॥४॥
धनंतरि मुख वैद्य बहु, सिद्ध चिकित्साकार ।
तन सुद्धिहं मुणि योग पथ, लहइ ससारहपार ॥५॥
ताथइं चिकिछक दोष विद् पछइ चिकित्सा सत्थ।
मुक्ति होइ परमवि निपुण, रहां चाहइ तउ अत्थ ॥६॥
धर्म अर्थ अरु काम कउ, साधन एहु शरीर ।
तसु निरोगता कारणइ, उद्यम करइ सुधीर ॥७॥
धुरि निदान चिण्यान तसु, औषध के गुण दोष ।
तास सुद्ध वैद्यक हुवइ, जानु करइ जु अमोल ॥१२॥
देश काल वय वन्हि तम औषध प्रकृति विचार।
देह सत्व बल व्याधि फुनि, यइ औषध गुनकारि॥१३॥

इति श्री दउलति विनोदसार संग्रहे श्री दउलतिखांन नृपति वर विनिर्मित वैद्यगुणाधिकारः ।

अधिकारो के अत में —

ज्ञान परम इहु जोगी जानइ, कइ किछु परम वैद्य बखानइ ।
ग्रन्थ बिसेषि जिहां कछु पाया, भूपति दउलति खांन बिखाया ।।१।।

× × ×

जामाता मधुरइ सीतलेंहि, तिउ पित्तह सेवउ मन अनेहि ।
इउ काल ज्ञान जानहु सुजांन, भास्यउ नृप श्री दउलति खान ।।३।।

× × ×

षोडश ज्वर लक्षण सहित, ओषध क्वाथ बखान ।
कह्या वागड देशाधिपति नृप श्री दउलति खान ।।१७।।

इति श्री वागड देशाधिपति श्री अलिफ खांन नंदन नृप श्री दउलति खान विरचित श्री दउलति विनोद सार संग्रहे षोडश ज्वराधिकार ।

प्राप्त ४५ अधिकारो के नाम —

वैद्यगुणाधिकार, परमज्ञानाधिकार, कालज्ञान, मूत्र परीक्षा, नाडी परीक्षा, ज्वर चिकित्सा, अतिसार, सग्रहणी, हर्ष, बुनामोनिरू पण, मन्दाग्नि, बिसूति, अजीर्ण, कृमिनिदान, पांडु, राजयक्ष्मा, काश, छींक निदान, स्वर भेद, आरोचक, छर्दि, तृष्णा, दाह, उन्माद, वात निदान, आमवात, शूलनिदान, गुल्म, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ, मूत्रघात, अश्मीरी प्रमेह भेद, उदरामय प्लीहा, शोथ, अंड वृद्धि, गंडमाल, श्लीपद जघानां, बिस्फोट, भगदर, उपदंश, सूक कष्ट, शीत पित्त, आम्ल पित्त, बिसर्पि तथा भावां लूता । (इसके बाद का अश प्राप्त नही है ।)

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, प्रस्तुत ग्रन्थ की केवल एक ही अपूर्ण प्रति प्राप्त हुई हैं । फतेहपुरादि मे खोजने पर सभव है इसकी अन्य पूर्ण प्रति भी उपलब्ध हो जाय। आशा है, आयुर्वेद एव हिन्दी साहित्य के प्रेमी सज्जन अन्वेषण कर इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे विशेष प्रकाश डालने की कृपा करेगे।

हिन्दी भाषा व आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का प्रचार दिनो दिन बढ रहा है, पर खेद है कि अभी हिन्दी भाषा मे इस विषय के ग्रन्थ बहुत ही कम प्रकाशित हुये है। यह हिन्दी साहित्य के लिए उचित नही है। इन ग्रन्थो की बिक्री भी अच्छी हो सकती है, अत साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा आदि सस्थाओ व ग्रन्थ प्रकाशको को वैद्यक सम्बन्धी ग्रन्थो के प्रकाशन की ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

श्रीराम का मृगया-विमर्श

श्री उमाशंकर पाण्डेय, साहित्याचार्य, विशारद

श्री रामचरितमानस के बालकाण्ड मे श्रीराम की मृगया-लीला के प्रसगमे गोस्वामीजी ने **पावन मृग मारहिं जिय जानी। नित प्रति नृपहिं दिखावहिं आनी ॥**' कहा। इसका अभिधेय अर्थ यह है कि 'रामजी मन मे जान कर पवित्र पशुओ को मारते थे और नित्य राजा को ला कर दिखाते थे।' इस चौपाई को ले कर प्राय लोग यह शका उपस्थित करते है कि 'मर्यादा पुरुषोत्तम की अकारण जीव-हिसा का क्या हेतु है?' इसके ही अन्तर्गत दूसरा पूर्व पक्ष यह भी उपस्थित होता है कि 'क्या मृगया-विधि अनिवार्य है?' कुछ लोग इसका भी समाधान चाहते है कि 'पावन मृग' राम बाण लगने के बाद हुये, तब पहले ही मृगो में पावनता कैसे अभिहित हुई? एतद्विषयक समाधान यथा क्रम इस प्रकार है—

सर्व प्रथम यह स्मरणीय है कि रामचरित-कथन के विषय मे इदमित्थ नही कहा जा सकता—**इदमित्थं कहि जाइ न सोई।** 'मानस' के सब वक्ताओ ने चरित-वर्णन की इयत्ता के विषय मे अपनी असमर्थता प्रकट की। जिसकी बुद्धि जहाँ तक दौडी, उसने वहाँ तक वर्णन किया; जैसे मशक से ले कर गरुड तक अपनी शक्ति के अनुसार नभ में उडते है पर आकाश का पार न मशक ने पाया और न गरुड ने ही, यथा—'**नभ पतन्त्यात्मसम पतत्रिण** ।' इसी प्रकार मेरी भी इस विषय के सम्बन्ध मे धारणा है।

'मानस' के अर्थ मे अनुपमेयता है क्योकि इसमें तीन प्रकार के अर्थ निकलते हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। अतएव गोस्वामीजी ने मानस-प्रसङ्ग मे 'अरथ अनूप' कहा। आधिभौतिक अर्थ मे रामजी मे राजा दशरथ के पुत्र मात्र का भाव निहित है, ईश्वरत्व आदि का नही। आधिदैविक अर्थ में ईश्वर भाव का भी सम्मिश्रण है। आध्यात्मिक अर्थ का तो स्वतत्र स्थान है और वह पिण्ड में सगमित किया जाता है।

आधिभौतिक अर्थ के विचार से यह कहा जा सकता है कि राम जी की मृगया मे जीव हिंसा अकारण नही थी। देवकार्य, यज्ञ, मधुपर्क आदि वेद विहित कार्यों के लिए मास की आवश्यकता पूर्व काल में पडती थी, जिसके लिए प्राणी हिसन उचित था। जब कि मनु ने इन कार्यों के लिए ब्राह्मण को भी पशुवध का अधिकारी ठहराया, तब रामजी तो क्षत्रिय थे! उन्हें तो यह अधिकार प्राप्त ही था। यथा—

यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः।
भृत्यानां चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत्पुरा ॥
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवत कर्मणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनु. ॥
एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद्द्विजः।
आत्मानं च पशु चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥
—मनुस्मृति

राजा के लिए मृगया का विधान है पर व्यसन रूप से मृगया का प्रतिषेध है। यथा –

मृगयाक्षा दिवा स्वप्न. परिवाद' स्त्रियो मद.।
तौर्यत्रिक वृथाट्या च कामजो दशको गण: ॥

राजधर्म प्रकरणक मनु के इस श्लोक मे दश कामज राज व्यसन गिनाये गये तथा **'पैशुन्यं साहसं द्रोह'** आदि आठ क्रोधज व्यसनो की भी गणना की गयी। इस प्रकार मनु ने राजा के सम्बन्ध मे अठारह व्यसनो का उल्लेख किया है, जिनसे राजा को दूर रहने की आज्ञा मनु ने प्रदान की है। इसी कामज गण मे मृगया की भी गणना की गयी। उक्त दश कामज व्यसनो मे मद्यपान, द्यूत, स्त्री और मृगया ये चार यथा क्रम कष्टनम है, ऐसा मनु का कथन है। इस कष्टतम वाली गणना के प्रसग मे भी मृगया का स्थान सबके पीछे है—

पान मक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्क कामजे गणे ॥

इसी प्रकार क्रोधज व्यसनो मे दण्डपातन, वाक्पारुष्य और अर्थदूषण इन तीनो को यथा क्रम कष्टतम माना गया।

चार कामज तथा तीन क्रोधज, कुल मिला कर सात व्यसनो के वर्ग मे पूर्व-पूर्वको गुरुतर की संज्ञा दी गयी, अत व्यसनभावापन्न मृगया भी लघुतर ही प्रमाणित होती है। यथा.—

सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिण.।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥
—मनुस्मृति

इस श्लोक मे 'सर्वत्रैवानुषङ्गिण.' कह कर मनुने यह व्यक्त किया कि प्राय सब राजमण्डल मे ये व्यसन स्थित ही रहते है।

व्यसन भाव को प्राप्त करने वाली मृगया का ही निषेध है, इसका प्रमाण मनुका 'पान मक्षा. स्त्रियश्चैव मृगया च यथा क्रमम्' यह श्लोक ही है। इसमे स्त्री की भी गणना की

गयी। परदाराभिमर्षण तो सर्वसाधारण के लिए प्रतिषिद्ध है ही, अतः 'स्त्री' शब्द से यहाँ पर स्त्री का भाव अभिप्रेत नही है किन्तु स्व स्त्री से ही है। राजा गृहस्थ होता है, गृहस्थ आश्रम में स्त्री का सद्भाव अवश्य अपेक्षित है। फिर स्त्री से दूर रहने के लिए मनुकी आज्ञा इसी बात को पुष्ट तथा प्रमाणित करती है कि राजा को स्त्री का व्यसन नहीं होना चाहिये, क्योंकि उससे धर्म लोप हो जाने की सभावना है। यथा, **'स्त्री व्यसनं दुष्टं, तत्रादर्शनकार्याणां कालातिपातेन धर्मलोपादयो बोध्या.।'**—मनुस्मृति-टीका।

निर्गलितार्थ यह है कि जैसे राजधर्म मे व्यसन भावापन्न स्त्री भोग वर्जित है, सर्वथा स्त्री-भोगका निषेध नही, वैसे ही राजा के लिए मृगया भी व्यसनावस्था मे निषिद्ध है, सर्वथा नही। 'श्येन शास्त्र' नामक ग्रन्थ मे तो राजा के लिए मृगया आवश्यक विधि है, विशेष धर्म है। जैसे सर्वसाधारण के लिए निन्दा का कथन और श्रवण अनुचित है पर राजा के लिए दूत मुख से इसकी विधि है, अत यह राज विशेष धर्म है, वैसे ही मृगया भले ही सर्वसाधारण के लिए निन्दित हो पर राजा के लिए तो विशेष धर्म में परिगणित होने से वह विधि भाव मे परिणत हो जाती है।

'नैषधीयचरित' मे श्री हर्ष ने यह कहा कि वेदागममर्मपारदर्शी राजा भी मृगया की निन्दा नही करते। यथा ––

मृगया न विगीयते नृपैरपि वेदागममर्मपारगैः।

'वेदागममर्मपारगै नृपै' की व्याख्या करते हुए टीकाकार 'नारायण' ने **'राजभिर्मन्वादिभि'** कहा। आगे चल कर 'श्री हर्ष' की स्पष्ट उक्ति है कि मृगया राजा के लिए पाप नही है। यथा —

मृगयाघाय न भूभृतां घ्नताम्।

इस कथन से भी मनुका वही तात्पर्य व्यक्त, सिद्ध तथा पुष्ट होता है, जो कि ऊपर लिखा गया है। मर्यादा रक्षक होने के कारण रामजी में मृगया का व्यसन नही आने पाया और मृगया जनित अप्रत्याशित घोर सङ्कट मे वे कभी न पड़े। इसके विपरीत अन्य अनेक ऐसे उदाहरण हैं जिनसे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि व्यसन भाव वाली मृगया कितनी अनर्थकारिणी और भयप्रद है। राजा दशरथ का नाश इसी मृगया व्यसनने किया। भानुप्रताप राजा की भी इसी मे गणना है। यह इतना मृगया व्यसनी हुआ कि कैकेय देश से विन्ध्याचल तक शूकर के पीछे दौड़ता ही चला गया और अन्ततो सर्वनाश-पथ का पथिक हुआ।

आधिदैविक अर्थ का आश्रय लेने पर भी मर्यादापुरुषोत्तमता स्पष्ट प्रतीत होती है। जब उनमें ब्रह्म का भाव मान लिया गया तो सर्वज्ञता भी उनमे अवश्य माननी पड़ेगी। अतः 'पावन मृग' का भाव यह है कि चाहे जिस मृग को ही साधारण आखेटक की भाँति रामजी नही मार देते थे, प्रत्युत यह पावनात्मा है, कुछ पापवश पशुयोनि भुगत रहा है, अब इसको इस

पाप योनि से मुक्त कर देना चाहिये, यह जान कर मारते थे। इस भाव को व्यक्त करने के लिए गोस्वामी जी ने 'जियजानी' तथा 'पावन' कहा। आधिभौतिक अर्थ में पशुहिंसन का भाव वृथा हिंसा के निषेध में तथा व्यसन भाव से रहित मृगया की मर्यादा-संरक्षकता में निहित है। आधिदैविक अर्थ मे अति पुण्यशाली पशुओ को उनकी पशुयोनि से मुक्त करने का तात्पर्य है, अतएव आगे कहा गया —

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥

राजा के लिए मृगया इस दृष्टि से भी आवश्यक है कि इससे परिश्रम, व्यायाम आदि के कार्य भी सम्पन्न हो जाते है और शस्त्रो के अभ्यास भी जो रणाङ्गण के लिए परमोपयोगी हे। यदि दया का उद्रेक हो गया तो राजा रिपु को रण मे कैसे मार सकेगा? अत. तड़-पते हुए जीवको मारने, देखने आदि का अभ्यास मृगया मे राजा को होता है। इस कारण भी मृगया की उपादेयता राजा के लिए सिद्ध होती है।

भौतिक अर्थ मे 'पावन मृग' का अर्थ दुष्ट और मेध्य पशुओ से है। 'मृग' का अर्थ यहाँ हरिण नही, अपितु पशु मात्र से है। पशुओ मे भी शास्त्रो ने जिनकी दैव, पित्र्य आदि कार्यों के लिए पवित्रता स्वीकार की है, उनको ही रामजी मारते थे। सिंह, व्याघ्र आदि दुष्ट जीवो के व्यापादन मे भी पावनता तथा पुण्यातिशय है, अत 'पावन मृग' से इन दुष्ट हिंस्र जीवो का भाव अभिप्रेत है। इसकी पुष्टि '**अध्यात्मरामायण**' के इस श्लोक से हो जाती है —'**हत्वा दुष्ट मृगान्सर्वान्पित्रे रात्रिन्यवेदयत्।**' निष्कर्ष यह है कि मृगया मे दुष्ट मृग ही पावन है।

महर्षि वाल्मीकि ने तो रामजी के लिए मांस-भक्षण तथा मधुसेवन तक का भाव व्यक्त किया। यथा —

न मांस राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते।
वन्य सुविहितं नित्य भक्तमश्नाति पञ्चमम्॥

हनुमानजी की सीताजी के प्रति यह उक्ति है कि आपके वियोग के कारण रामजी ने इस समय मांस-मधु का सेवन त्याग दिया है, अर्थात् विपरीत अवस्था मे वे मांस-मधुका सेवन करते थे।

'पावन मृग' राम बाण लगने के बाद हुये, तब पहिले 'पावन' कैसे कहलाये, यह प्रश्न तो असमन्वित, असगठित तथा शब्द शक्ति के विरुद्ध होने से अज्ञान विजृम्भित है, क्योंकि 'पावन' का अर्थ दुष्ट मृग, सिंह, व्याघ्र आदि तथा मेध्य पशुओ से है। इन मृगों को पावन समझ कर रामजी ने मारा और बदलेमें उनको सद्गति दी। राम-शरतीर्थ में इन मृगो का देहावसान हुआ, अत उनको सुरलोककी प्राप्ति हुई, जैसा कि गोस्वामी जी ने कहा—'जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुर लोक सिधारे॥' यदि किसी प्रकार तीसरी शङ्का का समन्वय करना ही हो, तो यह कहा जा सकता है कि जीवका ज्योही साम्मुख्य ईश की

ओर होता है, त्यो ही वे उसके कोटि जन्मो का अघ नष्ट कर देते हैं। (**सनमुख होय जीव मोहि जबहीं। कोटि जन्म अघ नासउँ तबहीं॥**) शर मारने के समय किसी प्रकार वह मृग रामजी के सम्मुख हुआ ही होगा, अत सद्य अघ रहित हो जाने से 'पावन मृग' कहा गया। इस पक्ष में 'सनमुख' शब्द की इस प्रकार की व्याख्या करना क्लिष्ट कल्पना ही है, क्योंकि 'सनमुख' शब्द के अन्तर्गत अनुकूलता का भाव निहित है, सामने होने मात्र का नही। इस प्रकार यह व्याख्या आपातत समाधान का कारण हो सकती है, पर परमार्थ दृष्टि में इस का स्थान नगण्य ही है।

निष्कर्ष यह है कि रामजी के विषय मे गोस्वामी जी का मृगया-वर्णन सर्वविध पर्यालोचन से औचित्य का साधक सिद्ध होता है, बाधक नही।

सर्वोदय अर्थशास्त्र

श्री भगवानदास केला

आह ! परमात्मा हम लोगो को क्षमा करे ! हम ने अपने विद्यार्थी जीवन में जैसा कुछ अर्थशास्त्र पढा, वैसा ही अध्यापक बनने पर दूसरो को सिखाया और जब लिखने का प्रसग आया तो बहुत कुछ उसी रूपरेखा के आधार पर पुस्तकें तैयार की। यो लिखने में कुछ मेहनत तो होती ही है पर स्वतत्र अध्ययन और मनन करके अनुभव पूर्वक कुछ लिखना और ही बात है। उसमे कही अधिक श्रम और समय की आवश्यकता होती है। यह भी आशका रहती है कि ऐसी कृति को कोई कुछ पूछेगा भी या नही ? और इस बात का अब से तीस वर्ष पहले तो विशेष ही महत्त्व था, जब कि हिन्दी मे अर्थशास्त्र का विषय ही बहुत कुछ नया था।

सन् १९२१-२२ मे इन पक्तियो के लेखक को जब प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन मे अर्थशास्त्र पढाने का प्रसग आया, तो उस सस्था के अवैतनिक प्रधान व्यवस्थापक स्वर्गीय श्री आनन्द भिक्षु जी सरस्वती के अनुरोध पर मैंने भारतीय अर्थशास्त्र लिखने का काम हाथ मे लिया। मित्रवर प्रोफेसर दयाशकर दुबे ने इस कार्य मे बहुत दिलचस्पी ली। यह विचार किया गया कि पुस्तक अपने विषय की पहली ही है इसलिए यह यथा सभव अच्छी-से-अच्छी बनायी जाय। आप की सहायता से जो भी सामग्री उस समय मिल सकी, उसका उपयोग किया गया। श्री दुलारे-लाल जी भार्गव ने इस पुस्तक को छापना स्वीकार करके इसके सम्पादन में खूब मेहनत की। दो भागो मे यह पुस्तक सन१९२५-२६ मे प्रकाशित हुई। पहला सस्करण तो बारह वर्ष तक पडा रहा, पर पीछे समय-समय पर नये सस्करण होते रहे। इस बीच मे कितने ही अन्य विद्वानो ने भी इस विषय पर अपनी-अपनी रचनाएँ उपस्थित की। पहले ऐसी पुस्तको की माग खासकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ आदि सस्थाओ की परीक्षाओ मे इस विषय को लेने वाले परीक्षार्थियो तक ही परिमित थी। पीछे सरकारी शिक्षा-सस्थाओ के पाठ्य क्रम मे इस विषय को स्थान मिलने तथा शिक्षा का माध्यम हिन्दी स्वीकार होने पर इस विषय की पुस्तको की माँग बढना स्वाभाविक ही था। इससे कितने ही लेखको और प्रका-शको को प्रोत्साहन मिला, और कितनी ही नयी-नयी पुस्तके बाजार में आयी।

इन पुस्तको के गुण-दोषो मे न जाकर यहाँ यही कहना है कि इन सब का ढांचा वही था, जो अग्रेजो ने हमारे सामने रखा था—पूजीवादी और साम्राज्यवादी। विविध लेखको ने जगह-जगह उसमे कुछ जोड-तोड या सुधार-सशोधन आदि किये, पर इससे विषय की मूल प्रकृति

नही बदली। बहुत वर्षों तक किसी हिन्दी लेखक ने रस्किन या गाँधी की विचार-धारा का चिन्तन और मनन करने का प्रयास नही किया। कुछ वर्ष पूर्व श्रद्धेय श्रीकृष्णदासजी जाजू, वर्धा ने मुझे लिखा कि 'आप और दुबेजी वर्धा आवें और गाँधी विचारधारा का अध्ययन करें, जिसके बाद अपनी पुस्तको में इस पर प्रकाश डाल सकें।' खेद है कि हम उनके इस सुझाव को कार्य-रूप में परिणत न कर सके। पिछले वर्षों में कुछ फुटकर पुस्तको या पत्र-पत्रिकाओ मे गाँधीजी के विचारो का परिचय दिया गया, परन्तु अर्थशास्त्र के ग्रन्थ के रूप में उन विचारो का सकलन और सम्पादन नही हुआ।

इस प्रकार हिन्दी मे अर्थशास्त्र साहित्य का यथेष्ट उद्देश्य ––लोक-कल्याण या मानव-हित––पूरा नही हुआ। जहाँ तक हमें मालूम हो सका है, गुजराती भाषा को यह श्रेय है कि उसमे नरहरि पारीख द्वारा 'मानव अर्थशास्त्र' लिखा गया है, जिसमे सर्व प्रथम महात्मा गाँधी के विचारो को भी अच्छा स्थान दिया गया है। यह पुस्तक सन् १९४५ मे नवजीवन प्रकाशन-मदिर, अहमदाबाद से प्रकाशित हुई। इसमे डिमाई आकार के लगभग सात सौ पृष्ठ है और मूल्य ६) रु० है। यह पुस्तक कुछ तो हम पढ गये है और शेष मित्रवर श्री आशया जी ने हमे सुनाने की कृपा की है। इससे हमने बहुत आनन्द प्राप्त किया है।

'सम्मेलन-पत्रिका' के 'साहित्य निर्माण अक' (चैत्र, सम्वत् २००८) मे प्रकाशित श्री प्रभाकर माचवे के लेख से ज्ञात हुआ कि मराठी मे एक पुस्तक है 'अर्थशास्त्र की अनर्थशास्त्र ?' इसके लेखक है श्री धनजयराव गाडगीळ। इसके प्रकाशक का पता मालूम नही हुआ, इससे पुस्तक हम अभी तक नही देख पाये। सम्भव है कि इसमे भी गाँधी विचारधारा का कुछ परिचय दिया गया हो।

यहाँ हिन्दी की एक पुस्तक का उल्लेख करना आवश्यक है, वह है 'नवभारत'। यह अर्थशास्त्र के ढग की तो नही है, पर 'गाँधीवाद' का अध्ययन करने के लिए बहुत अच्छी है। इसके लेखक है श्री रामकृष्ण शर्मा। आपने इसे पहले सन् १९४१ में सक्षिप्त रूप मे ही प्रकाशित किया था। उस सस्करण मे क्राउन अठपेजी आकार के केवल सवा सौ पृष्ठ थे और मूल्य था बारह आना। इसका दूसरा सस्करण सन् १९४७ मे प्रकाश मदिर, काशी से प्रकाशित हुआ। इसमे डिमाई आकार के ढाई सौ पृष्ठ है और मूल्य है ५) रु०। लेखक से गत अप्रैल मास मे मिलने का हमे अवसर मिला। आप बहुत उत्साही हैं, सर्वोदय विचार धारा वाले है और आपने कई पुस्तके इस विषय पर लिखी और प्रकाशित की हैं तथा कर रहे हैं।

अस्तु, अर्थशास्त्र का उद्देश्य व्यक्ति को सतोष, समाज को सुख और विश्व को शान्ति प्रदान करना होना चाहिए। इसके प्रचार से व्यक्तियो मे पारस्परिक सहयोग और सहानुभूति, जनता मे बधुत्व की भावना और प्रत्येक राष्ट्र का दूसरे के प्रति सेवा और प्रेम का व्यवहार होना

चाहिए । अर्थशास्त्र हमे अपनी आवश्यकताए निरतर बढाने और उनकी पूर्ति के लिए परेशान रहने से बचने का मार्ग दिखाये ।

हमें ऐसा अर्थशास्त्र चाहिए, जिसका लक्ष्य मनुष्य की तथा पूर्ण मानव समाजकी सर्वांगीण उन्नति हो--शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक । ऐसे अर्थशास्त्र का आधार नैतिक होना अनिवार्य है । इसे सर्वोदय अर्थशास्त्र नाम दिया जा सकता है । सर्वोदय का अर्थ है, सब का हित सब का कल्याण । समाज मे कोई व्यक्ति या समूह ऐसा न हो, जिसके हित या विकास का उसमे विचार न हो । सर्वोदय अर्थशास्त्र मे धर्मों, जातियो, वर्णो या वर्गों की विभिन्नता का ध्यान नही रखा जायगा । वह हिन्दू-मुसलमानो का, किसानो-मजदूरो और कारीगरो का, गोरे, काले, पीले सब रगो के आदमियो का, एशिया, अफ्रीका, यूरोप और अमरीका आदि सभी भू-भागो का हित-चिन्तन करेगा ।

काम मेहनत का है, समय-साध्य भी है । बहुत से आचार्य और प्रकाड विद्वान माने जाने वालो को यह काल्पनिक या उपहासास्पद भी प्रतीत होना सम्भव है । तो भी यह काम करना है । मै कुछ समय से अस्वस्थ रहा हूँ । चाहता था, मेरे सुयोग्य मित्रो मे से कोई इस काम को हाथ मे ले । पर दुर्भाग्य से वे बडे-बडे पदो पर है, उच्च वेतनादि पाते है, जिसका लोभ वे सहसा छोड नही सकते । आखिर अपनी अयोग्यता और असमर्थता को भली भाँति जानते हुए भी मुझे ही यह कार्य-भार स्वीकार करना पडा । ईश्वर की कृपा से मुझे श्री जवाहरलालजी जैन (सम्पादक 'लोकवाणी' और 'युगान्तर' , जयपुर) का सहयोग मिल गया । पिछले दिनो हम दोनो ने सर्वोदय सम्मेलन, हैदराबाद मे भी भाग लिया था । वहाँ वाणिज्य महाविद्यालय, वर्धा के आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल से और श्री हरीभाऊ उपाध्याय से इस विषय पर विचार-विनिमय हुआ । हमने वर्धा जा कर श्रद्धेय श्रीकृष्णदासजी जाजू और किशोरलालजी मश्रूवाला से भी विचार-विनिमय किया । इस प्रकार इस शुभ कार्य का श्रीगणेश हो गया है । आशा है, परमात्मा ने चाहा तो हम इस साल (सन् १९५१) के अन्त मे पाठको को इस विषय की रचना भेट कर सकेंगे । जो सज्जन कुछ सुझाव या सहयोग दे सके, निम्नलिखित पते से पत्र-व्यवहार करने की कृपा करे —

प्राकृतिक चिकित्सालय,
गाँधीनगर,
जयपुर

उद्बोधन

श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

द्रष्टा अब भी उत्सुक है, करने नवयुग की अगवानी
कवि के स्वर में आज मुखर है सर्वोदय की वाणी !

किन्तु आज निःसर्ग भाव से, स्वतः प्रेरणा के स्वभाव से
अडिग मान्यताओं से सुदृढ़, अपने अंतर के लगाव से
व्रत ले कर जो अलख जगावे, ऐसी धुन का मीत चाहिए
सदा समर्पण और त्यागमय ऐसा सतत शहीद चाहिए !

जो यदि पथ अकेला हो तो कोटि-कोटि का साहस ले कर
जन मंगल को नित संवार, निज रक्त तथा जीवन-रस दे कर
दुनियां की विरूपताओं में, अपने पर विश्वास चाहिए
जिसमें जल कर जगत् स्वर्ण हो, हमको ऐसी आग चाहिए !

सुनते हैं, प्राचीन जमाने में गंगा धरणी पर आई
किसी भगीरथ के यत्नों से गंगा पृथ्वी पर लहराई
नये यज्ञ के लिए हमारे मन्त्रों को आकार चाहिए
लक्ष्य प्राप्ति के लिए हमारे बाणों को संधान चाहिए !

महाकवि सूरदास

डाक्टर विपिन बिहारी त्रिवेदी, एम० ए०, डी० फिल०

सूर किसी लौकिक दरबार के आश्रित न हो कर उस दरबार के गायक थे जो विश्व के दरबारो का नियता है। उनकी कृतियो को किसी आलोचक, समालोचक या प्रकाशक का सहारा आपेक्ष्य न था। ६०० वर्ष पूर्व उनका जन्म हुआ था और कवि की भाषा के आधार पर हम उसे उत्तर प्रदेश की ब्रज भाषा की सीमा के अंतर्गत कह सकते है। तब से अब तक सूर की वाणी जनता की स्मृति के सहारे साक्षरता और निरक्षरता के बधनो का उपहास करती हुई इस २० वी शताब्दी मे भी उसी गति से प्रवहमान है। निराश्रितो का वह सबल है और भव के आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तापो का शमन कर अपने आश्रितो का पाथेय है। गुसाई विट्ठलनाथ रचित अष्टछाप और गोकुलनाथ कृत "८४ वैष्णवन की वार्ता" मात्र ही कवि के जीवन पर कुछ प्रकाश डालने की अधिकारिणी है। सूरदास रचित "सूरज लहरी" पर अपनी थीसिस "सूरदास" मे शका उपस्थित कर के डाक्टर ब्रजेश्वर वर्मा ने उस स्रोत का आधार भी समाप्त कर दिया। अष्टछाप के आधार पर हमे कवि के माता-पिता और बाल्यकाल का वृत्त नही मिलता। हम चक्षुविहीनता की विडबना से पूर्ण परन्तु परमात्मा की दया से वाणी सज्ञा से भी अपूर्ण सूर को आगरा से मथुरा जाने वाले मार्ग पर गऊघाट नामक स्थान पर भगवद् भजन करते और दीक्षा लेते हुए पाते है। उनके अच्छे सगीतज्ञ होने का भी यहाँ प्रसग मिलता है। एक दिन दक्षिणावर्त मे वैष्णव धर्म की दिग्विजय करने वाले गोस्वामी वल्लभाचार्य गऊघाट पधारते है और सूर के दर्शनार्थ आने पर उनसे भगवद्यश वर्णन करने के लिए कहते है। सूर अपने को पापियो का नेता और पतितो का सिरमौर वर्णन करते हुए भगवान से निवारने की प्रार्थना करते है—

हौं हरि सब पतितन को नायक
को करि सकै बराबर मेरी इतने मान कों लायक ।

तथा

प्रभु मैं सब पतितन को टीकौ
और पतित सब द्यौस चारिकै मैं तौ जन्मत ही कौ।

गोस्वामीजी ने कहा कि इस प्रकार क्यो घिघियाते हो, कुछ भगवत लीला वर्णन करो। परन्तु सूरदास ने उत्तर दिया कि मै तो वह कुछ नही जानता। तब गोस्वामी जी ने उन्हें स्नानो-

धरात वैष्णव धर्म में दीक्षित किया और श्रीमद्भागवत सुनाने लगे तथा अपने साथ ब्रज होते हुए गोकुल में श्रीनाथजी के मंदिर मे ला कर वहाँ कीर्तन कार्य में नियुक्त किया। गुरुमुख से भगवत लीला सुनते हुए सूर उन्ही भावो को अपने पदो मे रख अर कीर्तन करने लगे। उनके पद उक्त मंदिर की बही मे संग्रहीत है और वे ही सूर सागर के आधार है।

अब हौं नाच्यौं बहुत गुपाल
काम क्रोध को पहिर चोलना कंठ विषय की माल।

आदि पद उसी काल के है। इसी ग्रथ में एक बार अकबर और सूरदास के मिलन का प्रसग है जिसमे शहशाह के दभ और कवि की अनासक्ति का सकेत है। दीर्घ काल तक श्रीनाथजी की सेवा सूर ने की। एक दिन कीर्तन काल मे जब वे न दिखाई दिये तो गोस्वामीजी के जिज्ञासा करने पर वैष्णवो ने कहा कि सूरदास परासोली की ओर गये है। यह सुनते ही सूर का अवसान काल समझ गोस्वामीजी ने कहा कि पुष्टिमार्ग का जहाज जाता है, जिसे जो कुछ लेना हो सो ले ले। परासोली मे सूर वैष्णवो से घिरे हुए अचेत पडे थे कि गोस्वामीजी का आगमन सुन कर उन्होंने यह पद गाया —

देखौ देखौ हरिजू को एक सुभाव।

और उनके पूछने पर कि तुम्हारी नेत्र वृत्ति कहाँ है, उन्होने निम्न पद गायाः—

खंजन नैन रूप रस माते
अति से चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट श्रवनन के उलटि पुलटि ताटंक फँदाते
सूरदास अंजन गुण अटके ना तरु अब उड़ि जाते॥

और पद की समाप्ति होते ही भक्त की आत्मा अपने सखा भगवान में मिल गई।

सूर-युग के फारसी इतिहासकारो ने अपनी सुप्रसिद्ध तवारीखो में जनता के प्राणो को अमरबल देने वाले महात्मा सूर का कही कोई उल्लेख नही किया है। संभवत जैसा कि अष्टछाप से विदित है अकबर के यश का उन्होने गान न किया था और सूर ही अकेले क्यों, हिंदी साहित्य के दूसरे यशस्वी भक्त शाश्वत कवि तुलसी के प्रति भी वही अवहेलना है। अबुल फज्ल कृत आइने अकबरी में अकबरी दरबार के गायक जिन सूरदास का एक स्थान पर उल्लेख है वे हमारे सूर नहीं हैं।

तुलसी की रचनाओ सदृश सूर काव्य का अनुवाद यूरोपियन भाषाओं में अथक परिश्रम किये जाने पर भी नही किया जा सका। सूर ने सन को परास्त कर दिया फिर भी हिंदी साहित्य के यूरोपियन इतिहासकारो गार्सी द तासी, अब्राहम ग्रियर्सन, एडविन ग्रीव्स और केई ने भक्त कवि सूर को अपने-अपने समय में प्राप्त सामग्री के आधार पर एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। हिंदी वालों में 'शिवसिंह सरोज' तक पद, 'मिश्रबंधु विनोद' तक महिमा, हिंदी भाषा और

साहित्य तक महिमा का महत्व और हिंदी साहित्य के इतिहास तथा भ्रमर गीत सार तक सूर काव्य का गवेषणात्मक परिचय मिल जाता है। स्वर्गस्थ होने वालो मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और जीवितो मे "अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय" के रचयिता डाक्टर दीनदयालु गुप्त, "सूरदास" के रचयिता डाक्टर ब्रजेश्वर वर्मा, सूर सौरभकार पण्डित मुशीराम शर्मा, सूर निर्णयकार श्री प्रभुदयाल मीतल और श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर द्वारा सग्रहीत सामग्री के आधारपर "सूरसागर" का सस्करण निकालने वाले प्रोफेसर नन्ददुलारे वाजपेयी का सूरदास पर साहित्यिक कार्य विशेष उल्लेखनीय है। इन विद्वानो के अतिरिक्त सूर के काव्य-सूर्य को आलोचनात्मक अजलि दे कर प्रकाशित होने वाले अन्य अनेक साहित्यकार भी है।

इधर कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर ललिता प्रसादजी सुकुल ने एक महत्वपूर्ण साहित्यिक समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। हिन्दी के अन्य सूरो (अर्थात् बिल्वमगल और मदनमोहन) की कृतियो का अपना पृथक अस्तित्व मिटा कर मथुरा के सूर मे समाहित हो जाने की एक आकर्षक गाथा है। प्रोफेसर सुकुल की प्रस्थापना है कि मथुरा के जन्मान्ध सूर का बालक्रीडा वर्णन जिसने हिंदी साहित्य मे वात्सल्य रस की एक स्वतत्र माँग की और दिल्ली के निकट निवासी अपने चक्षु फोडने वाले बिल्वमगल सूरदास की राधाकृष्ण के शृंगार की प्रगल्भ और मर्मस्पर्शी उक्तियाँ तथा सडीला निवासी बादशाह के मीर मुशी विशाल नेत्र होते हुए भी (स्वरदास-सुरदास) सूरजदास मदनमोहन उपनाम रखने वाले के उत्कृष्ट सगीत-शास्त्रानुमोदित कृष्ण की भक्ति और शृगार विषयक पद कालातर मे सूर के पद हो गये किन्तु ये सूर है मथुरा वाले हिन्दी के हमारे प्रसिद्ध सूरदास। ये तीनो कृष्ण के भक्त थे, काव्य कला के पारखी थे और ब्रजभाषा पदो मे रचना करते थे। सुकुल जी के अपने प्रमाणो मे से एक यह है कि नाभादास के भक्तमाल की प्रियादास वाली टीका मे इन तीनो सूरो का पार्थक्य स्पष्ट है परन्तु रीवा नरेश रघुराज सिह के भक्तमाल के सस्करण मे तीनो की पृथकता मिटा कर उन्हें सूर के नाम से एकाकार कर दिया गया है। समालोचको के इस कथन पर कि सूरसागर प्रत्येक राग-रागिनी का आधार है सुकुलजी कहते है कि सूर श्रीनाथ जी के मदिर में केवल प्रात और सायकाल की झाँकी के समुख ही कीर्तन करते थे अतएव इन्ही दो कालो की रागिनियो के पद इन सूर के तथा इतर अन्य दो सूरो के है। राजस्थान की भक्त कवियित्री मीरा अधिकाशत प्रात काल मदिर में भगवान के दर्शन हेतु जाती थी और कभी-कभी ही रात्रि मे, यही कारण है कि उनके अधिक पद प्रात.काल की रागिनियो मे है और कुछ सायकाल की। भाषा की साधना, परिमार्जन और स्वाभाविकता मे प्रकाशित सूरसागर से तुलना करने पर घनानन्द का सूर की अपेक्षा ब्रजभाषा पर अधिक अधिकार कहा जाता है परन्तु सुकुल जी इससे सहमत नही है। उनका कथन है कि यदि भाषा की खरी कसौटी पर सूरसागर की परीक्षा की जाय तो दिल्ली, मथुरा और सडीला की ब्रजभाषा रचनाओ को अलग किया जा सकेगा और उस समय मथुरा के सूर की भाषा घनानन्द से

उत्कृष्ट ही ठहरेगी। बगीय हिंदी परिषद् के 'कवि कल्प' विभाग ने तीन वर्ष पूर्व "सूर निर्णय" शीर्षक बुलेटिन मे इस महत्वपूर्ण प्रस्थापना पर उचित प्रकाश डाल कर विद्वानो का ध्यान इस समस्या की ओर आकृष्ट किया था। सूर काव्य पर उसके मौलिक स्रोत से अध्ययन करने वाले, श्रीनाथजी और श्री नाथद्वारा की गद्दियो मे सुरक्षित सूर की कृतियो का प्रत्यक्ष अवलोकन करने वाले डाक्टर दीनदयालु गुप्त उपर्युक्त विचार से असहमत है। प्रोफेसर सुकुल अपनी खोज में निमग्न है, सभव है कि भविष्य मे हिंदी जगत को चौंक कर हिंदी साहित्य के इतिहास में आवश्यक परिवर्तन करने पडे।

हृदय पक्ष और कलापक्ष की समता, शब्दालकारो मे श्लेष और यमक तथा अर्थालकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, अप्रस्तुत प्रशसा, लोकोक्ति प्रभृत सफल अलकारो की योजना, नवीन उपमानो के जनग्राही प्रयोग, प्रकृति चित्रण, पौराणिक प्रसग, वचन विदग्धता और चलती भाषा मे रग-बिरगे चरित्र वाले अपने सखा कृष्ण का चित्रण कर सूर हिंदी साहित्य में सदा के लिए अमर हो गये है। माधुर्य और प्रसाद गुण से सराबोर उनकी रचना जनता के गले का हार बन गई है।

एक जनश्रुति यह है कि सूर श्रीनाथजी की नित्य बदली जाने वाली झाँकी और वेशभूषा का वर्णन अपने कीर्तन मे यथानुसार कर देते थे जैसे कोई प्रत्यक्षदर्शी हो। ईर्ष्यालुओ की कमी न थी, उन्होने यह विचारा कि सूर को कीर्तन से पूर्व ही कोई न कोई बतला देता है। अस्तु, चारो ओर से प्रबध कर के उन्होने सूर को श्रीनाथजी की वस्त्र विहीन मूर्ति के सामने खडा कर दिया और कहा कि कीर्तन प्रारभ करो। उन्हे विश्वास था कि सूर का भडाफोड आज हो जायगा क्योकि वे अभी माला, वस्त्र, पटुका आदि पहनावो का वर्णन प्रारभ करेगे। परन्तु यह क्या, सूर तो गा चले थे—

"आजु नद नन्दन ठाढ़ो नंगा!"

यदि यह किवदती सत्य है तो हम हिंदी के सच्चे आशु कवि सूर को दिव्य द्रष्टा कहने मे कोई सकोच न करेगे। उनका दैन्य विप्रलभ श्रृगार के अतर्गत हो कर श्रोता के हृदय के स्पदन पर हाथ रख कर उसके मन और अत करण को आदोलित कर बहुधा वियोगाभाव रति और सचारी निर्वेद की सीमाओ की समीपता दिखला कर अति समर्थ कवि के हाथो में होने के कारण अत में यथा स्थान हो जाता है।

चक्षुविहीनता की विडबना भोगने वाले भक्त सूर के पदो में वियोग की पीडा के अतराल मे सभोग की विशद, प्रबल और हृदयस्पर्शिनी श्रृगारिक योजनाओ ने रीतिकालीन कवियो को बहुत कुछ प्रभावित किया था। दोनो की रचनाओ की तुलना परवर्तियो की कृतियो को सूर की जूठन मानने के लिए बाध्य कर देती है। उन हलाहल श्रृगारिक मौलिक उक्तियो को कोई दोष नही लगाता जब कि रीति पथी कवि दरबारी और बासनाओ को उभाडने वाले अपराधो से

विभूषित किये जाते है। दोनो में अतर केवल इतना ही है कि बनारसी गंदा नाला भी पतित पावनी भागीरथी मे मिल कर पुण्यतोया का अश बन जाता है और अपनी ओर अपावनता को खो कर शुद्धि लाभ कर लेता है किन्तु शृगारी कवियो का भक्ति के नाम पर अपनी आतरिक कुत्सित भावनाओ का काव्य के माध्यम से व्यक्तीकरण किसी भक्त शराबी की उस उपासना के स्वाँग-सा जान पड़ता है जो शराब मे चार बूद गगाजल डाल कर उसकी पवित्रता सिद्ध करने का ढकोसला रचता है और उपहास का पात्र बनता है। राधा माधव के प्रणय के चित्र अकित करते समय उस अधे गायक ने कभी स्वप्न मे भी न विचारा होगा कि उसके पदों से ऐसी कुरुचिपूर्ण प्रेरणा आगे के कवि ले सकेगे। तुलसी इस विषय मे सदैव जागरूक रहे। परन्तु कौन नही जानता कि स्वाति की बूद सीप मे गिर कर मोती और सर्प के मुख मे गरल बन जाती है।

हिन्दी कोष साहित्य और पारिभाषिक शब्द समस्या

श्री रत्नेश भट्ट

अंग्रेजों के हिन्दुस्थान में जमने से पहिले हिन्दी मे नाम मात्र के लिए कोष साहित्य में सात-आठ पुस्तकें थीं—(१) बनारसीदास की **'नाममाला'**—इसका रचनाकाल सन् १६७० है। (२) **'अनेकार्थ नाममाला'**—इसके लेखक है नाथ अवधूत और रचनाकाल १७वी शताब्दी का अतिम उत्तरार्ध। इसमें लगभग तीन हजार शब्दों का संग्रह है। (३) **'अमरकोष भाषा'**—लेखक हरिजू मिश्र—रचनाकाल १७३५। (४) **'नाम माला'**—लेखक वसहु राम। (५) **उमराव कोष**—लेखक सीतापुर के श्री सुबश—इसमे लगभग २६१६ श्लोक है। (६) **'शब्द रत्नावली'**—इसके रचयिता छत्रपुर के श्री प्रयागदास भाट है, रचनाकाल १८१२, लगभग १२ सौ शब्द। (७-८) **'नामचिंतामणि'** और **नाम रामायण**—ये दोनो रचनाए छत्रपुर के कवि श्री नवल सिंह की है। 'नामरामायण' एक प्रकार का पर्य्यायवाची लघुशब्दकोष है। उपरिलिखित रचनाओ में बनारसीदास की 'नाममाला' आज उपलब्ध नहीं है। 'अमरकोष भाषा' दिल्ली के तात्कालिक मुगल सम्राट् के आश्रय मे लिखी गई थी।

अंग्रेजी राज्य के स्थिर हो जाने पर अंग्रेजो ने अपनी सहूलियत के लिए कई अंग्रेजी हिन्दुस्तानी शब्दकोष लिखे। इनमें कुछ का प्रकाशन लदन से, कुछ का बनारस और कलकत्ता से हुआ है। इन सभी मे श्री जे० टी० प्लाट्स, जो पहिले मध्य प्रात में स्कूलो के निरीक्षक और बाद मे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, लन्दन मे पर्शियन के अध्यापक थे, का शब्दकोष कई दृष्टियो से महत्व पूर्ण है। भाषा सबधी दृष्टि से इनमें अधिकाश महत्वहीन है इसलिए उनका यहाँ विशेष विवरण अपेक्षित नही।

सन् १८८५ से १९२७ अर्थात् नागरी प्रचारिणी के 'शब्द सागर' तक अंग्रेजी-हिन्दी और हिन्दी-अंग्रेजी के कई कोष लिखे गये, अधिकाश व्यावसायिक दृष्टि से माध्यमिक पाठशालाओ के छात्रों के लिए ही। साहित्यिक मूल्य इनका कम है। फिर भी शब्द सकलन क्रमश बढ़ता गया। इनमे उल्लेखनीय है 'हिन्दी कोष', 'कैसर कोष,' 'मधुसूदन निघंटु', 'शब्दार्थ संग्रह' और श्रीधर भाषा कोष। इनका प्रकाशन क्रमश: गया, इलाहाबाद, लाहौर और लखनऊ से हुआ। शब्द सख्या के आधिक्य की दृष्टि से श्री मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव तथा राजवल्लभ सहाय द्वारा सम्पादित 'हिन्दी शब्द संग्रह' भी उपेक्षणीय नहीं है। हिन्दी कोष साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है श्री श्यामसुन्दरदास जी द्वारा सम्पादित 'शब्द सागर'। अनेक अधिकारी विद्वानो के सहयोग और

वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया यह इस विषय का प्रथम प्रयास है। इसमे लगभग १ लाख शब्द है। प्रत्येक शब्द का समुचित व्याकरणात्मक परिचय एव अर्थ का स्पष्टीकरण, बहुत थोडे से अपवादो सहित, इस बृहत् कोष मे दिया गया है। इसके बाद छपे 'शब्द कल्पद्रुम', 'मगल कोष', 'शब्दार्थ परिजात', 'सक्षिप्त शब्द-सागर' और डाक्टर रमाशकर शुक्ल 'रसाल' द्वारा सम्पादित 'भाषा शब्द कोष' आदि 'शब्द-सागर' के ही रूपान्तरित सस्करण मात्र है।

अहिन्दी भाषी प्रातो से हिन्दी के इस क्षेत्र में, आज से लगभग ३६ वर्ष पूर्व, हिन्दी की राष्ट्रभाषा क्षमता को स्वीकार करते हुए जिस महाप्राण व्यक्ति ने बडा विराट प्रयत्न किया था, वे थे स्वर्गीय श्री नगेन्द्रनाथ वसु। इनका 'हिन्दी विश्वकोष' २५ बडे-बडे भागो मे सम्वत् १९७३ मे कलकत्ते से छपा था। इस राष्ट्रभाषा भक्त विद्वान ने सब से पहिले अपने ग्रन्थ की लघु भूमिका मे भावी राष्ट्रभाषा के सर्वतोमुखी विकास के लिए इस प्रकार की आवश्यकता पूर्ति पर बल दिया है। विपुल आर्थिक क्षति उठाने पर भी जिस महान् प्रयत्न का श्रीगणेश इस महापुरुष ने किया था वह आज भी अपने ढग का अनूठा है। उसमे मीन-मेष कर के छिद्रो को ढूढना परम कृतघ्नता का परिचय देना है।

इतना कुछ होने पर भी यह निर्विवाद है कि हिन्दी मे, उसके क्षेत्र-विस्तार और उत्तर-दायित्व को देखते हुए, कोष साहित्य की स्थिति बडी दयनीय है। इग्लिश, फ्रेंच, जर्मन और रशियन आदि उन्नत पश्चिमी भाषाओ मे आत्मचरित (Biography), पुस्तक विद्या (Bibliography), खगोल विद्या (Geography), पक्षी (Birds), पौदे (Plants), पुष्प (Flowers), बागवानी (Gardening), काल निर्णय विद्या (Chronology) आदि भिन्न-भिन्न विषयो पर अलग-अलग स्वतत्र कोष मिल सकते है लेकिन हिन्दी मे नही। लोकोक्ति और मुहावरो के सबध मे भी अब तक कोई ऐसा प्रामाणिक शब्द कोष नही है जिसमे उनका शुद्ध स्पष्टीकरण तथा वाक्य प्रयोग का ढग दिया गया हो। श्री दिनकर शर्मा, डाक्टर सरहन्दी, श्री जम्बूनायन, श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी और श्री रामदहिन मिश्र के सग्रह किसी भी दृष्टि से पूर्ण नही है।

यही दशा पर्यायवाची शब्दकोष साहित्य की भी है। श्रीकृष्ण शुक्ल का एकमात्र पर्य्यायवाची शब्द कोष ऐसा है जिसे 'कोष' कहा जा सकता है। लेकिन वह भी सस्कृत के अमर कोष का हिन्दी सस्करण-सा है। हिन्दी के शब्द उसमे नही के बराबर है। इस प्रकार के कोष की आज भी हिन्दी मे बडी आवश्यकता है। बहुत ही अच्छा हो यदि हिन्दी शब्दो के साथ तदर्थवाची भिन्न स्वरूप रखने वाले मुख्य-मुख्य प्रातीय भाषाओ के शब्दो का सकलन भी उसमे किया जाय।

विशेष कला या शास्त्र सबंधी कोष निर्माण का आरभिक श्रेय भी स्वर्गीय डाक्टर श्यामसुन्दरदास जी को ही है। सम्वत् १९६० मे उनके सम्पादकत्व मे काशी नागरी प्रचारिणी

सभा से 'हिन्दी वैज्ञानिक शब्दकोष' निकला था जिसमें सब मिला कर ६५५० शब्द हैं। उनमें ५५० भूगोल, १००० ज्योतिष शास्त्र, १३०० अर्थशास्त्र और ३७०० दर्शन शास्त्र संबधी है। पारिभाषिक शब्द निर्माण सबधी दिशा मे भी यह प्रथम प्रयास है।

सन् १९०८ से १९२० तक श्री बैजवल्लभ का वह शब्दकोष प्रकाशित हुआ जिसमे कुछ व्यावसायिक, कुछ वैद्यक, कुछ व्याकरण और कुछ कानूनी शब्दो का सकलन है। सन् १९२५ मे बनारस से 'हिन्दी विद्युत् शब्दावली' प्रकाशित हुई। यह ६० पृष्ठो की लघु पुस्तिका है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कतिपय प्राध्यापको के उद्योग से एक वैज्ञानिक शब्दकोष निकाला गया जिसमे पदार्थ विज्ञान, रसायन शास्त्र, गणित और ज्योतिष सबधी कई नूतन शब्दो की उद्भावना की गई। कुछ विचारक इसे नागरी प्रचारिणी सभा के शब्दकोष का ही परिवर्द्धित सस्करण मानते है।

प्रयाग की विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित ४८२१ शब्दो का वैज्ञानिक शब्दकोष भी महत्वपूर्ण है। आदरणीय दयाशकर दुबे, भगवानदास केला और गदाधर अम्बष्ट के सम्पादकत्व मे निकली 'अर्थशास्त्र शब्दावली' आज भी अपना विशिष्ट स्थान रखती है। श्रद्धेय केला जी ने राजनीति सबधिनी एक शब्दावली का भी निर्माण किया है।

औषधीय विज्ञान सबधी एक कोष इटावा के श्री विश्वेश्वरदयाल वैद्य द्वारा सम्पादित हो कर दो भागो मे कुछ वर्षों पूर्व प्रकाशित हुआ। इस दिशा मे यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। विज्ञान और विशेष कला या शास्त्र सबधी कोशो मे भी श्री सुखसम्पत्ति भडारी की 'The 20th Century English-Hindi Dictionary' विशेष उल्लेखनीय है। इसका प्रकाशन ५ भागो मे अजमेर से हुआ। इसमे लगभग १५ हजार शब्द है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित और डाक्टर सत्यप्रकाश द्वारा सम्पादित 'समाचारपत्र शब्दकोष' इस विषय का अब तक पहिला और अतिम प्रयत्न है। सम्मेलन के ही द्वारा इधर सन् ४८ मे, देश की तात्कालिक माग को दृष्टि मे रख कर, 'शासन शब्दकोष' का प्रकाशन हुआ है। इसके सपादक है श्री राहुल साकृत्यायन, प्रभाकर माचवे तथा विद्यानिवास मिश्र। इसमे १६ हजार शब्द है।

आकाशवाणी शब्दकोष आल इडिया रेडियो की ओर से ३ भागो मे प्रकाशित हुआ था जिसमे सन् ४७ के बाद डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद की देखरेख मे विभिन्न विद्वानो के द्वारा आवश्यक सशोधन और परिवर्द्धन किया गया है।

अब तक के समस्त उल्लेखनीय प्रयत्नो मे सर्वाधिक उल्लेखनीय है डाक्टर रघुवीर का अखिल भारतीय महाकोष (The Great English Indian Dictionary)। यह पहिले लाहौर से प्रकाशित हुआ था, अब नागपुर से प्रकाशित हुआ है। यह कई खडो मे निकला है। इसमे १२४२ पृष्ठ और एक लाख से अधिक शब्द हैं। लेखक ने पुस्तकारभ में इस कार्य मे

अपने सहायक विभिन्न प्रातीय विद्वानो की एक लम्बी-चौडी तालिका भी दी है। यद्यपि इसकी शब्द निर्माण विधि पर आगे चल कर कुछ कहा जायगा, फिर भी इतना तो निश्चित है कि इस प्रकार का यह सर्वाधिक विराट प्रयत्न है।

प्रान्तीय भाषाओ में विभिन्न प्रान्तीय विद्वानो के द्वारा भी इस दिशा में काफी उल्लेखनीय प्रयत्न है। स्थान विस्तार के भय से यहा उनका पूर्ण विवरण देना कठिन है। पश्चिमी बगाल प्रान्त की सरकार ने इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी, राजशेखर वसु तथा रमेश चन्द्र मजूमदार आदि कुछ भाषा शास्त्रियो की एक परिभाषा परिषद सगठित की थी जो अपना कार्य पूर्ण कर चुकी है। जनता के सामने उस विवरण का आना अभी बाकी है, इसलिए कहा नही जा सकता कि यह परिषद् किस सीमा तक कृतकार्य हुई है।

उस्मानिया युनिवर्सिटी का वह बृहत् शब्दकोष, जो वहाँ आज से कई वर्ष पूर्व विश्वविद्यालय के माध्यम के रूप मे उर्दू के स्वीकृत किये जाने पर निर्मित हुआ था, यद्यपि आज की परिवर्तित परिस्थितियो मे बेकार-सा हो चुका है, फिर भी इस दिशा मे कार्य करने के लिए हमें समुचित प्रेरणा दे सकता है।

ऊपर के विवेचन मे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि पारिभाषिक शब्दो की निर्माण समस्या को हमारे यहाँ के दूरदर्शी विद्वानो ने बहुत पहिले से अनुभव कर लिया था **और इस दिशा में (१) विभिन्न विषयो को ले कर फुटकर प्रयत्न हुये है। (२) प्रान्तीय भाषाओं में भी बहुत कुछ हुआ है।** किन्तु (३) **सगठित प्रयत्न का अभाव रहा।**

सम्मिलित प्रयत्न के अभाव मे समय, धन और शक्ति तीनो का अपव्यय हो रहा है। गत अक्तूबर मे डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद की प्रेरणा से पटना मे विभिन्न प्रान्तीय विश्वविद्यालयो के उप कुलपतियो का एक सम्मेलन इसी त्रुटि को दूर करने के लिए हुआ था। भारत सरकार के शिक्षा विभाग ने भी डाक्टर ताराचद की अध्यक्षता मे एक विद्वद् परिषद् का सगठन हिन्दी मे वैज्ञानिक शब्दो और तदनुकूल पाठ्य पुस्तको के निर्माण के लिए किया था। पारिभाषिक शब्दो के निर्माण और चयन सबन्धी किसी निश्चित नीति के निर्धारित न होने से वैज्ञानिक साहित्य निर्माण सबधी सारा कार्य ठप जैसा पड़ा है। इस दिशा मे एक मार्ग तो डाक्टर रघुवीर ने दिखाया है, दूसरा भारत सरकार की केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री समिति और विद्वद् परिषद् ने। अतिम दोनो सरकारी समितियो ने विज्ञान सबधी पारिभाषिक शब्दो के लिए 'अन्तर्राष्ट्रीय शब्दो' के आनुपूर्विक व्यवहार पर बल दिया है। यह अन्तर्राष्ट्रीय क्या बला है ? कहीं अको का-सा ही अन्तर्राष्ट्रीय रूप तो नही है ?

विशेष राजनैतिक कारणो से कुछ अरबी-फारसी के शब्दो के जैसे अग्रेजी शब्दो का भी एक बड़ा समूह समस्त भारतीय भाषाओ में आज इस प्रकार घुलमिल गया है कि उसे बलात्

निकालना न तो सभव है और न बुद्धिमत्ता ही। लेकिन 'अन्तर्राष्ट्रीयता' के नाम पर हिन्दी को अनावश्यक अग्रेजी शब्दो से बोझिल कर उसके अस्तित्व को ही खतम करने की दुरभिसधि को तो समाप्त करना ही पडेगा। 'एथर', 'एफिनिटी', 'अनॉलजी', क्रिटिकल, बिटर एक्सपेरिमेंट, एसिड, एसिडिटी आदि सर्वथा दुरूह और अप्रचलित शब्दो को हिन्दी पर लादना दुरभिसधि नही तो क्या है ? 'अन्तर्राष्ट्रीय' से क्या तात्पर्य ? क्या अखिल विश्व में व्याप्त ? अग्रेजी अखिल लोक की तो क्या, लोक जनसख्या के दशमाश की भी भाषा नही है।ससार की सर्वाधिक जनसख्या मे बोली जाने वाली पहिली भाषा चीनी, दूसरी हिन्दी और तीसरी रशियन है, क्योकि पाकिस्तान मे बोली जाने वाली भाषा उर्दू भी हिन्दी की ही एक शैली है। सयुक्त राष्ट्र सघ की स्वीकृत भाषाएँ कई है।

अग्रेजी के अधिकाश शब्द फ्रेंच, जर्मन तथा रशियन आदि मे तो क्या, अमेरिका मे भी ठीक उसी रूप और अर्थ मे व्यवहृत नही होते। अग्रेजी के Colour और Picture अमेरिका मे Color और Pictur लिखे जाते है। अग्रेजी के Booking Clerk, Shopkeeper, Letter Box, Railway gaurd, Book-Stall और Vice-Chancellor के लिए अमेरिका मे क्रमश Ticket Agent, Sales Clerk, Mail Box, Conductor, News-stand और President कहा जाता है। सही स्थिति तो यह है कि हमारे देश मे अत्यधिक प्रचलित अत तथाकथित अन्तर्राष्ट्रीय माने जाने वाले अग्रेजी शब्द भी यूरोप की भाषाओ मे सर्वथा भिन्न रूप से बोले जाते है। ऐसे कुछ शब्दो की एक छोटी सी तालिका नीचे दी जा रही है —

अग्रेजी	स्वीडिश	डच	जर्मन
Cinema	Bisgraf	Bioscoop	Daskino
Hospital	Sjukhus	Ziekenhuis	Das Kaankenhaus
Factory	Fabrik	Fabriek	Die Fabrik
Police Station	Polisstation	Politieburean	Die Polizeiwache
Button	Knapp	Knoop	Der Knopf
Chimney	Skorsten	Schoorstion	Der Schomstein
Post Office	Le Bureau	O Corscio	Inffieis Postale
Acid	Acide	Acide	Acido

वास्तव में जिन वैज्ञानिक आविष्कारो को जन्म देने का श्रेय इग्लैण्ड को मिला है उन्ही के सूचक अग्रेजी शब्द ही ससार की अन्य भाषाओ मे प्रचलित है। ऐसे इने-गिने शब्दो को कृतज्ञतापूर्ण ढंग से अपनाने में हिन्दी वालो को हिचक नही होनी चाहिए। ध्वनि सौकर्य्य की दृष्टि से उनमें यत्किंचित् परिवर्तन भी किया जा सकता है। देश भेद से स्वरूप भेद सर्वत्र होता

हैं। ऊपर की तालिका मे आये हुए फैक्टरी और एसिड ऐसे ही शब्द है। अग्रेजी फैक्टरी शब्द का उपरि निर्दिष्ट अन्य भाषाओ से अब केवल 'एफ' 'ए' इन दो वर्णों का मात्र साम्य रह गया है। ध्वनि की दृष्टि से 'एसिड' मे भी पर्याप्त परिवर्तन हो चुका है। समस्त भूमडल की बात छोडिये एक ओर, इग्लिश चैनल पार करते ही अग्रेजी आधिपत्य समाप्त हो जाता है, फ्रेच और स्पेनिश जाने बिना यूरोप की यात्रा करनी कठिन होती है। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीयता का नारा लगाने वाले सज्जन जितने पर प्रवचक है उतने ही आत्मप्रवचक भी।

अत समुचित मार्ग को पकडने के लिए सतुलित मस्तिष्क होना आवश्यक है। मेरा अपना निजी विचार है कि कुछ विशेष अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो से बाध्य हो कर अग्रेजो को भारत छोडना पडा है। हमे हमारी स्वतत्रता उचित समय से कुछ पहिले मिली है। इसलिए स्वल्प बलिदान और आकस्मिक रूप से मिली इस स्वतत्रता ने हमारे उन्माद को बढाया है। मस्तिष्क की अपरिपक्वता से जन्य हमारी सदोष विचार सरणी से आज हमारी राजनीति की उच्चतम भूमि भी स्पर्श रहित नही है। कही भी हम निर्विकल्प भाव मे व्यावहारिक नही है, इसलिए इस क्षेत्र मे भी नही। परिभाषा निर्माण सबधी इधर निकट भूत में हमारे जितने भी कार्य हुये है सभी मे बुद्धि के किसी न किसी पक्ष को तिलाजलि अवश्य दी गई है।

डाक्टर रघुवीर ने देश मे भडकी साम्प्रदायिक तनातनी से कर्तव्याकर्तव्य-ज्ञान विरहित हुई जनता की भोली भावनाओ से खिलवाड किया है। सब से बडा दु ख तो यह है कि उनके कार्य को भाषा-विज्ञान पर आधारित बताया गया है। भाषा विज्ञान विकासवादी सिद्धात को अपनाये बिना विज्ञान रह ही नही जाता। Cone के लिए मोकधार की अपेक्षा शंकु-चूडाकार, Dimention के लिए 'परिमाण' या लम्बाई-चौडाई की अपेक्षा 'विमा' या आयत, Insurance के लिए बीमा की अपेक्षा आगोप आदि लिख कर उन्होने हिन्दी को हजारो वर्ष पीछे ढकेलने की चेष्टा की है। उनका यह सौभाग्य अवश्य है कि भारतीय सविधान के प्रथम हिन्दी रूपान्तर मे उनके कोष से ही सहायता ली गई है। लेकिन इसे हम देश का परम दुर्भाग्य मानते है। इसलिए कि इस विधान की भाषा को जावा, सुमात्रा वाले भले ही समझ ले, भारतवर्ष की हिन्दी भाषी जनता नही समझ सकती। विचित्र बात तो यह है कि उनके द्वारा निर्मित शब्दो का अर्थ, बिना अग्रेजी की पूर्ण विज्ञता के, उनके कोष को देखने पर भी नही आ सकता, क्योकि वहाँ भी स्पष्टीकरण अग्रेजी मे ही किया गया है।

ये है हमारी आज की चितना के दो ओर छोर। एक मे हम भारतवर्ष को ही कुछ अरब के रेगिस्तानो की मिट्टी डाल कर इग्लैण्ड बनाने की चेष्टा कर रहे है और दूसरे मे वर्तमान की विकट परिवर्तित परिस्थितियो से आँख मूद कर विक्रम युग को पलट कर लाने का प्रयास कर रहे है। पटना समिति के कार्यों का लेखा जोखा अभी सामने नही है। फिर भी उसमे व्यक्तियो का चुनाव योग्यता के जिस मापदड को ले कर निश्चित किया गया है उससे विशेष

अच्छी आशा नही बधती। सभी उसमें 'पति' ही है, कोई 'भाषा सेवक' भी होता तो बधती भी।

अहिन्दी भाषी जनता की सुविधाओ को दृष्टि में रख कर पारिभाषिक शब्दो के निर्माण या चयन मे साधारण जनता का ध्यान रखना जरूरी है। वर्तमान टर्किश भाषा मे जब इसी प्रकार की समस्या उठ खडी हुई थी तब वर्तमान टर्की के निर्माता स्वर्गीय कमाल अतातुर्क ने ग्राम्य बोलियो से १० हजार शब्दो का विशेष चयन कराया था। ऐसा ही प्रयत्न हमारे यहा भी किया जाना चाहिए। हजारो वर्षों के ऐतिहासिक मंथन मे आज हिन्दी का जो रूप स्थिर हो चुका है उसके स्थान पर हिन्दी नाम की कई कृत्रिम भाषाओ की सृष्टि हो रही है। ऐसा मालूम पडता है कि बदलते हुए इतिहास के पृष्ठो से हमने कुछ नही सीखा है। यह निश्चित है कि यदि साधारण जनता के बीच प्रयास किया जाय, तो अधिकाश वे शब्द, जिनके निर्माण के लिए हमें इतनी परेशानिया उठानी पड रही है, निर्मित हुए मिलेंगे। भिन्न-भिन्न पेशो से सबधित साधारण जनता अपने अग्रेजी, फारसी और सस्कृत ज्ञान के अभाव मे युगो से अपना काम चला रही है। Negative के लिए 'ठडा तार' और Positive के लिए 'गरम तार' कहने के लिए उन्हे किसी विशेष समिति के आयोजन की आवश्यकता नही पडी। Workshop के लिए 'उद्योगशाला' गढने मे विद्या-बुद्धि के ठेकेदारो को जितनी सिर खपाई करनी पडी है उतनी इन बेचारो को 'कठाल' के प्रयोग करने में नही। काष्ठालय से कठाल तक पहुचते-पहुचते जो युगो की साधना इन्हे करनी पडी है उसे हमारे 'कलम के धनी' अपनी कलम की नोक की एक फिसलन मात्र से बेकार करने पर तुले है! फिर भी तुर्रा यह कि ऊपर से नीचे तक सभी शुद्ध प्रजातत्री!

विशेष कला कौशल सबधी शब्दो के स्वरूप मे अधिकाश प्रातो की जनता के बीच बडा विचित्र साम्य है। चारपाई का 'चूल' पजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि मे 'चूल' ही है। दीवार की सिधाई को नापने की वस्तु का नाम 'गुनिया' पेशावर से कलकत्ते तक है।

पराधीनता के वरदान स्वरूप मिले हुए इतर भाषाओ के शब्दो को बिना रटे, साधारण जनता किस प्रकार—गरल को अमृतवत्—निगल जाती है, लालटेन, माचिस, बकस, तम्बाखू, बाइसिकिल आदि इसके प्रमाण है। शब्दो के परुषत्व का परिष्कार मानो स्वत प्रकृति चाहती है। यदि उच्चारण सारल्य शब्द सौम्यता मे कुछ भी मूल्य रखता है तो नि सदेह साधारण जनता की भाषा सुन्दर होती है।

लिंग सबधी गडबडी भी बुद्धि की अजीर्णता से ही उत्पन्न होती है। सुबह से शाम तक काम मे बुरी तरह उलझी हुई जनता को व्याकरण के पन्नो की ओर झाकने का अवकाश जीवन भर नही मिलता। लेकिन आपने कही देखा है कि इस कारण उनमे कही 'तू तू मै मैं' हो रही हो? अनेक भाषाओ का शब्द सगम आप उनकी भाषा में पायेंगे, लेकिन सब पूर्ण

भारतीय वेशभूषा मे । 'गुनागार' की 'तुर्की टोपी' और 'लुंगी' हटी तो 'लालटेन' को 'टोप-टाई' से हाथ धोना पडा, जब कि पढी-लिखी जनता की वाणी मे इनका अपना-अपना अलग पाकिस्तान है। कहने का साराश यह कि पारिभाषिक शब्दो के निर्माण मे साधारण जनता की रुचि और क्षमता का भी हमें ध्यान रखना है। 'घर का जोगी जोगडा, बाहर का जोगी सिद्ध' वाली कहावत को हमे अपने मे चरितार्थ नही करना है।

भाषा के क्षेत्र मे भी अग्रेजो की भेद नीति के सूचक आर्य-अनार्य भेद को छोड कर, अखिल भारतीय पैमाने पर परस्पर सहयोगात्मक नीति से यदि पारिभाषिक शब्द निर्माण की समस्या को हल किया जाय तो कोई कारण नजर नही आता कि राष्ट्र निर्माण की इस पहिली अड़चन को हम क्यो न कुछ महीनो मे ही हल कर ले ? इस समस्या के हल हो जाने पर राष्ट्रभाषा साहित्य के निर्माण दिशा मे भी यदि ऐसा ही प्रयत्न हमारा रहा तो निश्चय रूप से १० वर्ष की अवधि के भीतर ही हम ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक दिशा मे परमुखापेक्षी नही रहेंगे। नगर का मुख्य जलाशय जल-परिपूर्ण रहना चाहिए, फिर घरो की बावडिया तो भरती ही रहेंगी। 'एक हि साधे सब सधे, सब साधे सब जाय' वाली कहावत तो है ही !

अब प्रश्न उठता है कि 'म्याऊँ' कौन करे ? एकीकरण मे पथ प्रदर्शन किसका हो ? यदि उत्तर दिया जाय कि केन्द्रीय सरकार, तो सतोष नही होता। क्योकि वह बेचारी--कोमलांगिनी--पहिले ही काफी भार के नीचे दब कर कराह रही है। उस पर भी उसका 'भूतनाथी' परिवार ! इसलिए वह १५ वर्ष के बाद--अर्थात २०, ३०, ५० आदि कुछ भी--'कुछ करने' का 'इकरारनामा' लिख कर छुट्टी पा चुकी है। इसलिए उसे जल्दी भी नही है ! फिर ? फिर क्या, जो काठ की बिल्ली बनाये, म्याऊँ वही करे, अर्थात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन। यदि केन्द्रीय सरकार के राजनैनिक नखरो का असर उस पर न पडा हो तो सम्मेलन ही वह सस्था है जिसने हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित कराने के लिए विराट जनमत पैदा किया था। ऐसी स्थिति पैदा कर समर्थ राष्ट्रभाषा का गौरव भी उसको उसे ही दिलाना है। जो कुछ भी हो, पारिभाषिक शब्द निर्माण या सग्रह काल मे अपनी सास्कृतिक परम्परा, इतर प्रान्तीय जनता और जनसाधारण की कठिनाइयाँ और भाषा विज्ञान की मूलभूत प्रवृत्तियाँ जहा दृष्टि से ओझल नही की जानी चाहिए, वहा आज के विश्व की विज्ञानसभूत सक्षिप्ति और उससे उत्पन्न नई परिस्थितियाँ भी।

चित्र-मूर्ति कला

श्री श्यामसुन्दर यादव, साहित्यरत्न

अव्यक्त भावनाओ को व्यक्त करने की चेष्टा मनुष्य आदि काल से ही करता चला आ रहा है। अगम्य और अगोचर वस्तुओ को कलाकार चित्र और मूर्ति का रूप देकर सामाजिक प्राणियो को बोध देता रहा है। सृष्टि के प्रारम्भ काल से ही मनुष्य के हृदय मे किसी न किसी प्रकार कला वास करती रही है। जब मानव अपनी पूर्वावस्था मे था और विकास की पहली सीढ़ी ही पार कर रहा था, उस समय भी जिन खोहो को उसने अपना निवास-स्थान बनाया था, उन की भित्तियो पर कुछ वक्र रेखाओ की सहायता लेकर अपनी प्रसुप्त कला का प्रदर्शन करता था।

जब मानव 'मानव' बनने की चेष्टा कर रहा था तब वह अपने थोडे से अनुभव के आधार पर खोहो और गुफाओ पर अपने नित्य के जीवन सम्बन्धी चित्र खीचा करता था। उस समय के मानव को न तो रगो का ज्ञान था, न तो वह सुन्दर चित्रो की पृष्ठभूमि की ही सुन्दर रचना कर सकता था। यही कारण है कि खोहो पर गेरू और साधारण मिट्टी से बने हुए चित्र प्राप्त होते है। आदि-मानव अपना जीवन-निर्वाह जगली जानवरो के शिकार पर ही करता था। अपने टेढे-मेढे एव भद्दे हथियारो के सहारे उन पर विजय प्राप्त करता था, और उन्ही से भरण-पोषण करता था। यही उसका नित्य का जीवन था। इसी नित्य के जीवन से सम्बन्धित चित्रो का निर्माण आदि मानव ने किया है। कही पर किसी बैल को, कही भैसे को दौडाता हुआ दिखाया गया है। कैमूर की पहाडियो और विन्ध्याचल की गुफाओ की दीवारो पर ऐसे चित्र आदर्श रूप मे प्राप्त होते है। विन्ध्याचल की खोदाई मे भी कुछ मूर्तियाँ प्रस्तर-काल की प्राप्त हुई है। रियासत रामगढ मे कुछ गुफाओ पर बने हुए आदि मानवो के चित्र बडे सुन्दर बन पडे है जिनमे साधारण गेरू के रग का प्रयोग किया गया है। जगली जन्तुओ के बीच मनुष्य अनेक कष्ट सहन करता हुआ शिकारो पर विजय प्राप्त करता है और उन्ही के मास, रक्त के सहारे अपनी जीवन-नौका को खेता हुआ आगे बढ़ता है।

मनुष्य-विज्ञान के आधार पर छोटे-छोटे बच्चो की प्रकृति का यदि अध्ययन किया जाय तो हमे पता लगता है कि बाल्यकाल से ही कला का ईश्वर प्रदत्त गुण बच्चो मे विद्यमान रहता है। गीले आटे से चिडियाँ, शेर आदि की मूर्तियो का निर्माण करके बच्चा दूसरो को भय दिखाता है। धूल के चिकने धरातल पर कुछ टेढी-मेढी रेखाए खीच कर बछडा, बैल, मुन्ना आदि की सज्ञाए

देता है। पड़े हुए कागजो अथवा पुस्तको पर कुछ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओ के सहारे जो कुछ भी चाहता है, बनाता है। अवस्था-प्राप्त लोग भले ही उसकी इस कला को न समझे, पर वह स्वय प्रसन्न हो कर सूचित करता है कि मैने कुशल कलाकार का कार्य किया है। पाठशालाओ मे छोटे बच्चे मास्टर साहब को चित्रकला की ओर अधिक आकर्षित करते रहते है। वे मिट्टी के खिलौने अथवा कागज पर साधारण स्थ के सहारे चित्र बनाने मे अपनीकुशलता एव रुचि का परिचय देते है। मिट्टी के भद्दे आकार मे उन्हे सुन्दर मूर्ति का अनुभव होता है। रेखाओ के सहारे वे कुछ गोल मटोल बना कर शुद्ध मानव चित्र का बोध दिलाते है। इन कर्तव्यो से भली प्रकार जाना जा सकता है कि यह कला ईश्वर प्रदत्त है, जो समय और समाज मे अनुकूल वातावरण पा कर उगती और बढ़ती जाती है।

यद्यपि प्राचीन काल के अधिक आदर्श रूप चित्र हमे प्राप्त नही है तो भी जितने चित्र मिलते है, उनसे कला का पूर्व रूप तो ज्ञात होता ही है, जैसे मानव ने विशालकाय पत्थरो के टुकडो से गृह-निर्माण किया था उसी प्रकार काजल और गेरू जैसे साधारण रगो से अपनी कला-वृत्ति का परिचय भी दिया था। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व के प्राप्त चित्रो से स्पष्ट होता है कि आदि काल के मानव की चित्रकारी से यह युग कुछ अधिक उन्नति कर चुका था। रामगढ़ की पहाडियो मे जोगीबारा की गुफा के चित्रो से स्पष्ट होता है कि इस समय की चित्रकला पहले से बहुत आगे है और शिकारी मनुष्यो के बाद की है। सभी चित्र कज्जल से बनाये गये है और अब अस्पष्ट भी हो चले है, पर अब भी हमे प्राचीनता का आदर्श देने के लिए कम नही है।

प्राचीन काल के आदर्शो को देख कर हमे यह मालूम होता है कि वह सभी चित्र भारत के 'सभ्य' होने से पहले के है। धीरे-धीरे भारतवर्ष मे सामाजिक जागृति हुई, रहन-सहन, भोजन-वस्त्र सब में परिवर्तन हुये। समय के साथ कला ने भी अपना रूप बदला। उस समय के मानव को पत्थरो के भवन और हथियार बनाने की योग्यता प्राप्त हो गई थी। साहित्य निर्माण के साथ-साथ उसमे चित्रकला को भी यत्र-तत्र स्थान दिया जाने लगा था।

चित्रकला की उत्पत्ति के विषय मे जो लेख प्राप्त होते है, वे बडे मनोरजक है। **किसी राजा के मृत पुत्र का चित्र सब से पहले ब्रह्मा ने बनाया था और उसी चित्र में जीव का संचार कर राजा को संतोष दिया गया था।** ब्रह्मा की यह कला महान कला की द्योतक है कि राजा के मृत पुत्र और चित्रलिखित पुत्र मे किंचित भेद न आने पाया। आदि कर्त्ता ब्रह्मा को जान कर हमे कला की प्राचीनता और पवित्रता का बोध होता है। ऋग्वेद मे भी अग्नि देव का चित्र चमडे पर बनाने का सकेत है। रामायण-काल मे भी चित्रकला अपनी उन्नत दशा को प्राप्त थी, ऐसा वर्णनो के आधार पर कहा जा सकता है। रामायण मे आये हुए ऋषि आश्रम, राज्य प्रासाद, यज्ञशालाए आदि की भित्तियाँ सभी चित्रो से सुसज्जित बताई गई है। इससे प्रतीत होता है कि रामायण काल मे ही चित्रकला बहुत आगे बढ़ चुकी थी।

महाभारत काल में भी चित्रकला की उत्पत्ति के कई उदाहरण प्राप्त होते हैं जैसे उषा और चित्रलेखा की कहानी, जिसमें उषा ने रात्रि में एक स्वप्न देखा था। स्वप्न में आये हुए राजकुमार पर वह मुग्ध हो गई थी। अपनी इस दशा का वर्णन उसने अपनी सहेली चित्रलेखा से किया। चित्रलेखा ने सभी राजकुमारों का चित्र निर्माण किया। जब स्वप्न में देखे हुए राजकुमार (कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध) का चित्र देखा तो तुरन्त पहचान कर चित्रलेखा से बतलाया। इससे प्रकट होता है कि महाभारत काल मे भी चित्रकला का अधिक महत्व था।

"विष्णु धर्मोत्तर पुराण" में भी चित्रकला की विवेचना मिलती है। जिस खण्ड में चित्रो का वर्णन किया गया है उसका नाम ही 'चित्रसूत्र' रक्खा गया है, जिसमें सामाजिक चित्र और वेश-भूषा पर अधिक विचार किया गया है। किस ऋतु मे कैसे चित्र का निर्माण करना चाहिये, मनुष्य को कैसे वस्त्र धारण करना चाहिये और कैसे चित्रो मे किन-किन रगो का प्रयोग करना चाहिये आदि का पूरा विचार किया गया है।

'उत्तररामचरित' तो चित्रो से ही आरम्भ किया गया है। राम के बाल्यकाल से ही कथाए चित्रो मे दिखाई गई है। इस समय के दूसरे रचे गये ग्रथो मे चित्रकला पर विशेष रूप मे लिखे गये लेख मिलते है। उस समय के लेखो से यह प्रतीत होता है कि सभी सभ्य समाज के प्राणी एव राजकुमारो को चित्रकला सीखना आवश्यक होता था। वात्स्यायन ने भी अपने ग्रथ कामसूत्र मे चित्रकला पर विधिवत् प्रकाश डाला है, चित्रकला मे रंगो के यौग और भाँति-भाँति के नियमो पर विस्तार के साथ लिखा है। बाद के बने हुए बौद्ध शैली के चित्रो मे वात्स्यायन जी के नियमो की पूरी छाप है।

प्राचीन भारत के चित्रकला विषयक प्रेम का जो कुछ उदाहरण हमे प्राप्त होता है, वह या तो कही-कही बने हुए भित्ति-चित्रो से अथवा ग्रथो के वर्णनो से। पर रामायण-महाभारत काल के बाद हमे चित्रकला और मूर्तिकला के अधिक उदाहरण प्राप्त होते है। अब तक केवल आश्रमों तथा मण्डपो के आये हुए वर्णनो मे कला को स्थान मिलता था और कही-कही स्वतन्त्र रूप से कुछ लेखको ने अपनी पुस्तको में भी इस कला को स्थान दिया है।

ऐतिहासिक आधार पर यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल के लम्बे युग के बीतने पर जैन धर्म का उत्थान हुआ और उस समय धर्म के उत्थान के साथ-साथ समाज मे परिवर्तन होने के कारण कला मे भी विशेष परिवर्तन हो गया। जैन धर्म के समय के अनेक चित्रकला सम्बन्धी उदाहरण हमे प्राप्त होते है, जिनके देखने से यह प्रकट होता है कि जैन धर्म के विस्तार के साथ-साथ, चित्रकला का भी क्षेत्र बहुत विस्तृत हो चला था और कला अपनी पूर्णता पर पहुँच चुकी थी। जैन साहित्य की सभी पुस्तके ताल पत्रो पर लिखी मिलती है। इन पुस्तको में श्वेताम्बरो, जो जैन सम्प्रदाय की एक शाखा है, का वर्णन विस्तार के साथ प्राप्त होता है। विषय को स्पष्ट करने के लिए चित्रो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे किया गया। सभी चित्र केवल स्याही से बनाये गये

है। चलते हुए चित्र भी शिथिल-से दिखाई पडते है। चित्रो की बनावट ऐसी है,जिसमें गतिशीलता है ही नही। जो चित्र प्रकृति से सम्बन्ध रखते हैं, वे जैसे ससार की प्रगति से दूर हैं, केवल काल्पनिक चित्रो के आधार पर ही उनकी रचना की गई है। खीची गई रेखाए मोटी और भद्दे ढग की है।

जैन-धर्म धीरे-धीरे भारतीयो के लिए एक बोझ-सा लगने लगता है और वह केवल ढोग मात्र रह जाता है। उस समय जनता की कुछ अनिच्छा-सी जैन धर्म की ओर से हो जाती है। उसी समय महात्मा बुद्ध ससार को अपना आदर्श देने तथा जैन धर्म से ऊबी हुई जनता को बोध देने पहुँचते है। बुद्ध-धर्म के उत्थान के साथ कला और साहित्य मे एक नवीन जागृति का युग आया, एक नये समाज का निर्माण हुआ। यह समय भारतवर्ष मे कला के लिए स्वर्ण युग कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। बौद्ध काल मे चित्रकला अपनी चरमावस्था तक पहुँच चुकी थी जिसका उदाहरण हमें अजन्ता की गुफाओ के भित्ति-चित्रो से प्राप्त होता है। यद्यपि उस समय के भित्ति-चित्र मद्रास, बम्बई, ग्वालियर मे भी प्राप्त हुये है, पर जो विशेषता अजन्ता को मिली है वह किसी अन्य को नही। अजन्ता की चित्रकला केवल भारत को ही नही गौरव प्रदान करती बल्कि सम्पूर्ण ससार को अपने युग का आदर्श देती हुई गौरव प्रदान करती है।

अब तक वैदिक काल के पूर्व के जो चित्र प्राप्त होते है उनमें नित्य के जीवन सम्बन्धी चित्र (शिकार और शिकारी) ही चित्रित किये गये है। बौद्ध धर्म के उत्थान के समय बौद्ध भिक्षु केवल भारतवर्ष मे ही नही, बल्कि ससार के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रचार करने के लिए गये। वर्णन की अपेक्षा मूर्ति एव चित्रो का प्रभाव विशेष पडा करता है। इसी नियम के आधार पर बौद्ध मठो, विहारो और गुफाओ पर चित्रो का ही सहारा लिया गया। बौद्ध धर्म के प्रचार मे जो हाथ चित्रो का रहा, वह वर्णन का नही रहा। इसलिए इस काल मे मूर्ति और चित्रकला का बहुत अधिक प्रचार हुआ। भारत के बौद्ध भिक्षु कलाकार भी थे जो केवल भारत मे ही नही, अन्य देशो मे भी मूर्ति और चित्रो की रचना कर के, बौद्ध कालीन कला का परिचय देते है। उन चित्रो का विषय गौतम बुद्ध के जीवन के सम्बन्ध का है, जैसे सिद्धार्थ विरक्त के भाव मे तल्लीन है, उनकी मुखाकृति यह सूचित करती है कि जैसे कोई बहुत बडा बोझ उनके सर पर पडा है जिसे दूर करने का कोई साधन उन्हे शीघ्र नही प्राप्त हो रहा है। दूसरे स्थान पर गौतम बुद्ध भी घर से निकल रहे है, चेहरे मे गम्भीरता लक्षित होती है। उनकी स्त्री राहुल को साथ लिये हुए सो रही है, राजगृह की दास-दासियाँ भी सो रही है। उस समय घर का किसी प्रकार का मोह न रखते हुए बुद्ध जी राज्य-प्रासाद छोड देते है। इन चित्रो के निर्माण मे कलाकार की यही कुशलता है कि उनमे केवल बाहय आकार का ही सुधार नही किया गया है बल्कि आभ्यन्तरिक भावनाओ का चित्रण करना ही कलाकार का मुख्य ध्येय रहा है। गौतम बुद्ध जी जब तपस्या मे लीन रहते है उस समय कामदेव अपनी विशाल सेना ले कर बुद्ध जी के परीक्षार्थ पहुँचता है। इस चित्र में कुशल कलाकार ने मनोभावनाओ का चित्रण बडी सुन्दरता से किया है। कही पर तो कामदेव भयकर वेषधारी

कुछ दूतो से बुद्ध की समाधि तोडना चाहता है और कही पर सुन्दर कामिनियों का रूप दे कर बुद्ध जी को पथ-भ्रष्ट करने की चेष्टा करता हुआ दिखाई पडता है। इन अनेक प्रयत्नों से बुद्ध जी की अटल और अडिग समाधि में कोई अन्तर नही पडता। उनकी मूर्ति को देखने से पता चलता है कि कामदेव के ये सब प्रयत्न बुद्ध जी के लिए 'नही' हो रहे है, न तो उनकी मुखाकृति से इन दृश्यो के प्रति लोभ उत्पन्न होता दीख पडता है और न घृणा। सभी चित्र अपने-अपने स्थान पर सुन्दर, मनोहर बन पडे है। इन चित्रो मे स्त्रियो का पक्ति में खडा होना तथा बालो की शृगारिक रचना प्रशसनीय है। अधिक मात्रा मे चित्रो का निर्माण इतना सुन्दर हुआ है कि जैसे अभी बोलना चाहते हो। यह कलाकार की विशेष सफलता का द्योतक है। हाथो की बनावट से याचना, सेवा, विनय, श्रद्धा आदि मनोभाव स्पष्ट लक्षित होते है। इस प्रकार बुद्ध कालीन चित्रकला पहले और पीछे के युग मे स्थान रखती है।

धीरे-धीरे बौद्ध धर्म का अध पतन होने लगा और ब्राह्मण-धर्म एक अपना नया रूप ले कर उगने-बढने लगा। ब्राह्मण धर्म मे इस समय उपासना मूर्त्तियो तक सीमित हो गई थी और भारतवर्ष पर धन के लालची मुसलमानो ने आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था जिससे भारत-भूमि का वातावरण दूषित होने लगा था। हर स्थान पर उपासना का क्षेत्र मन्दिर और मूर्तियो तक ही रह गया था। इस युग मे मन्दिर और मूर्तियो का निर्माण विशेष प्रकार हुआ। सभी कलाकारो का ध्यान मूर्त्ति-रचना की ओर गया। भगवान के 'अवतार' मे ब्राह्मण-धर्म का विश्वास अटल था। यही कारण है कि भगवान के अवतार सम्बन्धी रचनाएँ होती रही। मूर्ति ही भगवान के बोध का एकमात्र सहारा था। यही कारण है कि कलाकारो ने सुन्दर से सुन्दर मूर्ति की रचना इस युग मे की।

फिर बीच के पाँच सौ वर्ष का समय, जब कि मुसलमान राज्य-लोभ से भारत में टिकने लगे, कला की दृष्टि से बडा फीका रहा। हिन्दू और यवनो के भिन्न मत होने के कारण दोनो के रहन-सहन मे बहुत अन्तर था। इस युग मे साहित्य और कला का क्षेत्र सूना पडा रहा और किसी प्रकार की कला सम्बन्धी खोज और उन्नति न हो सकी।

मुगलों के आक्रमण के पश्चात् जब भारतवर्ष मे अकबर के समय से मुसलमानो का राज्य दृढ हो गया, यवन राज्य विस्तार के साथ धर्म-विस्तार की आकाक्षा भी रखने लगे। हिन्दू जनता दोनो प्रकार से दब-सी गई। उसका धन-धर्म दोनो लूटा गया। कबीर जैसे साहित्यकार भक्त कवि ने दोनो धर्मों को मिलाने की चेष्टा की, पर दोनो मे बराबर समय के साथ कटुता बढती ही रही, कम न हुई। हिन्दू जनता निराश थी। उसके सामने अँधेरा छाया हुआ था। उस समय निराकार परमेश्वर से आशा छोड कर वह सगुण रूप की ओर झुकी। सगुण रूप ने राम और कृष्ण में विश्वास रक्खा। साहित्यकारो ने धर्म की इस उथल-पुथल पर एक रूप निश्चित किया और समाज को सगुणोपासना की ओर प्रेरित किया। जनता के सगुण रूप में अदम्य विश्वास होने के

कारण कलाकारों में भी जागृति हुई। उन्होने राम और कृष्ण की मूर्ति का ऐसा रूप दिया जो जनता के लिए अधिक सरल और बोधगम्य हुआ। इस युग मे राम-कृष्ण की मूर्तियाँ धातु और पत्थर दोनो की रची गई। इस युग की मूर्ति कला मे एक नवीनता थी जो पिछले युगों से भिन्न थी।

समाज के विचार, रहन-सहन जिस प्रकार बदलते है उसी प्रकार साहित्य और कला में भी परिवर्तित रूप पाये जाते है। जब-जब समाज मे उथल-पुथल होता है, साहित्य, संगीत, कला मे भी परिवर्तन हो जाता है। पन्द्रहवी शताब्दी इसके लिए प्रसिद्ध है। हिन्दुओ मे मूर्तिकला को प्रोत्साहन मिला और यवनो मे चित्रकला को, जिस पर बाहरी राष्ट्रो का भी प्रभाव था। हिन्दुओ मे कृष्ण और राम के जीवन से सम्बन्धित अनेक चित्रो की रचना हुई। सगुणोपासक प्रचारक भक्तो के चित्रो की माँग बराबर बढ़ती गई। संगीत की उन्नति के साथ ही राग माला सम्बन्धी चित्र बनाये गये। इस युग में राजस्थान मे इस कला की बराबर वृद्धि होती रही जो अपनी अलग नवीनता के साथ समाज के सामने आई है। राजस्थानी शैली के चित्र अधिक चटकीले रगो से बनाये गये है। राजस्थानी कलाकारो ने मुगल शैली के कलाकारो से बहुत कुछ सीखा और चित्रकला पर समय और समाज का अधिक प्रभाव पड़ा।

भारतवर्ष मे जब मुगलो का राज्य स्थापित हो गया उस समय मुगलों की कला भारतीय कला से कुछ भिन्न ही थी, पर समय के प्रभाव से दोनो कलाओ ने धीरे-धीरे आपस मे मिल कर अपना एक नया रूप निश्चित ही कर लिया जिसको यदि मुगल शैली की कला कहा जाय तो अनुचित न होगा। मुगलो का सस्थापक बाबर ही सब से बड़ा कला प्रेमी और कला का आलोचक था। फारस के कलाकार 'बिहिजाद' की चित्रकला की उसने आलोचना लिखी है। मुगलो के समय भारत मे जो चित्रकला फली-फूली, उस पर मुगल शैली का पूरा प्रभाव है। अकबर के समय दोनो कलाओ से निर्मित कला का जन्म हुआ और जहाँगीर के राज्य काल में भारतीय कला अपनी परिपक्वावस्था को प्राप्त हो चुकी थी। औरंगजेब केवल धार्मिक प्रचार मे ही पडा रहा, इस कारण उस समय कला का अघ पतन हो चुका था।

'आइने अकबरी' से प्रकट होता है कि अकबर का दरबार भारतीय, ईरानी दोनों प्रकार के कलाकारो से भरा पडा था। उसमे कई कलाकार जो बाहर से आये थे वर्णित है। भारतीय तथा बाहरी कलाकारो ने जो रूप चित्रकला का दिया वह केवल मुगलो के राज्य-प्रासादो के निर्मित आलेख तथा दरबार तक ही सीमित रह गया। मुगलो के समय प्राय. व्यक्ति-चित्र ही बनाये गये। ऐतिहासिक घटनाओ, आखेट,युद्ध, पशु-पक्षी, फल-फूल का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। जहाँगीर के समय चित्रकारो की सख्या अधिकतर हिन्दुओ की थी, फिर भी धार्मिक चित्रो की रचना कुछ भी नहीं हो सकी। प्राकृतिक चित्रो की रचना इस समय प्राय हुई। सभी चित्रकार जहाँगीर के प्रकृति-प्रेम के ही सम्बन्ध में सूक्ष्म निरीक्षण करते थे और विविध प्रकार के पशु-पक्षियो का चित्रण करते थे। प्राकृतिक चित्रो की रचना इतनी अधिक सख्या में हुई कि

पूरा ग्रन्थ तैयार हो गया है। मुगल कालीन इमारतो को देख कर पता चलता है कि मुगल राजाओ के समय हाशिये की डिजाइन का बडा प्रचार था। सभी इमारतो में इसका प्रयोग प्राय: हुआ है और हाशिये की सजावट की कला अपनी पूर्णता को पहुँच चुकी थी।

मुगलो के पतन के बाद अंग्रेजो का आधिपत्य सम्पूर्ण भारतवर्ष में स्थापित हो जाता है। भारत की कला और साहित्य दोनो पर पाश्चात्य सभ्यता का पूर्ण प्रभाव दिखाई पडता है। मुगल कालीन कला लुप्त हो चली थी। लखनऊ और दिल्ली जैसे शहरो मे कुछ कला का पिष्टपेषण पहले की ही भाँति हो रहा था, पर पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण धीरे-धीरे मुगल कालीन कला लुप्त हो चली।

आधुनिक युग ने जिन कलाकारो की उत्पत्ति की, उन्होने अपनी भारती यचित्रकला को भुला दिया। बम्बई, कलकत्ता जैसे बडे-बडे नगरो मे यद्यपि चित्रकला के स्कूल खोले गये, पर कला की कुछ उन्नति न हो मकी क्योकि अध्यापको का विचार पाश्चात्य कला के ही पक्ष मे है। यही कारण है कि कालेज के विद्यार्थियो पर कुछ प्रभाव नही पडता। बगाल प्रान्त मे भी चित्र कला सम्बन्धी स्कूल खोले गये हैं। यहाँ के चित्रकारो मे कुछ नवीन जागृति हुई है जिनमे यामिनी राय, नन्दलाल बोस, गगनेन्द्रनाथ ठाकुर आदि को बडी ख्याति मिली है। आधुनिक युग के ये प्रतिभाशाली चित्रकार चित्रकला को सफल बनाने मे समर्थ हुये है। जैसी चित्रकला का दर्शन हमे अजन्ता की गुफाओ मे होता है वैसी ही भावपूर्ण रचनाएँ इन चित्रकारो ने की है। धीरे-धीरे भारतीय कला क्षेत्र से पाश्चात्य कला का प्रभाव दूर हो रहा है। बगाल स्कूल के इस आन्दोलन से देश के चित्रकारो मे एक नवीन जागृति हुई है। गुजरात मे भी कुछ कलाकार ऐसे हो चुके है जिन्होने इस नवीन आन्दोलन से जागृति प्राप्त कर कुशल चित्रकार का कार्य किया है। 'बम्बई आर्ट स्कूल' के विद्यार्थी भारतीय चित्रकला से बहुत दूर हो गये हैं क्योकि उन पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव विशेष रूप से पडा है।

आधुनिक काल की चित्रकला का भली प्रकार से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इस समय की चित्रकला भारतीयता से दूर हो चली है। व्यर्थ के चित्रो की रचना की जाती है, जिससे कला की उन्नति रुक-सी गई है। कृष्ण और गोपियो, साधारण प्रेमी और प्रेमिकाओ के व्यर्थ के चित्रो की काल्पनिक रचना कर चित्रकला को बदनाम किया जा रहा है। कुछ चित्रकारो मे धीरे-धीरे नवीन जागृति का प्रभाव पडा है और धीरे-धीरे वे विकास की ओर जाने लगे है। हिन्दी में चित्रकला पर बहुत कम ग्रन्थ आधुनिक काल में लिखे गये है। कुछ ग्रथ चित्रकला पर लिखे गये है पर वे केवल पाश्चात्य सभ्यता की कला के अनुकरण मात्र है।

चित्रकला का क्षेत्र जैसा भारत का दूषित हो गया है, उस प्रकार यद्यपि मूर्तियो का नही हो पाया, फिर भी मूर्ति कला पर भी पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पडा है। दक्षिण भारत के कलाकारों ने भारतीय मूर्ति कला को जीवन दिया है और किसी प्रकार उसे जीवित रखने

को सचेष्ट रहे हैं। हम भारतीय कला प्रेमी उनके कृतज्ञ है। नटराज प्रभु की मूर्ति की प्रतिमा दक्षिण भारत की ही देन है, जो गौतम बुद्ध की मूर्तियो का स्मरण दिलाती है। इस समय प्रसिद्ध नगर विजयनगर मे मूर्ति कला को अच्छा प्रोत्साहन मिला है।

पर जो गति हम भारतीयो की मूर्ति कला, चित्रकला की है, उससे भारत मे कला का उत्थान न हो सकेगा। दिन प्रति दिन हमारी कला दूसरो के पैरो के नीचे रौदी जायगी। हमें चाहिये कि पाश्चात्य सभ्यता के 'भूत' को अब जहाँ तक साथ लाये है, वही छोड दें। हमारे पास प्रचुर मात्रा मे साधन है, उदाहरण हैं, जिनसे भारतीय कला को आधुनिक युग मे उन्नति मिल सकती है। कलाकार ध्यान दे कर ऐसे ग्रन्थ तथा चित्र और मूर्ति की रचना मे लग जायँ जिनकी नीव प्राचीन भारतीय शैली पर हो न कि ब्रिटिश राज्य मे बने ग्रन्थो, चित्रो के नियमो पर। वह हमारे लिए विष का कार्य कर रही है जिससे भारतीय कला प्रति दिन गिरती हो जायगी।

आधुनिक मलयालम साहित्य की रूपरेखा

सुश्री आर० माधवी मेनन, हिन्दीरत्न

अँग्रेजी साम्राज्यवाद की राजनैतिक सांपत्तिक तथा मानसिक पराधीनता की मुक्ति के लिए राष्ट्रीय चेतना की लहरें बगाल, पजाब तथा महाराष्ट्र से उठ कर समस्त उत्तरापथ मे व्याप्त हुई तो उनसे विन्ध्य तथा सह्याद्रि-रेखाएँ बच कैसे सकती है ? अत इस मुक्ति-मत्र का स्पर्श पाकर केरल के जीवन व साहित्य दोनो ने नवोन्मेष का अनुभव किया। केरल ने अपनी सकुचित प्रान्तीयता का पुरातन चोला उतार फेंका तथा राष्ट्रोत्कर्ष की उस रागारुण उषा का सोत्साह स्वागत किया। यही से मलयालम साहित्य के आधुनिक काल का प्रारभ मानना होगा।

रचनात्मकता, कर्मण्यता, नैतिक आदर्श इन सास्कृतिक त्रिमुखी धाराओ के रूप मे नव जागरण की अनुभूति अभिव्यक्त हुई जिसने पाश्चात्य सस्कार-विडबना की धुध से भारतीय जीवन के निजत्व को म्लान होने मे बचाया। केरलीयो के जीवन की तरह केरली साहित्य मे भी मौलिक शक्ति-सचार के श्रेय की अधिकारिणी यही है। यो आधुनिक साहित्य ने यात्रिक अनुगति की जगह नूतन, रचनात्मक मानदड स्वीकार किया तथा जनता की अलस, निष्क्रिय चित्तवृत्ति को नीति-पूत तथा आदर्श कर्म-पथ की ओर उन्मुख किया।

विश्व के अन्यान्य साहित्यो की तरह मलयालम मे भी काव्य क्षेत्र मे इस नवोत्थान के प्रथम प्रभावकारी दर्शन हुये। युग-प्रवर्तक तीन महाकवियो की उज्वल सेवाए एक साथ, एक ही समय आधुनिक मलयालम साहित्यको प्राप्त हुई। वे है **कोच्ची तथा मद्रास सरकार से समादृत और उत्तर भारतीय श्रेष्ठ संस्थाओ से अभिनन्दित महाकवि बल्लत्तोल नारायण मेनोन, स्वर्गीय कुमार आशान तथा स्वर्गीय उल्लूर एस० परमेश्वरय्यर** । आधुनिक पद्य-साहित्य-सौध के ये तीन स्तभ माने जाते है। आज यद्यपि अनेक कवियो के भार से मलयालम साहित्य की रीढ झुकती जा रही है फिर भी इन सब के स्रष्टा तथा पोषक इन महाकवियो की रचनाएँ आधुनिक साहित्य भडार की अमूल्य तथा बुनियादी निधियाँ कही जा सकती है।

साहित्य मे जीवन के मर्मस्पर्शी निकटत्व को स्थापित करने का प्रयत्न बल्लत्तोल ने अन्य दोनो की अपेक्षा अधिक किया है। राष्ट्रीय आदर्शों की व्याख्या करते हुए जनता में देश-प्रेम तथा ऐक्य-भावना का विकास बल्लत्तोल की रचनाओं के द्वारा सफलता से सपन्न हुआ अक्लिष्ट भाषामाधुर्य तथा जग-जीवन की रागात्मक अनुभूतियो की सजीव चित्रण-कुशलता के कारण राजकवि बल्लत्तोल की लोकप्रियता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई।

महाकवि आशान की प्रारम्भिक रचनाओं में जीवनके आदर्श-स्तर की उत्कृष्टता की झाकी अधिक दिखाई देती है। फिर भी जिस प्रकार वल्लत्तोल काव्य क्षेत्र में राष्ट्रीय आज़ादी के सत्याग्रही योद्धा रहे उसी तरह सामाजिक बन्धनो के विरुद्ध आशान ने भी सफल निर्घोष किया है। निरी भौतिकता से ऊपर उठाकर काव्य को आध्यात्मिक सुगधि से सुरभित करने का श्रेय आशान को ही प्राप्त है। तृतीय महाकवि उल्लूर आर्ष भारत के सास्कृतिक उत्कर्ष के गायक रहे है। अत श्री हर्ष तथा माघ की कला के साधक उस महाकवि की ओर बहुमत की अपेक्षा अल्पवर्ग की अधिक रुझान स्वाभाविक ही है। साहित्य तथा सस्कृति के बहुमुखी विकास मे उल्लूर का सहयोग सर्वाधिक प्रशसनीय है।

इन्ही दिनो अग्रेजी तथा उत्तर भारत के प्रमुख प्रातीय साहित्यो का संपर्क इसे प्राप्त हुआ। रवि बाबू, बकिमचद्र तथा प्रेमचन्द की कृतियाँ मलयालम मे अवतीर्ण होने लगी। साथ ही अग्रेजी साहित्य के जरिए विश्व-साहित्य की नवीन विचारधाराओ, परिष्कृत मानदण्डो तथा प्रतिपादन शैलियो ने भी मलयालम साहित्य को न्यूनाधिक प्रभावित किया। राजनैतिक तथा सामाजिक बन्धन-मुक्ति के लिए समर छेड़ने वाला साहित्य अब विचार-स्वातत्र्य की आवाज बुलद करने लगा। इसे अग्रेजी साहित्य के गठबधन का नतीजा कह सकते है।

गत द्वादश सवत्सरो के अन्दर मलयालम साहित्य मे जो क्रातिकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ है वह विस्मयावह ही है। काव्य मे शुद्ध कला या आनद की जगह उपयोगितावाद को प्रधानता दी जाने लगी। जीवन के मूल्य से अधिक आवश्यकतावाद प्रबल हो उठा। काव्य शास्त्र के अचल नियमो की कठोरता के मृदुल बनते ही कलाकारो ने उन्मुक्त रचनात्मक उन्मेष का अनुभव किया। कला-जगत में शुष्क पाडित्य का प्रभाव क्रमश पराभव मे परिणत हुआ। विचार-स्वातत्र्य की उग्र माँग से कलाकार कही-कही चिन्तन की अराजकता से अभिशप्त हुये।

यो मलयालम साहित्य को इस नवीन पथ पर अग्रसर करने वाले अग्रदूत केरल के युवा कलाकार ही रहे। इन कलाकारो मे परिवर्तन की उत्कट अभिलाषा लिये उसके लिए अश्रात व दृढ नेतृत्व प्रदान करने वाले कवि तिलक जी० शकर कुरूप का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि जनसाधारण के लिए सर्वथा अपरिचित वस्तु व व्यजना पद्धति का ही प्रयोग श्रीमान कुरूप ने किया है, तथापि जिज्ञासु पाठको मे शीघ्र ही अपनी कला पटुता की धाक जमाने मे वे समर्थ हुये और आज तो अनेक युवा कलाकारो द्वारा साहित्य मे कविवर कुरूप का व्यापक अनुकरण भी होने लगा है।

शकर कुरूपजी के पाठक आज भी न्यून ही है क्योकि उनकी रचनाएँ प्रज्ञा-मूलक रही है। रहस्यवादी तथा प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के प्रयोक्ता तथा अभ्यस्त कविवर कुरूप जन-गण-सुलभ बोध-वीथि पर उतरने में दुष्करता का अनुभव करते रहे। फिर भी उन्होने

जीवन की उष्णता का स्वागत करते हुए जनवादी रचनाएँ भी की है। लेकिन उनकी भावात्मक निगूढता हर जगह अपना रग दिखा ही देती है।

प्रत्येक क्षेत्र व विषय मे जनवाद वर्तमान युग का नारा है। आधुनिक मलयालम साहित्य भी बारह आने इसे अपना चुका है। काव्य-कला को जग-जीवन मे प्रतिष्ठित करने का प्रथम प्रयास सफलतापूर्वक राजकवि वल्लत्तोल द्वारा हुआ, यह निर्विवाद है। समकालीन कवि जब अपनी रुचि का आरोप जनता के न्यून पक्ष पर ही कर पा रहे थे तब वल्लत्तोल ने ही राष्ट्रनाडी की धडकन के साथ ताल देकर लक्ष-लक्ष केरलीय जन-मन की कला-तृषा को उत्तेजना व तृप्ति दोनो प्रदान की थी।

वल्लत्तोल ने जिस प्रगतिवाद का श्रीगणेश किया था उसे अकाल मरण का वरण करने वाले कविवर चडपुषा कृष्णपिल्लै, एम० ए० की कृतियो द्वारा प्रौढता प्राप्त हुई। **आधुनिक केरल के सर्वाधिक प्रिय कलाकार थे चडपुषा।** शून्य गहनता, जीवन स्पर्शी भावो की मर्मव्यजना, भाषालालित्य तथा सर्वोपरि प्रतिपादन सारल्य आदि प्रगतिवादी जनगीतो की सभी खूबियाँ कविवर चडपुषा की काव्य प्रतिभा मे पुजीभूत थी। किंतु आलोचको के तिक्त विमर्शन तथा अवहेलना तक के शिकार भी हुये स्वर्गीय चडपुषा ही। कारण उनकी अपूर्ण कलाप्रवणता नही बल्कि विरोध का अतिवाद था। प्रारभ मे आदर्शवादी चडपुषा फिर घोर यथातथ्यवादी के रूप मे जीवन के मूल्यो, आध्यात्मिक चितनो तथा कार्य-सस्कारो की खिल्ली तक उडाने लगे। यो आदर्शवादी आखिर भविष्यवादी (Futurist) बने।

मलयालम पद्य-साहित्य अपनी निरत अभिवृद्धि की ओर अग्रसर है। वर्तमान युवा पीढी का सगठित परिश्रम इसका साक्षी है। इस नवीन गण के चद गणनीय कलाकारो से तो बडी-बडी आशाएँ है। किंतु वर्तमान काव्य-धारा अपनी कमजोरियो से भी सर्वथा मुक्त नही कही जा सकती। आज की रचनाएं निश्चित व्यवस्थित आलोचनात्मक शास्त्रीय मान्यता स्वीकार नही करती तथा गेय प्रणाली भी शृखलाबद्ध नही कही जा सकती। अत पूर्व परपरा के मजे हुए अनेक पाठकवृन्द इन रचनाओ के आस्वादन मे एक अप्रकृत स्तभवनावस्था (Stagnation) का अनुभव करते है। आज भी उन्हे वल्लत्तोल प्रभृतियो की कविता-सरणी से चिपके रहना पड़ रहा है।

पद्यशाखा की श्रीवृद्धि के लिए पूर्व कवियो ने सुदृढ नीव तैयार कर रखी थी, लेकिन यह सुकरता गद्य को प्राप्त नही थी। खडी बोली गद्य की तरह अग्रेजी शासन तथा शिक्षा-प्रसार ही मलयालम गद्य-साहित्य के विकास का मूल हेतु है। "केरल-कालिदास" के नाम से प्रख्यात "केरल वर्मा वलिय कोयित्तबुरान" ही नवीन गद्य-साहित्य के जनक माने जाते है। पाठ्य पुस्तक समिति के अग की हैसियत से उन्होने शिवप्रसाद सितारे हिंद अथवा बाबू श्यामसुन्दरदास की तरह छात्रो के लिए उपन्यास, निबध, जीवनी, शास्त्रीय विवेचन आदि विविध गद्यागो की पूर्ति,

१८

की। उसी तरह उनके भागिनेय "केरलपाणिनि" नाम से प्रसिद्ध श्रीमान राजराज वर्मा ने भी साहित्य तथा विशेषतया गद्यशाखा की बहुमूल्य सेवा की है।

"केरलीय काहिल है" इस कथन को नितांत निराधार सिद्ध करते हुए गत तीन-चार दशकों में मलयालम गद्य-साहित्य के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण अगो का प्रशसनीय विकास हुआ। सर्वश्री सी० वी० रामन पिल्लै, चन्तु मेनोन प्रभृति ने उपन्यास-क्षेत्र मे अक्षुण्ण कृतियाँ भेंट की हैं। मलयालम का कहानी साहित्य तो किसी भी प्रातीय साहित्य से टक्कर लेने की सामर्थ्य रखता है। जीवन-चरित्र भी निराशाजनक नही हैं। लेकिन यह लज्जा के साथ स्वीकारना ही है कि आत्मकथा, यात्रा, विज्ञान, शासन, भौतिक शास्त्र, आधुनिक दर्शन आदि विभागो में गर्व करने योग्य प्रगति से इस बीसवी सदी मे भी मलयालम साहित्य वचित है। नूतन वैज्ञानिक विषयो का तो स्पर्श भी नही हो सका है। इस के लिए मलयाली नही बल्कि मलयालम के सर्वतोमुखी विकास के उत्तरदायी विश्वविद्यालय ही अपराधी कहे जा सकते हैं।

साहित्य के विकास मे अनूदित रचनाओ का स्थान कम महत्वपूर्ण नही है। अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री की ओर अग्रसर आधुनिक विश्व भौगोलिक, शासनमूलक तथा मानसिक एकता की साधना मे लगा हुआ है। इस "वसुधैव" भावना के अनुसार विश्व भर मे व्याप्त मानव-सागर की समस्त बुनियादी समस्याएँ एक हो ही सकती हैं। ऐसी स्थिति में इतर राष्ट्रो की चिन्तन-प्रणाली तथा साहित्य-सपत्ति का मनन व ग्रहण आवश्यक ही नही अपितु अपरित्याज्य भी है। यह महत् कार्य अनुवाद साहित्य द्वारा ही सभव है।

अनुवाद-क्षेत्र मे भी मलयालम साहित्य पिछडा नही कहा जा सकता। लेकिन विश्व-साहित्य की विपुलता की दृष्टि मे तो इसे भी नगण्य मानना होगा। अनेक विश्व साहित्यिको का परिचय अभी हुआ ही नही। जिन का अनुवाद हो चुका है वह अधूरा ही कहा जायगा। यह स्थिति निराशाजनक है।

किसी साहित्य की विचार-सपत्ति का लेखा-जोखा जितना अनिवार्य है उतना ही महत्व-पूर्ण है उस की गति-विधि का ज्ञान अर्थात् साहित्य तथा जीवन के गति-सन्तुलन की पटरी बिठाये बिना साहित्य कलेवर की केवल स्थूलता निरर्थक है। इस दृष्टि से मलयालम साहित्य के सभी अगो की परिस्थिति के अनुसार गतिशीलता बनाय रखने की सहज उत्सुकता उल्लेखनीय है। लेकिन प्रतिगामी साहित्य-निर्माता तथा आस्वादको से आज भी हमारा साहित्य शून्य नही है। शायद विश्व का कोई भी साहित्य इस का अपवाद हुआ भी नही है। मगर इतना सही है कि साहित्य के नियन्त्रण व सञ्चालन के अधिकारो से वे सर्वथा वचित हैं।

प्रगतिशीलता के ध्येय तथा क्रिया-प्रणाली से सबद्ध दो भिन्न पक्ष हैं। भिन्नता का बुनियादी कारण सैद्धांतिक है। एक वर्ग निरे भौतिकवादी उत्कर्ष का निर्देशक है, दूसरा भौतिक तथा अध्यात्म

की समन्वयात्मक प्रगति पर विश्वास करने वाला। प्रथम दल मार्क्सवादी तथा द्वितीय गाधीवादी सिद्धात का हिमायती है। आधुनिक वाङ्मय की गतिनिर्णायक ताकतें ये ही दो है।

यह भिन्नता तर्कसम्मत तथा मौलिक है। मार्क्सवादी जब गांधीवाद की ओर उन्मुख होगा तो उसे अनेक गांधीवाद गुदडी माल भी ढोने होगे। ठीक उसी तरह मार्क्सवाद के प्रति सहृदय गांधीवाद को अपनी लाडली धारणाओ का मोह भी सदैव के लिए छोड देना होता है। यह स्थिति दोनों की प्रकृति की अभीष्ट प्रतीत नही होती। जीवन-वीक्षण की इस शैली के प्रभाव से साहित्य भी बच कैसे सकता है? आधुनिक समालोचना-साहित्य में यह अन्तर स्पष्टतया अभिव्यक्त हुआ है। गाधीवादी समालोचक जीवन के मूल्य को सर्वोपरि स्थान देता है। तब मार्क्सवादी उस की आवश्यकताओ के पहलू पर अधिक जोर देता है। इन दोनो के सघर्ष में कला की नतिक लावण्यता का दम घुटने लगता है। यह स्थिति अशुभ तो है ही।

विचारो की प्रगतिशीलता ही सब कुछ नही है। भावो के साथ उनकी अभिव्यजना प्रणाली भी माननीय है। मलयालम मे शास्त्रीय कसौटियो का जमाना पद्रह साल पुराना पड चुका है। आज के लेखको का बहुमत यथातथ्यवादी है। पूर्व ही व्यक्त किया गया है कि यथार्थवाद को साहित्य मे वल्लत्तोल के जरिए प्रवेश मिला। आज से तीस वर्ष पहले ही ये जीवन के कठोर यथार्थ को एकत्र कर अपनी कविताओ मे अनेक हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत कर चुके थे। अन्न-वस्त्र-विहीन कुलीना कुटुम्बिनी की आत्म हत्या तथा कुबेरो के लिए अपना रक्त वाष्प बना देने के बाद स्टेशन मे असहाय पडे मृत्यु को प्राप्त करने वाले मजदूर के करुण दृश्यो द्वारा सहृदयो के नेत्रो को आर्द्र करने में उन्हे अपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी। जो हो, सर्वश्री तकषी पोट्टेक्काट आदि लेखको द्वारा आज यथार्थवादी साहित्य ने प्रौढ़ रूप धारण किया है तथा वह सर्वमान्य भी हो चला है।

"रियलिज्म" की यह मान्यता अब तक "सररियलिज्म" को प्राप्त नही हुई है। वह अब भी प्रयोगावस्था में है। लैंगिक विषयो के नग्न चित्रण की तरफ विशेष रुझान ही इसकी खूबी है। सस्कारशील हृदयो मे ऐसी कृतियो द्वारा होने वाले अस्वास्थ्यकर प्रभाव को देख कर ही कला मे नैतिक रक्षा के शक्तिशाली हिमायती प्रसिद्ध व्यग्य-समालोचक स्वर्गीय श्रीमान रावुण्णि नायर, एम० ए० (उपनाम 'खजयन') ने इसे 'वमनवाद' की उपाधि दी थी। लैंगिकता को अपनी रचना का विषय बनाने वाले कलाकारो की आज न तो कमी है और न कल रही थी। लेकिन प्राचीन तथा अर्वाचीन कलाकारो की स्थिति में किञ्चित अन्तर स्पष्ट है। प्राचीन लेखक साहित्य मे लैंगिक प्रतिपादन को एकदम अस्पृश्य करार देने के विरोधी भी थे, लेकिन आधुनिक रचयिता उसी को यथार्थ साहित्य कहने का दुस्साहस भी करते-से नजर आते है। अस्तु!

यह निर्विवाद है कि मलयालम साहित्य का भविष्य अतीव उज्वल है। वर्तमान युवा कलाकारो की निरत साधना इस सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

हिन्दी और मुसलमान

श्री त्रिलोकीनाथ रैणा (थपलू)

हिन्दी आज राष्ट्रभाषा के गौरवास्पद सिहासन पर आसीन हो रही है। भारत के निवासी इसकी सरलता और वैज्ञानिकता पर मुग्ध होकर इसके उपासक बन रहे है। यदि हम हिन्दी साहित्य के मुसलिम काल का अध्ययन करे तो प्रतीत होता है कि मुसलमानो ने जो हिन्दी की सेवा की है वह तो प्रशसा के योग्य है। उस समय मुसलमान हिन्दी भाषा की सेवा करना अपने लिए बडे गौरव की बात समझते थे। आज मुसलमान हिन्दी को, जिसे देश ने राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया है, अपने धार्मिक व राजनैतिक हितो के लिए बडा हानिकारक समझते है। परन्तु यदि वे इसके इतिहास पर दृष्टि डाले तो पता लगेगा कि इस देश मे आने के समय से ही मुसलमानो का हिन्दी के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। साधारण मुसलिम जनता ने इसे बोलचाल की भाषा के रूप मे अपनाया, मुसलिम विद्वानो तथा कवियो ने हिन्दी मे सुन्दर काव्य रचना की और मुसलिम शासको ने भी इसे देश भाषा के रूप मे अपनाया, शासन कार्यो मे स्थान दिया, हिन्दी कवियो को अपने दरबारो मे रखा तथा उन्हे भारी पुरस्कार दे कर प्रोत्साहित किया।

इसके अतिरिक्त मुसलिम शासको ने स्वय हिन्दी का ज्ञान प्राप्त किया। मुगल सम्राट् अकबर, शाहजहाँ इत्यादि सभी हिन्दी मे सुन्दर कविता करते थे। मुहम्मद कासिम, महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी जैसे कट्टर मुसलिम नरेशो ने भी हिन्दी को अपनाया तथा शेरशाह सूरी ने अपनी मुद्राओ पर नागरी को स्थान दिया और वह अपने फरमानो को हिन्दी मे भी लिखाता था। इस प्रकार मुसलिम शासको ने बिना किसी प्रकारके भेद भाव के हिन्दी को अपनाया और इसके विकास मे हर प्रकार का सहयोग दिया। राष्ट्र भारती के भडार मे जिन मुसलमान लेखको तथा कवियो ने अपनी श्रद्धाजलियाँ समर्पित की है,उनका कुछ विवरण निम्न-लिखित है —

संख्या	नाम	स्थान	समय	कृति और परिचय
१	मसऊद सयिद सुलयमान	गजनी	११वीं शताब्दी	संस्कृत के पंडित
२	अलबीरुनी	गजनी	११वीं शताब्दी	अरबी और संस्कृत का अच्छा विद्वान्
३	अमीर खुसरो	दिल्ली	१३वीं शताब्दी	खड़ी बोली का पहला मुसलमान कवि, "खालिक बारी" का लेखक
४	वली दकिनी	औरंगाबाद	१३वीं शताब्दी	हिन्दी का ज्ञाता
५	मलिक मुहम्मद जायसी	जायस	१६वीं शताब्दी	हिन्दी (अवधी) का अच्छा कवि, "अखरावट" और "पद्मावत" का लेखक
६	सैयद गुलाम नबी (रसलीन)	बलग्राम	१७वी शताब्दी	अंग दर्पण और रस प्रबोध का लेखक, हिन्दी ज्ञाता
७	मल्लादावूद	दिल्ली	१४वीं शताब्दी	नवरत्न और चन्दा का लेखक
८	रहीम खानिखानां	दिल्ली	१६वीं शताब्दी	खेट कौतुकजातक, रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, शरफगार, नगर बिलास इत्यादि पुस्तकों का लेखक और उत्कृष्ट कवि
९	शेख उस्मान	गाजीपुर	१७वीं शताब्दी	"चित्रावली" का मनोहर लेखक
१०	तानसेन	आगरा	१७वीं शताब्दी	गान विद्या का ज्ञाता, संगीत सार, रागमाला का लेखक
११	अब्दुल रहमान	दिल्ली	१७वीं शताब्दी	"टामक शिलंक" का लेखक
१२	आलम	आगरा	१७वीं शताब्दी	आलम-केलि, माधवानल और कामकन्दला का लेखक
१३	अमीर (पधी)	दिल्ली	१७वीं शताब्दी	संस्कृत की एक गान पुस्तक का फारसी में अनुवाद किया

संख्या	नाम	स्थान	समय	कृति और परिचय
१४	सैयद गुलाम नबी	बलग्राम	१७वीं शताब्दी	"मेरा दर्पण" का लेखक
१५	सैयद निजामुद्दीन	बलग्राम	१७वीं शताब्दी	नवचन्द्रिका और माध्यामिक का लेखक
१६	अबुलफैज (फैजी)	दिल्ली	१७वीं शताब्दी	लीलावती, नल दमयन्ती का लेखक, गीता का फारसी में अनुवाद किया
१७	अनवर खान	दिल्ली	१८वीं शताब्दी	"बिहारी सतसई" की टीका का लेखक
१८	नूर मुहम्मद		१८वीं शताब्दी	"इन्द्रावती" का लेखक
१९	महताब		१८वीं शताब्दी	"नख-शिख" का लेखक
२०	अली महीबखान	आगरा	१८वीं शताब्दी	"खटमल बत्तीसी" का लेखक
२१	शेख मुल्तान	बदायू	१८वीं शताब्दी	महाभारत और रामायण का फारसी में अनुवादक
२२	हफीज अलाह	रुदली	२०वीं शताब्दी	हर गंगा, रामायण, गीता की टीका का लेखक
२३	अक्रम फैज	बलग्राम	२०वीं शताब्दी	वृत्तमाला छन्द के ग्रन्थ का लेखक
२४	हाजी इब्राहिम	सरहिन्द	२०वीं शताब्दी	अथर्ववेद का फारसी में अनुवादक
२५	मौलाना अजुलदीन	दिल्ली	२०वी शताब्दी	ज्योतिष और अन्य विषयो की पुस्तको का फारसी में अनुवादक
२६	मुकमलखान	गुजरात	२०वीं शताब्दी	"जातक" का फारसी में अनुवाद किया
२७	मौलाना मुहम्मद	शाहाबाद	२०वी शताब्दी	सुप्रसिद्ध कश्मीर-इतिहास "राज तरंगिणी" का फारसी में अनुवाद किया
२८	मौलाना शाहरी	शाहाबाद	२०वीं शताब्दी	"हरिवंश पुराण" का फारसी में अनुवाद किया
२९	मला मसीह	शाहाबाद	२०वीं शताब्दी	अनुवादित फारसी महाभारत और रामायण का सम्पादक

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध हो गया कि आज जिस हिन्दी की वाटिका में हम सब सौरभ से आनन्दित हो रहे है, उसकी सेवा मे मुसलमानो ने भी बहुत बडा भाग लिया है। उस समय, जब ससार मे इतना प्रकाश नही था और सारा ससार अपनी सभ्यता की पहली सीढियो पर चढ रहा था, मुसलमानो और हिन्दुओ ने मिल कर अपनी भाषा और साहित्य की सेवा की। परन्तु आजकल के कुछ सकीर्ण और साम्प्रदायिक मनोवृत्ति वाले मुसलमान कहते है कि हिन्दी हिन्दुओ की भाषा है। यह बडे आश्चर्य की बात है कि ऐसा कहने वाले मुसलमान कैसे उस अग्रेजी भाषा को, जो कि एक विदेशी भाषा है, अपनाने मे जरा भी नही हिचकते ? क्या यह नयी शिक्षा और नयी सभ्यता का फल है ? इस पर उनको लज्जा होनी चाहिए।

पुस्तक-परिचय

हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण--लेखिका, डाक्टर किरण कुमारी गुप्ता, एम० ए०, पी-एच० डी०, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण, आकार डिमाई, पृष्ठ-संख्या ४८४, मूल्य ९)

डारविन के 'इवोलूशन आफ दि मैन' नामक पुस्तक का प्रभाव जितना पाश्चात्य विज्ञान पर पड़ा, उससे कहीं अधिक, संसार के साहित्य पर स्पष्ट परिलक्षित है। किसी भी विषय को लेकर उसके 'आदि, मध्य और अवसान' तक वैज्ञानिक रीति से छानबीन कर, किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचने को हम डारविन का प्रभाव कह सकते हैं। इस प्रभाव से हिन्दी का समालोचना साहित्य अछूता नहीं है।

हिन्दी में कवियों और लेखकों के सम्बन्ध में आलोचनाओं के लिखने की परिपाटी बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है, पर किसी एक विषय को लेकर उस पर समालोचना लिखने की प्रथा अभी कुछ ही वर्षों से चल पड़ी है। श्री पदुमलाल पुन्नालालजी बख्शी ने कुछ इस प्रकार के प्रयास अवश्य किये थे। इस सम्बन्ध में उनके 'हिन्दी काव्य में प्रेम' तथा 'हिन्दी काव्य में सौन्दर्य सृष्टि' नामक लेख उल्लेखनीय है। पर 'हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण' के सम्बन्ध में अधिकारपूर्ण पुस्तक के लिखने का श्रेय किरण कुमारी जी ही को है।

किरण कुमारीजी की पुस्तक दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कुछ सिद्धान्त स्थिर कर, उसके विविध रूपों पर प्रकाश डाला गया है। द्वितीय खण्ड में प्रकृति चित्रण का वीरगाथा काल के काव्य से लेकर अब तक का इतिहास है।

किरण कुमारीजी की दृष्टि में, मानव और प्रकृति का चिर काल से साहचर्य चला आ रहा है। आदिम मानव प्रकृति को विस्मय तथा भय की दृष्टि से देखा करता था, पर उसके अधिक सहवास तथा मंगलकारी गुणों के कारण उसने उसमें देवत्व की प्रतिष्ठा करना प्रारंभ कर दिया। प्रकृति के विविध अंगों को इन्द्र, सूर्य, वरुण, चन्द्र, वायु, पृथ्वी आदि दिव्य नाम दिया जाने लगा। देवत्व की भावना के साथ-साथ, सौन्दर्य का योग तथा पूजा भाव का उदय स्वाभाविक ही था। इन्द्र, सूर्य, पवमान, पृथ्वी आदि की इसी विश्वास के आधार पर पूजा होने लगी।

सौन्दर्योपासक कवि के लिए, प्रकृति के विराट् सुन्दर तथा भयंकर सभी रूपों में एक प्रकार की नूतनता है। किरण कुमारी जी ने जहाँ एक ओर मानव का प्रकृति के प्रति पूजाभाव व्यक्त किया है, वहाँ दूसरी ओर सौन्दर्योपासक कवि की व्याख्या की है।

प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध मे विचार प्रकट करते हुए, लेखिका का कहना है कि हमारे कवियो ने जहाँ एक ओर वैज्ञानिक तथ्य को स्वीकार किया है, वहाँ दूसरी ओर अपनी रचनाओ में कवि ने समय को भी कम महत्व नही दिया है। सुन्दरी स्त्री के चरणाघात से अशोक वृक्ष का पुष्पित तथा पल्लवित हो जाना, चन्दन के वृक्ष पर फल और फूल के स्थान पर साँपो का लिपटा रहना, कमल के पत्तो का नदी के जल मे सतत तैरते रहना, कुमुद के पुष्प का रात्रि में विकसित होना, दातो का कुन्दकली के समान श्वेत होना, सुन्दरी स्त्री के मृदु हास्य से चम्पा का पुष्पित हो जाना, वसन्त ऋतु मे कोकिल का आलाप, चन्द्रिका के प्रेम मे चकोर का अगारे निगल जाना, चकई-चकवा का दिन मे सयोग तथा रात्रि में वियोग, मयूर का पावस मे नृत्य, चातक का केवल स्वाति नक्षत्र के जल का पान करना तथा हस का नीर-क्षीर विवेक, कवि के लिए वैज्ञानिक सत्य से भी बढ कर है।

'प्रकृति चित्रण के विविध रूपो' के सम्बन्ध मे लिखते हुए किरण कुमारी जी का कहना है कि प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध मे, एक ही काल के एक ही वर्ग के कवियो मे भिन्न दृष्टिकोण रहा है। प्रकृति का आलम्बन रूप मे वर्णन सस्कृत काव्यकारो ने तथा आधुनिक हिन्दी के कुछ कवियो ने प्रचुर मात्रा मे किया है। आदिकवि वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, हरिऔध तथा पन्त की प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ इसी प्रकार की है। पर रीति काल के कवियो ने अपने उदाहरण के लिए राज दरबारो मे रह कर प्रकृति का उद्दीपन रूपमे वर्णन किया है। वियोग में बारहमासा का वर्णन तथा सयोग मे षट्ऋतु का वर्णन उल्लेखनीय है। प्रकृति का अलकार रूप मे वर्णन प्राय सभी कवियो मे पाया जाता है। प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप कर मानवीकरण की प्रवृत्ति भी कई कवियो मे पाई जाती है। तुलसी, रहीम, गिरिधर कविराय, दीनदयाल, वृन्द आदि ने प्रकृति को उपदेश का माध्यम बनाया है। रहस्यवादी दृष्टिकोण रखने वाले कवियो ने प्रकृति मे परम तत्व के दर्शन पाये है।

पुस्तक मे किरण कुमारीजी ने प्रकृति सम्बन्धी समस्त आवश्यक जानकारी प्रस्तुत की है। इस प्रकार से पुस्तक, विद्यार्थियो के साथ-साथ, विद्वानो के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है।

—गुर्ती सुब्रह्मण्य

पंच प्रदीप—लेखिका, सुश्री शाति, एम० ए०, प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृष्ठ-सख्या ९४; मूल्य २)

'पच प्रदीप' सुश्री शाति, एम० ए० का नवीनतम गीत-सग्रह है। गीतो का विषय है प्रेम। यह प्रेम लौकिक और व्यक्तिगत है। प्रेम को अत्यन्त तीव्रता और गहराई से ग्रहण करते हुए आघात, असफलता और जलन को शाति जी ने अब तक सहन किया है। इस कृति मे वे भाव की उस भूमि पर पहुँच गई है जहाँ से पीछे लौटना सभव नही होता।

भावना को इन्होंने कही प्रत्यक्ष और कही प्राकृतिक व्यापारो द्वारा वाणी दी है। जैसे अन्य आधुनिक कवियों की, वैसे ही इनकी कविता भी वृत्तियो (Moods) की अनुवर्तिनी है। अत करण की न जाने कितनी वृत्तियों को इन्होंने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ढग पर अभिव्यक्त की है। इनके निराशा के चित्र तो बडे ही मार्मिक बन पडे है—

(१) हो गया मेरा हृदय उदास!
किसी के कुछ कहने के पूर्व
मिला मुझको सदेश अपूर्व
बहाये बिना नयन का नीर किसी ने शीतल कर दी प्यास!

(२) जिसमे निशा शशि थे मिले
सध्या हुई तारे खिले
मै झांक भी पाई न वह आकाश व्यर्थ चला गया!
विश्वास व्यर्थ चला गया!

(३) उजड चुका मन के मदिर से
जब भावो का मेला,
किसको बाट जोहता अब भी
मेरा हृदय अकेला!

इनके गीतो मे ससार के प्रति विद्रोह की भावना तो पाई जाती है, परन्तु विद्वेष की नही। शाति जी के मन की गति ऐसी नही जो वस्तुओ को तोडती-फोडती चलती है, वरन् ऐसी है जो सभी के साथ समझौते के लिए लालायित रहती है। स्वप्न और सत्य मे से इनका झुकाव स्वप्न और क्राति एव शाति मे से स्वभावत शाति की ओर है। बाहरी सघर्ष और मानसिक सघर्ष दोनो के प्रबल हो उठने पर भी प्रेम-भावना, कर्तव्य-भावना एव धर्म-भावना दोनो से नियन्त्रित है। इनके गीत एक अत्यन्त सस्कृत स्वभाव वाली रमणी के सयमशील हृदय से निकले जीवन-गीत हैं। दो विरोधी भावनाओ के कारण इन गीतो मे एक विलक्षण मार्मिकता और चमक आ गई है। इस उद्दाम भावना के सौंदर्य को देखिये—

भूल जाने से प्रथम यह जान लेना बात!
याद रहने का जिसे था
प्राप्त वर—वरदान,
वह भुलाया जा सके
यह भूल एक महान,

बन चुके हो जब कि तुम
नर से स्वयं भगवान,
किस तरह से हो सकोगे
तुम पुन: पाषाण !
शशि तुम्हें मैं रोक लूगी अब मिलन की रात !
भूल जाने से प्रथम यह जान लेना बात !

इतना होते हुए भी प्रेम की यह भावना ऐसी नही है जो व्यक्तिगत जीवन को घेर कर बैठ जाय या उसके विकास को रोक दे। भावो की व्यापकता शाति जी की रचनाओ में बराबर पाई जाती है। इस ग्रथ मे उसने दो दिशाएँ पकडी है—(१) नारी-जागरण की (२) लोक-कल्याण की। ये दोनो ही प्रवृत्तियाँ उनके नवीन काव्य को नवीन पख दे सकती है। भावना की दृष्टि से कवयित्रियो में महादेवी ने ससार को स्वीकार ही नही किया, तारा पाँडे ने क्षति की पूर्ति शिशु-प्रेम मे की तथा सुमित्राकुमारी सिनहा डाँवाडोल है। स्पष्ट है कि वैराग्य, अपत्य-स्नेह और अस्थिरता मे शाति जी की भावना अधिक स्पृहणीय है—

है शयन कक्ष तक सीमित कब
मेरे आदर्शों की उड़ान,
मेरे पखो मे अतुल शक्ति
मेरे आगे भी आसमान !

कला की दृष्टि से शाति जी के गीतो में अब प्रौढता आ गई है। तत्सम शब्दो का प्रयोग बढता जा रहा है और शब्द-सौंदर्य की ओर ध्यान देना उन्होने प्रारभ कर दिया है। उर्दू के शब्दो का प्रयोग वे निस्सकोच भाव से करती है और कही-कही ब्रजभाषा के शब्दो के प्रति भी उन्होने अपनी ममता प्रकट की है। तुकें स्वाभाविक रूप से आई है और छद प्रवाहपूर्ण है। लाक्षणिकता और प्रतीक-प्रेम भी उनमे कम नही। जीवन के अनुभव से खिचे हुए सिद्धान्त-वाक्य यहाँ-वहाँ जगमगाते दिखाई देने लगे है।

'पच प्रदीप' की रचना करके हिंदी कवयित्रियो में शाति जी ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है और यह बात तो बिना किसी प्रकार के प्रतिवाद भय के कही जा सकती है कि 'बच्चन' जी के उपरात आने वाले गीतिकारो में सबसे अधिक ध्यान वे ही आकर्षित कर रही है।

—विश्वम्भर 'मानव'

राष्ट्रवाणी—रचयिता, श्री कपिलदेव त्रिपाठी 'अटिल', शास्त्री, साहित्यरत्न, बाकुडा, प्रकाशक, वही; प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी; पृष्ठ-सख्या ९६, मूल्य १।)

प्रस्तुत कविता-पुस्तक मे रचयिता की ४० स्फुट कविताए सग्रहीत है। प्राय सभी कविताए राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत है। कवि ने पुस्तक के आरभ मे अपने निवेदन में कहा भी है कि

१५ अगस्त, १९४७ के राष्ट्रीय महापर्व का जो प्रभाव व्यक्तिगत रूप से उसके ऊपर पडा, उसीकी छाया यह 'राष्ट्रवाणी' हुई। किन्तु उसने यह भी अनुभव किया कि देश को मिली हुई यह स्वतन्त्रता अभी अधूरी है, इसलिए वह गा उठा —

बढ़े चलो चले बढ चलो चले,
अब दूर नही हमको जाना।

कविताए किस उद्देश्य से लिखी गई है, इसके बारे मे कवि कहता है.—

जो देख रहा हो कालचक्र
औ' विषम समस्याए जगकी।
वह एक बार पढ ले, समझे
क्या आज समस्याए युग की।।

कुछ कविताए हमारे राष्ट्र के आधुनिक नेताओ एव कर्णधारो पर लिखी गई है, जैसे महामानव बापू, वीर जवाहर, अमर सुभाष, महर्षि मालवीय आदि। एक कविता राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त पर भी लिखी गई है। गाधीजी के महाप्रयाण पर लिखी गई 'हा राष्ट्रपिता!' शीर्षक कविता तो बडी हृदयस्पर्शी और सजीव-सी हो गई है। गाधी जी के कार्यों और बलिदानो का उसमे बडा सुदर चित्रण हुआ है। गाधी जी का सच्चा स्मारक क्या हो, इस विषय मे कवि की राय है —

बापू की आत्मा अमर रहे
यदि देश चाहता है ऐसा।
तो, वही करे, निर्देश किया
उस दिव्य महात्मा ने जैसा।।

कवि का ध्यान गावो की ओर भी गया है। 'ग्राम्या' शीर्षक कविता के अन्तर्गत कवि ने ग्राम वधू का क्या ही सुदर चित्र खीचा है! देखिये —

है भारतीय पहिराव और
है भारतीय उसकी भाषा।
है ग्राम-वधू में दिखलाती
भारत की सच्ची परिभाषा।।

यह निस्संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि कवि की भावनाएँ सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय है। राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरी के प्रति उसका उत्कट समर्थन इस धारणा का प्रमाण है। यद्यपि कवि की भाषा अभी पर्याप्त प्रौढ नही लगती, तथापि शैली भावमयी और सुबोध है। पाठको को उलझन में डाल देने की प्रवृत्ति से कवि कोसों दूर है। पुस्तक की छपाई-सफाई मध्यम और मुख पृष्ठ साधारण है। मूल्य भी थोडा अधिक जान पडता है, जो

आगामी सस्करण में ठीक कर दिया जा सकता है। आशा है, हिन्दी ससार अपने इस नवीन कवि का यथोचित स्वागत करेगा।

सीता परित्याग—लेखक, स्वर्गीय श्री रामस्वरूप टण्डन, प्रकाशक, एम-ज्ञान-मन्दिर, चारयारी बाग, लाटूश रोड, कानपुर; प्रथमावृत्ति, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी; पृष्ठ-सख्या २५१, मूल्य ४), छपाई-सफाई मध्यम कोटि की।

प्रस्तुत खण्ड काव्य को लेखक ने सन् १९१९ मे ही लिख कर समाप्त किया था, किन्तु यह लेखक के देहावसान के बाद सन् १९४४ मे उनके छोटे भाई श्री काशीनाथ जी टण्डन के हाथ लगा, जिन्होने इसे अब प्रकाशित किया। लेखक की अभी और भी बहुत सी पाण्डुलिपियाँ उनके छोटे भाई के पास है, जिनमे से कुछ को प्रकाशित करने का वे आयोजन भी कर रहे है। लेखक की अन्य रचनाएँ तो हमने नही देखी, पर प्रस्तुत पुस्तक के अवलोकन से ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि इसके लेखक एक प्रतिभासम्पन्न कवि अवश्य थे औ' अगर उनके जीवन काल मे उनके ये ग्रन्थ प्रकाश मे आते, तो इनसे वे अवश्य ही सम्मानित होते।

प्रस्तुत पुस्तक मे रामायण के अन्तर्गत सीता परित्याग अर्थात् सीता वनवास की कथा वर्णित है। सम्पूर्ण काव्य लगभग १२०० छन्दो एव १२ सर्गो मे समाप्त हुआ है। आरभ मे श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा श्री प्रणयेश शुक्ल की परिचयात्मक भूमिकाए भी है। कविता की भाषा सरल, प्रवाहयुक्त और विशुद्ध खडी बोली है। यद्यपि इसकी रचना प्राय पुरातन शैली पर ही हुई है, पर यत्र-तत्र आधुनिकता का पुट भी विद्यमान है। बीच-बीच में कथा के कुछ प्रसगो के चित्र भी दिये गये है, जो यद्यपि मध्यम कोटि के ही है, तथापि पाठको के सम्मुख उन प्रसगो को खडा कर देने की दृष्टि से अच्छे है। मूल्य भी कुछ अधिक जान पडता है, जो आगामी सस्करण मे सरलता से कम किया जा सकता है। आशा है, हिन्दी ससार इस पुस्तक का अच्छा स्वागत करेगा।

—गोविन्दराव मराठे

सुवेला (कविता-सग्रह)—कवि, श्री शम्भुनाथ 'शेष', पृष्ठ-सख्या ६४, डिमाई आकार, प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, मूल्य २)

'सुवेला' हिन्दी के तरुण कवि श्री शेषजी की कविताओ का दूसरा सग्रह है। इससे पूर्व 'उन्मीलिका' नाम से उनका एक सग्रह और प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत 'सुवेला' मे उनके २९ गीत और कविताएँ सग्रहीत है। इन कविताओ में हमे कवि के प्रणय-जीवन के आशा-निराशा से ओतप्रोत तथा उसकी सजल एव पवित्रतम अनुभूतियो के मर्म-स्पर्शी शब्द-चित्र स्थान-स्थान पर दिखाई पडते है, जो आकुल हृदय के धरातल पर वेदना की तूलिका से बड़ी सावधानी से चित्रित किये गये है।

आजकल हिन्दी काव्यक्षेत्र मे 'मानव' की ओर कवियो का ध्यान अधिक है। श्री शेष की कविताएँ भी इसी प्रवृत्ति की द्योतक हैं—

इस जग में भेजा था तूने
तो जग का जीवन भी देता!

यही हमें कवि की व्यग्रता की पराकाष्ठा भी परिलक्षित होती है—

जाने क्या होगा दुनिया का!
जिसे देखिये स्वार्थ-निरत है
जहाँ देखिये अर्थ-पिपासा!
शोषण के बीहड मरु-थल मे
मानस-मृग प्यासे का प्यासा!
क्यो गम करता है दुनिया का!

क्या इसी प्रकार के ससार मे मानव रहना स्वीकार करेगा? नही!

फिर कवि को उस मधुर जगतो की कल्पना करने का अधिकार तो है ही और शेष जी का कवि चाहता है—

धरती का कण-कण हो मधुमय,
अणु-अणु से अमृत रस बरसे! जीवन सरसे!

जीवन के विभिन्न पहलुओ को कवि शेषजी ने इन कविताओ मे अन्तर्मुख हो कर जो मादक, प्रेरक एव गहन अनुभूति प्रदान की है, वह सुन्दरम् की प्रतीक है। हिन्दी के वर्तमान अन्य कवियो की भाँति कल्पना के सर्वथा उन्मुक्त गगन मे स्वच्छन्द विहार करने वाले न हो कर कवि शेष अनुभूति के स्रष्टा बन कर जन-जीवन मे सृजनात्मक तत्त्व उत्पन्न करते है।

कवि की यह अभिलाषा ही हमे उसके जीवन-दर्शन का परिचय कराती है—

जगमग ज्योति जगे दीपाली,
मन का मिटे अँधेरा!
शाश्वत स्नेह दान पा भीजे
नव जीवन की बाती!
कर्म लोक के अन्तरिक्ष मे
समता हो लहराती!

गीतों की भाषा प्राञ्जल है। विचारो में प्रगति और पवित्रता है। भावो की लाक्षणिकता तथा विषयो के चुनाव मे युग धर्म एव आकर्षण है। प्रकृति और जीवन के मूल तत्त्व और अभेद सम्बन्ध को व्यक्त करना ही कवि का प्रधान लक्ष्य है। वस्तुत मानव जीवन का भी यही लक्ष्य है और इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए 'सुवेला' एक सुलभ साधन है।

—रूपनारायण

अयोध्या काण्ड—व्याख्याता, श्री ब्रजभूषण पाडेय, प्रकाशक, भारती प्रकाशन मन्दिर प्रयाग, पृष्ठ-संख्या १४३, मूल्य १॥।)

श्री रामचरितमानस भारतीय सस्कृति और हिन्दी साहित्य का मेरुदण्ड है। इस लोक-प्रिय ग्रथ की अगणित व्याख्याएं और दैनिक चर्चाए ही इसकी महत्ता का प्रतिपादन करती हैं। प्रस्तुत पुस्तक केवल अयोध्या काण्ड का व्याख्यान है, जिसके ६१ पृष्ठो मे सपादक द्वारा समीक्षा की गई है।

यह समीक्षा सम्पादक की गूढ निदिध्यासन प्रवृत्ति, परिचय चारुता और मानस के गम्भीर अध्ययन की द्योतक है। वस्तुत मानस एक प्रकार का जीवन साहित्य है, जिसमें लोक निर्माण, लोक भावना और लोकानुरजन का सिद्धान्त निहित है। इन्ही सिद्धान्तो के माध्यम से सम्पादक ने अयोध्या काण्ड का व्याख्यान कर के मानस प्रेमियो और समीक्षको के लिए एक प्रकार से अध्ययन सूत्र स्थिर किया है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक भावनाओ का विश्लेषण शालीन शैली, प्रबुद्ध भाषा और नवीन दृष्टिकोण से किया गया है। यद्यपि यह व्याख्यान विशेषत विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियो के हित की दृष्टि से ही किया गया है, तथापि सूक्ष्म विचारक आलोचक ने व्यापक दृष्टिकोण अपना कर मानस विचारको का पथ प्रशस्त बनाने मे सकोच नही किया।

जन जीवन और व्यावहारिक धरातल के हर पहलू पर तुलनात्मक विचार धारा की छाप स्पष्ट है। तुलसी की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और घरेलू नीति का दिग्दर्शन कराने मे नई गति, नई राह और नई विचार धारा को प्रश्रय दिया गया है। मानस में नारी जीवन की अभिव्यक्ति का सूक्ष्म दर्शन बडी योग्यता से कराया गया है, किन्तु यदि इसी प्रसग मे तुलसी की 'शूद्र गँवार ढोल पशु नारी' इस रहस्यमयी उक्ति का भी रहस्योद्घाटन कर दिया जाता तो एक बहुत बडे सामाजिक और नैतिक प्रश्न का हल हो जाता।

चौपाइयो के तात्पर्य और पाठ निरूपण मे चातुर्य और अध्ययन से काम लिया गया है।

पुस्तक सर्वथा ग्राह्य और उपादेय है। यह विद्यार्थी समाज के लिए एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास है।

गहरे पानी पैठ (कहानी सग्रह)—लेखक, श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृष्ठ-सख्या २२४, मूल्य २॥)

मानव स्वभाव के अन्तरतम मे प्रवेश कर लिखी गई इस सग्रह की कहानियाँ पाठक को जीवन के हर पहलू पर सोचने और कार्य क्षेत्र में फूक-फूक कर कदम रखने के लिए बाध्य करती है। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के उतार-चढाव, निखार और कलुष का दिग्दर्शन मनो-वैज्ञानिक ढग से कराया गया है।

लेखक की भाषा शैली मे जहाँ कोमलता, सरलता और साधुता है वही एक अद्भुत तडप और अन्तर्मुखी क्रान्ति भी है। कहानियो मे ज्ञान और शान का सरक्षण है। जीवन की वह छोटी-मोटी घटनाए जिन्हे हम प्राय उपेक्षित समझते है इन कहानियो के द्वारा हमें सजग और सचेत बनाती हुई, नई योजना, नई गति और नई राह की ओर बरबस खीचती है।

कला और जीवन दोनो के अस्तित्व और उपयोग को सामने रख कर इस जीवन साहित्य का निर्माण किया गया है।

—देवदत्त शास्त्री

पाषाण-नगरी—लेखक, श्री शिवसहाय चतुर्वेदी, प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-सख्या २०३, मूल्य साढे तीन रुपया।

प्रस्तुत पुस्तक मे बुदेलखड जनपद की सत्रह कहानियो का सग्रह श्री शिवसहाय चतुर्वेदी ने किया है। आज यह रहस्य किसी से छिपा नही है कि विश्व के कहानी साहित्य मे भारतीय कहानियो का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत मे अग्रेजो के आने के पश्चात् जहाँ ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रो मे नवीन अनुसन्धानात्मक कार्य हुये वहाँ लोक साहित्य की ओर भी विद्वानो का ध्यान आकर्षित हुआ। लोक साहित्य का अध्ययन मनुष्य की प्राचीनतम प्रागैतिहासिक सभ्यता का पता लगाने या भाषा विज्ञान सम्बन्धी कार्य आगे बढाने की दृष्टि से विशेष रूप से किया जाता रहा है। पाषाण-नगरी की कहानियाँ प्रथम दृष्टि से ही अधिक महत्व की है। सग्रहकर्ता ने बुदेलखडी भाषा का उपयोग किया होता तो उससे निश्चित रूप से इस पुस्तक का मूल्य और अधिक बढ जाता। इस प्रकार की कहानियो का प्रथम सग्रह 'ब्रज की लोक कहानियाँ' नाम से श्री सत्येन्द्र, एम० ए० ने किया था। 'जैसी सुनी वैसी टीपी' सिद्धान्त के अनुसार यह सग्रह इस क्षेत्र मे कार्य करने वालो के लिए आदर्श उपस्थित करता है। श्री चतुर्वेदी जी ने कहानी सग्रह मे रुचि से काम लिया है, इसमे सन्देह नही। तुलनात्मक अध्ययन करने वाले जिज्ञासुओ के लिए ये कहानियाँ बहुत काम की होगी। प्रत्येक कहानी के आरम्भ मे श्री रामचन्द्र तिवारी की सक्षिप्त काव्यात्मक भूमिका है और श्री मिलर ने कहानियो को सचित्र बनाया है। इन दोनो उपादानो से पाठक को कहानी पढने मे सहायता मिलती है। पुस्तक के आरभ मे भारतीय सस्कृति के प्रसिद्ध स्वाध्यायी श्री वासुदेव शरण अग्रवाल की ऐतिहासिक और गवेषणात्मक भूमिका ने लोक कहानियो के महत्व की ओर ध्यान आकर्षित कर के इस सग्रह का मूल्य द्विगुणित कर दिया है। इस प्रकार की पुस्तक हिन्दी में लिखने के कारण श्री चतुर्वेदीजी बधाई के पात्र है।

—कृष्णाचार्य

शिक्षणप्रविधि—लेखक, श्री विश्वनाथ सहाय माथुर, एम० ए० (लदन), पी० ई० एस० और सुश्री शची माथुर, बी० ए०, बी० टी०, प्रकाशक, राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, दिल्ली, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या ७९, मूल्य १॥)

पुस्तक के लेखक श्री विश्वनाथ सहाय माथुर और सुश्री शची माथुर ने सैद्धान्तिक अध्ययन के सूक्ष्म तन्तुओं तक पहुँचने का अच्छा परिश्रम किया है। सौभाग्य की बात है कि शिक्षा के इस अंग की पूर्ति भी अधिक संख्या में होने का प्रयास आरम्भ हो गया है। लेखको ने जिस भाषा शैली को अपनाया है वह अत्यन्त सरल है। इस विषय के विद्यार्थियो के लिए चाहे यह पुस्तक अधिक उपयोगी न हो परन्तु जिन अध्यापको को ट्रेनिंग लेने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ हो वे इस सूक्ष्म पुस्तिका को एक बार पढ लेने से साधारण त्रुटियो से मुक्त हो सकते है। विज्ञान के इस युग में पूर्व शिक्षा प्रणाली से हम उतना अधिक ग्रहण नही कर सकते जितना कि नव निर्मित प्रणालियो द्वारा। पुस्तक में दिये हुए विषय को देखते हुए मूल्य भी अधिक प्रतीत नही होता। भविष्य में लेखको से इसी विषय की अन्य ठोस पुस्तको की अभिलाषा है—जिससे आंग्ल भाषा की पुस्तको की उपादेयता ही न रह जाय। लेखकों का भविष्य उज्ज्वल है।

—**श्रीगोपाल वाजपेयी**

समाज और जीवन—सम्पादक श्री जमनालाल जैन, साहित्यरत्न, प्रकाशक, भारत जैन महामण्डल, वर्धा, प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या ११४; मूल्य १)

इस पुस्तक मे ऐसे १३ लेखो का सग्रह है, जिनमें जीवन और समाज की हमारे सम्मुख आने वाली समस्याओ पर विशद प्रकाश डाला गया है। इसके लेखको मे विशेषतया वे ही है जिनका इन समस्याओ के चिन्तन से गहरा सम्बन्ध रहा है, जैसे आचार्य विनोबा भावे, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, महात्मा भगवानदीनजी आदि। आरम्भ मे नागपुर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डाक्टर हीरालालजी जैन की भूमिका भी है। वैसे तो इस सग्रह के प्राय सभी लेखो मे भारतीय जीवन और समाज की ही झलक मिलती है, किन्तु अधिकतर लेख श्रमण सस्कृति से ही सम्बन्धित है। जीवन को सुखमय और समाज को उन्नत बनाने की दिशा मे इस पुस्तक से बडा काम लिया जा सकता है। ऐसी जितनी पुस्तके निकले, थोडी है। लगभग सवा सौ पृष्ठो की इस सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया ही रखा जाना प्रकाशक के इस कथन को भी पुष्ट करता है कि वे प्रकाशन व्यापार की दृष्टि से नही, अपितु विचार-जागृति की दृष्टि से कर रहे है। यह उपक्रम वास्तव मे प्रशसनीय है। पुस्तक की छपाई,सफाई और गेट अप मध्यम कोटि के है। आशा है, हिन्दी ससार इसका समुचित आदर करेगा।

प्यारे राजा बेटा (दूसरा भाग)—लेखक, श्री रिषभदास रांका, सम्पादक, श्री जमनालाल जैन, साहित्यरत्न, प्रकाशक, भारत जैन महामडल, वर्धा, प्रथम सस्करण; आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या ९६, मूल्य ॥=)

प्रस्तुत पुस्तक में सम्पादक ने लेखक की उन ११ कहानियो का सग्रह किया है, जो उन्होने जेल से अपने पुत्र को लिख भेजी थी या उसे घर पर सुनाई थी। वे सभी कहानियाँ

महापुरुषो के जीवन-चरित्रो पर आधारित है, जैसे भगवान् श्रीकृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर, गुरु नानक, अब्राहम लिंकन, महात्मा टाल्स्टाय आदि। चूंकि इन कहानियो को पिता ने पुत्र के नाम लिखा है, अत लेखन-शैली स्वाभाविक रूप से पत्रो की हो गई है। बालको के ज्ञान-वर्धन और चरित्र-गठन की दृष्टि से ये कहानियाँ बडी अच्छी है, यो इनमे कहानियो का स्वाभाविक गुण मनोरजन तो भरपूर है ही। बालको के लिए ऐसा सुरुचिपूर्ण साहित्य अधिक-से-अधिक मात्रा मे तैयार होना चाहिए। कहानियो की भाषा थोडी क्लिष्ट हो गई है, जिसका परिष्कार आगामी सस्करण मे हो जाना चाहिए। पुस्तक की छपाई-सफाई तो मध्यम कोटि की है, पर मुख पृष्ठ बच्चो की दृष्टि से आकर्षक है। आशा है, हिन्दी बाल-जगत् इस पुस्तक को खूब अपनायेगा।

—गंगाधर दुबे

ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण—अनुवादक, पडित गगाप्रसाद उपाध्याय, एम०ए०, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, सजिल्द, पृष्ठ-सख्या ५७३, मूल्य ५)

वेद हमारी सभ्यता एव सस्कृति के आधार है। प्राचीन काल मे हमारे पूर्वज वेदो को केवल कण्ठस्थ ही नही करते थे, प्रत्युत उनका अर्थ भी भली भाँति समझते थे और तदनुसार आचरण करते थे। धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति लोप होती गई और वेदो को केवल कठस्थ करने की प्रवृत्ति जोर पकडती गई। फलत' हम उनके अर्थ-ज्ञान से वचित हो गये। आज भी देश मे ऐसे पण्डितो की कमी नही है, जो वेदो के सहिता, ब्राह्मण आदि ग्रन्थो को अथ से इति तक बिना एक भी अशुद्धि के कठस्थ सुना देगे, पर अगर उनसे किसी ऋचा का अर्थ पूछा जाय, तो वे न बता सकेगे। इस दयनीय स्थिति का अन्त जितनी जल्दी हो, उतना ही अच्छा है। इसके लिए आवश्यकता है कि वेद ग्रन्थो का अधिकारी विद्वानो द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी मे अनुवाद हो और उन्हे प्रचार एव प्रसार के लिए जनता के सम्मुख रखा जाय। वेदपाठी पण्डितो का भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे केवल वेदो को कठस्थ ही न करे, प्रत्युत उनका अर्थ भली भाँति समझे और तदनुसार आचरण करने का भी प्रयत्न करे।

हर्ष का विषय है कि प्रस्तुत आलोच्य पुस्तक इसी दिशा की ओर एक चरण है। इसमे ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ का हिन्दी मे अनुवाद किया गया है। कुछ लोगो का ख्याल है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेदो की व्याख्या है, पर विद्वान् अनुवादक ने अपने गम्भीर अध्ययन से इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है और बताया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वास्तव मे यज्ञ सम्बन्धी व्याख्या है। इस ऐतरेय ब्राह्मण मे ४० अध्याय है और पाँच-पाँच अध्यायो को एक-एक पचिका मे बाटा गया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ आठ पचिकाओ मे समाप्त होता है। अनुवादक महोदय वेद-साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् है, अतएव वे इस ग्रन्थ को सरल और सुग्राह्य शैली में जनता के समक्ष रखने मे पूर्णत. सफल हुये है।

पुस्तक की छपाई-सफाई आदि मध्यम कोटि की है। पर इसका वास्तविक सौन्दर्य तो इसके बाह्य में न हो कर इसके अन्तर मे है, अत विश्वास है कि हिन्दी ससार इस पुस्तक का अत्यन्त आदर करेगा।

धर्म और संस्कृति—सकलनकर्ता, श्री जमनालाल जैन, साहित्यरत्न, प्रकाशक, भारत जैन महामण्डल, वर्धा, प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या १४३; मूल्य १।)

वर्धा का भारत जैन महामण्डल इधर विचार-जागृति सबधी साहित्य के प्रकाशन में सलग्न है। हमारे पतन का एक कारण यह भी है कि हम अपने विचारो को भूले बैठे है, जो सर्वथा मौलिक ही नही, दूसरो के लिए अनुकरणीय भी है। ऐसी स्थिति मे ऐसे साहित्य का प्रकाशन अत्यन्त सामयिक और उपादेय है। प्रस्तुत पुस्तक भी मण्डल ने इसी दृष्टिकोण से प्रकाशित की है। इसमे १३ ऐसे लेख सग्रहीत है, जिनमे धर्म और सस्कृति सम्बन्धी समस्याओ की विशद चर्चा है। इनके सम्बन्ध मे जो उलझने हमारे मस्तिष्क में व्याप्त रहती है, उनका ऊहापोह इन लेखो मे किया गया है। लेखको में अधिकाश वे ही है, जो धर्म और सस्कृति सबधी समस्याओ के चिन्तन मे अधिकार रखत है,जैसे आचार्य विनोबा भावे, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, किशोरलाल मशरूवाला, जैनेन्द्रकुमार, महात्मा भगवानदीन, रिषभदास राका आदि। वैसे तो सभी लेख पठनीय है, पर भदन्त आनन्द कौसल्यायन का 'मै भी सूत कातता हूँ' शीर्षक लेख, जो अन्तिम है, हमे बहुत अच्छा लगा। इसकी विशेषता यह है कि यह बडे मनोरजक ढग से लिखा गया है और इसमे गाधीवाद का जीता-जागता चित्रण है।

भारत जैन महामण्डल का दावा है कि वह एक असाम्प्रदायिक सस्था है और सब धर्मों के प्रति समन्वय-साधना उसका ध्येय है। ऐसी स्थिति मे धार्मिक और सास्कृतिक साहित्य के प्रकाशन मे उसका श्रमण परम्परा के प्रति विशेष आस्था रखना न्यायोचित नही कहा जा सकता। स्वाभाविकता की दुहाई दे कर उसका अपनी घोषित असम्प्रदाय-परायणता से च्युत होना ठीक नही कहा जा सकता। आशा है, आगामी प्रकाशनो मे मण्डल इस ओर समुचित ध्यान देगा। पुस्तक की छपाई-सफाई बहुत सुन्दर है पर मुख पृष्ठ मध्यम कोटि का है। फिर भी पुस्तक बडे काम की है और हिन्दी ससार को इसे समुचित ढग से अवश्य अपनाना चाहिए।

भारत की अध्यात्ममूलक संस्कृति—लेखक, विद्याभास्कर श्री रामावतार शास्त्री, वेदान्ततीर्थ, मीमासारत्न; प्रकाशक, बुद्धि सेवाश्रम, रतनगढ, बिजनौर, प्रथम सस्करण; आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या २९१; मूल्य ३)

भारतीय सस्कृति विश्व में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस सस्कृति का आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक आधार तो है ही, इसका आध्यात्मिक आधार मुख्य है। यह कहना अनुचित न होगा कि विश्व की ऐसी कोई सस्कृति नही, जिसका आधार आध्यात्मिक भी हो। प्रस्तुत पुस्तक

में भारत की इसी अध्यात्म-मूलक संस्कृति पर विशद प्रकाश डाला गया है। हमारी दिनचर्या क्या और कैसी हो, हमारा स्वभाव अच्छा कैसे हो, सुखी कौन है, मूल क्या है, प्रसन्न कैसे रहें, कैसे जियें, स्वजनो और पडोसियो से कैसे बरतें आदि इस पुस्तक के प्रमुख प्रकरण हैं। कुल प्रकरण २३ हैं। यदि हम इस पुस्तक मे बतलाई बातो पर चले, तो न केवल हमारा ही जीवन आदर्श और सुखमय बनेगा, वरन् विश्व के लिए भी हम अनुकरणीय सिद्ध होगें। पुस्तक की छपाई-सफाई मध्यम कोटि की और मुख पृष्ठ साधारण है। आशा है, हिन्दी ससार इसका बहुत आदर करेगा।

भारतीय विचारधारा—लेखक, श्री मधुकर; प्रकाशक, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, सजिल्द, पृष्ठ-सख्या १५२, मूल्य २)

भारत दार्शनिक और आध्यात्मिक तत्वो का आगार और गुरु रहा है। इन तत्वो की अन्तिम थाह पाना बडा ही कठिन है। ठीक ही है, जिस तत्व का प्रतिपादन स्वय भगवान् ने अपने मुख से किया हो, उसका पार भला पा भी कौन सकता है? सर्वसाधारण की तो बात ही छोडिये, बडे-बडे पण्डितो के भी इनके परिशीलन में छक्के छूट जाते है। ऐसी परिस्थिति मे यह आवश्यक है कि हिन्दी मे कुछ ऐसे ग्रन्थो का निर्माण हो, जिनमे इन तत्वो का सर्वसाधारण के ज्ञान के लिए सरलता से विवेचन किया गया हो। प्रसन्नता की बात है कि प्रस्तुत आलोच्य पुस्तक इसी दृष्टिकोण से लिखी गई है।

इस पुस्तक मे ११ अध्याय है, जिनमे लेखक ने वेद, उपनिषद्, गीता, जैन, बौद्ध, न्याय-वैशेषिक, साख्य-योग, वेदान्त आदि ग्रन्थो के आधार पर सम्पूर्ण भारतीय विचारधारा को ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टिकोण से समुचित रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसकी विशेषता यह है कि इसकी रचना लेखक ने इस प्रकार की है कि जिससे उन भ्रान्तियो के निवारण में बडी सहायता मिलती है, जो अज्ञानतावश सर्वसाधारण ही मे नही, विद्वानो तक मे व्याप्त है। ऐसी भ्रांतियाँ हमे कहाँ से कहाँ ले जा सकती है, इसलिए इनके निवारण का उपाय बडा स्तुत्य है। लेखक का कथन है कि सरलता की रक्षा के लिए उन्होंने इस पुस्तक मे भारतीय विचारधारा का अन्य देशीय विचारधाराओ से तुलनात्मक अध्ययन, उसका व्यावहारिक पक्ष और तिथि-निर्णय आदि ऐतिहासिक रुचि की बातो को छोड कर केवल उसके प्रमुख दार्शनिक पक्षो का ही निरूपण किया है। हमारा ख्याल है, ऐसा कर के लेखक ने इस पुस्तक की उपादेयता कम कर दी है। परित्यक्त विषयो को समाविष्ट कर के भी पुस्तक की सरलता का निर्वाह भली भाँति किया जा सकता था। विषय यदि सर्वांगपूर्ण हो, तो ही उससे पूरा-पूरा लाभ पहुँच सकता है। फिर भी पुस्तक बडे काम की है, इसमें तो दुमत हो ही नही सकता। पुस्तक की छपाई-सफाई भी उच्च कोटि की है, पर गेट अप मध्यम कोटि का। आशा है, हिन्दी ससार इसका समुचित आदर करेगा।

आत्म-विकास—लेखक, श्री आनन्दकुमार; प्रकाशक, राजपाल ऐण्ड सन्स, नयी सडक, दिल्ली; द्वितीय सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-संख्या ४०४, मूल्य ५), छपाई-सफाई मध्यम कोटि की।

श्री आनन्दकुमारजी ने इस ग्रन्थ की रचना की है। उनका दावा है कि उन्होंने इस मौलिक ग्रन्थ को सैकडो ग्रन्थो के शास्त्रीय अध्ययन के आधार पर वैज्ञानिक बुद्धि एव आधुनिक दृष्टिकोण से लिखा है। पुस्तक मे क्या-क्या है, यह उन्ही के शब्दो मे सुन लीजिये—" इस ग्रन्थ मे मनोविज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, आकृति-विज्ञान, व्यवहार-विज्ञान और अर्थ-विज्ञान आदि मानव-विज्ञान-सम्बन्धी विषयो की अधिक-से-अधिक उपयोगी, प्रामाणिक एव सारगर्भित सामग्री कम-से-कम शब्दो मे और तर्क-सम्मत सरल भाषा मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। पाठको को इसमे वे सभी बाते मिलेंगी जिनका जानना एक सामाजिक प्राणी के लिए आवश्यक है। एक प्रकार से यह जीवन विषयक एक छोटा सा विश्व-कोष है। . "

आत्म-विकास करने का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को है, किबहुना यह उसका कर्तव्य ही है। बिना आत्म-विकास किये वह ससार मे वास्तविक जीवन का उपभोग नही कर सकता, यो पशु की भाँति भले ही पडा रहे। अत यह आवश्यक है कि इसका ज्ञान उसको उसकी प्रारम्भिक अवस्था मे ही मिले। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक बडी उपयोगी जान पडती है। नवयुवक इसे पढ कर निश्चय ही सदाचार, नैतिकता और आत्मोन्नति की प्राप्ति का साधन उपलब्ध कर सकते हैं। पुस्तक मे १० अध्याय है, जिनमे से ९ अध्यायो मे उपर्युक्त विषयो का मार्मिक एव गम्भीर विवेचन किया गया है। आठवे अध्याय मे एक प्रश्नोत्तरी दी गई है, जो बडे काम की है। अन्तिम अध्याय 'चयनिका' मे गीता, पुराण, उपनिषद् आदि महान् ग्रन्थो एव विभिन्न श्रेष्ठ पुरुषो की एतद्विषयक बहुमूल्य उक्तियाँ सग्रहीत की गई है। पुस्तक मे कही-कही थोडी क्लिष्टता आ गई है, किन्तु विषय की गम्भीरता एव गुरुता को देखते हुए वह क्षम्य ही कही जा सकती है। आशा है, ससार के प्रथम सोपान पर आरूढ तरुण वर्ग इस पुस्तक से पूरा-पूरा लाभ उठायेगा और स्कूल-कालेजो के पुस्तकालय तो इसका अवश्य उपयोग करेंगे।

—**दयाशंकर दुबे**

प्रेमभाव माला—लेखक तथा प्रकाशक, श्री शिवचरणलाल सर्राफ 'दास', उपनाम 'केवट', बाजार साहूकारा, बरेली, प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-सख्या ४८, जिल्द साधारण, मूल्य चार आना।

प्रस्तुत पुस्तक में आध्यात्मिक उन्नति के लिए दैवी शक्तियो की साधना कितनी आवश्यक है—इसी का प्रतिपादन उत्तम भावना प्रधान भजनो के द्वारा किया गया है। लेखक ने लीला पुरुषोत्तम के सम्बन्ध मे अभी तक भजन के रूप मे अपने हृदय के जितने उद्गारो को

प्रकट किया है उन्ही का यह ७-८ वां पुष्प है। आशा की जाती है कि भगवद्भजन-प्रेमियो के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

—बेनीप्रसाद वाजपेयी 'मंजुल'

जैन धातु-प्रतिमा लेख—सग्रहकर्ता और सपादक, श्री मुनिकान्त सागर, प्रकाशक, श्री जिनदत्त सूरि, ज्ञान भडार, सूरत, पृष्ठ-सख्या १००

प्रस्तर और धातु प्रतिमाओ पर उत्कीर्ण अभिलेखो से भारतीय इतिहास का बहुत कुछ उद्धार हुआ है। इस पुस्तक मे ३६९ लेखो का सग्रह है। पाद टिप्पणियो में मूर्ति-स्थान का निर्देश है। सग्रहकर्ता ने गुप्तकाल से लेकर ११ वी शती तक के लेखो को एक भाग में और १२वी शती से लेकर बाद के समस्त लेखो को दूसरे भाग मे वर्गीकृत किया है। प्रथम भाग के लेखो मे श्रावक का नाम, सवत् और आचार्य के नाम का ही उल्लेख रहता था, किन्तु बाद मे सवत्, आचार्य परपरा, गृहस्थ का नाम, नगर, नक्षत्र, वार आदि का उल्लेख भी होने लगा।

सग्रहकर्त्ता महोदय ने स्वय ही भूमिका मे इन लेखो के महत्व के सम्बन्ध मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि "धातु प्रतिमा के लेखो का महत्व सार्वजनिक इतिहास की दृष्टि से भले ही अधिक न हो, पर श्रमण परपरा और समाज विषयक इतिहास की अपेक्षा मे अवश्य है। जातियो और गच्छो की तथा भारतीय भौगोलिक इतिहास की सामग्री इन्ही से प्राप्त होती है।"

गत पचास वर्षो से भारत के प्राचीन इतिहास के उद्धार का कार्य पुरातत्व विभाग की सहायता से होता रहा है। फिर भी प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण इतिहास का बहुत बड़ा भाग आज भी लुप्त है। इस दृष्टि से भारत के इतिहास सम्बन्धी खोज का छोटे से छोटा प्रयत्न भी सामान्य दृष्टि से नही देखा जा सकता। भारत को विदेशी और कई देशी विद्वान भी ब्राह्मणो का देश कहते रहे है। किन्तु इस सम्बन्ध में श्री कान्तजी सागर के ये शब्द ध्यान देने योग्य है—'धातु प्रतिमाओ के लेखो से इतना तो कहा ही जा सकता है कि जैन मुनियो मे इतिहास के प्रति शुरू मे ही रुचि रही है। ब्राह्मणो की अपेक्षा जैन मुनियो ने इस दिशा मे अधिक कार्य किया है।'

पुस्तक मे छपाई सम्बन्धी असावधानी बहुत खटकती है। इतिहास के विद्यार्थियो को अनुशीलन कार्य करते समय इस पुस्तक के पृष्ठ अवश्य पलट लेने चाहिए क्योकि जैन सस्कृति को समझने मे इन अभिलेखो मे बहुत कुछ सहायता मिलती है।

—कृष्णाचार्य

भारतीय अर्थशास्त्र की रूपरेखा (प्रथम भाग)—लेखक, श्री शकर सहाय सक्सेना, एम० ए०, एम० काम० तथा श्री प्रेमनारायण माथुर, एम० ए०, बी० काम०, प्रकाशक, श्रीराम मेहरा ऐंड कम्पनी, आगरा, प्रथम सस्करण, आकार डिमाई, पृष्ठ-सख्या ५३२; मूल्य ८॥)

विद्वान् लेखकों ने इस ग्रन्थ को प्रमुख रूप से विश्वविद्यालयो की परीक्षाओं के लिए भारतीय अर्थशास्त्र पर हिन्दी मे प्रामाणिक पुस्तक प्रस्तुत करने की दृष्टि से लिखा है। हिन्दी मे पाठ्य पुस्तको की अब तक वास्तव में बहुत कमी रही है और लेखको का यह व्यक्तिगत अनुभव रहा है कि जब भी किसी विश्वविद्यालय मे राष्ट्रभाषा हिन्दी को माध्यम बनाने का प्रश्न उठा तभी उसके विरोधी हिन्दी में पाठ्य पुस्तको के अभाव को ले कर उपस्थित हुये। यह बडी प्रसन्नता की बात है कि इस पुस्तक के लेखक गण पिछले कई वर्षों से इस अभाव की पूर्ति करने के उद्देश्य से हिन्दी मे अर्थशास्त्र-साहित्य के निर्माण का कार्य करते आ रहे है। प्रस्तुत ग्रन्थ उनके इसी प्रयास का एक बहुत सुन्दर प्रतिफल है।

प्रस्तुत पुस्तक मे १६ परिच्छेद है, जिनके अन्तर्गत भारतीय अर्थशास्त्र का सागोपाग निरूपण किया गया है। राजनैतिक स्वतत्रता की प्राप्ति और विभाजन के कारण हमारे देश के सामने जो नयी आर्थिक समस्याएँ खडी हो गई है, उनके निवारण का उपाय भी इस पुस्तक मे दर्शाया गया है, साथ ही केन्द्र और राज्य की सरकारो ने अपने हाथ मे जो नवीन आर्थिक योजनाए ले रखी है, उनका भी विस्तृत विवरण देने का लेखको ने प्रयत्न किया है। गावो की ओर भी लेखको का ध्यान गया है और उनकी समस्याओ पर भी उन्होने विशद प्रकाश डाला है। पुस्तक की सर्वोपरि विशेषता यह है कि इसे अद्यतन बनाने का प्रयत्न किया गया है। साराश मे इस पुस्तक के बारे मे लेखको का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि यह पुस्तक अर्थशास्त्र के विद्यार्थियो, अध्यापको तथा राजनीतिज्ञो के अतिरिक्त सर्वसाधारण के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। मूल्य कुछ अधिक जान पडता है, जो, आशा है, आगामी सस्करण मे ठीक कर दिया जायगा। इस ग्रथ का द्वितीय भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है, जिसके इसी की भाति उपादेय होने की आशा है। हिन्दी ससार और विशेष कर विश्वविद्यालयो से हमारा निवेदन है कि वे इनका आदर करे और इनसे समुचित लाभ उठावे।

आर्थिक कहानियाँ—लेखक, ठाकुर देशराज, भरतपुर, प्रकाशक, नवजीवन प्रकाशन लि०, सगरिया (बीकानेर), प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या ९८, मूल्य अमुद्रित।

यह बात तो निर्विवाद है कि विषय कैसा भी जटिल और रुक्ष क्यो न हो, उसे कहानियो के माध्यम से सरलता से समझाया जा सकता है। जिन गूढ आध्यात्मिक एव दार्शनिक तत्वो को हम यो नही समझ पाते, उन्हे पुराणादि की आख्यायिकाओ एव दृष्टान्तो से कितनी जल्दी समझ लेते है! किन्तु इस प्रकार के प्रयत्न अभी हिन्दी मे बहुत ही कम हुये है, जिनकी आज परम आवश्यकता है।

प्रसन्नता की बात है कि राजस्थान के प्रसिद्ध जनसेवक और साहित्यिक ठाकुर देश-राजजी ने प्रस्तुत पुस्तक लिख कर उपर्युक्त आवश्यकता की कुछ पूर्ति करने का स्तुत्य प्रयास

किया है। पुस्तक का विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है। इसमे लेखक की १९ कहानिया सग्रहीत हैं, जिनमें से प्रत्येक में अर्थशास्त्र के किसी-न-किसी अग को कुशलता और सरलता पूर्वक प्रतिपादित किया गया है। इन कहानियो को पढने से अर्थशास्त्र जैसे जटिल विषय का ज्ञान तो सहज में होता ही है, पाठक का मनोरजन भी खूब होता है। कुछ कहानियो के लिए लेखक ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी ली है। साराश मे पुस्तक सब के लिए उपादेय प्रतीत होती है, किन्तु इसकी छपाई-सफाई और गेट अप के बारे मे निराशा ही हाथ लगती है। आशा है, आगामी सस्करण मे इन अभावो की पूर्ति की जायगी।

—दयाशंकर दुबे

स्वतत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस—लेखक, श्री किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री, प्रकाशक राष्ट्रभाषा परिष्कार परिषद्, कनखल, पृष्ठ-सख्या ४९, मूल्य ।॥)

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय क्रान्ति के अजेय सेनानी नेता जी सुभाष चन्द्र बोस का राजनैतिक जीवन दर्शन है। पुस्तक-प्रारम्भ उस स्वर्ण दिवस से होता है जिस दिन आजाद हिन्द रेडियो नेताजी के स्वतत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति चुने जाने की घोषणा करता है और पुस्तक की समाप्ति वर्तमान इतिहास के उस निन्द्य अध्याय से होती है जिसमे स्वतत्र भारत अपने इस वास्तविक नेता, निर्माता और प्रेरक को भूल जाता है।

श्री वाजपेयी जी साहित्यिक व्यूह के एक अग्रणी योद्धा है। उनकी लेखनी से भारत के अप्रतिम राजनैतिक योद्धा नेताजी का यह जीवन दर्शन यथार्थवाद और सिद्धान्तवाद की वज्र भूमिका तैयार कर आज के राजनीतिक आदर्शवाद और गोमुख व्याघ्रता को चुनौती दे रहा है।

'सत्य' का सहारा लेकर असिधार पर चलने वाली वाजपेयी जी की कलम का यह कोई प्रथम प्रयास नही है। इससे पूर्व मि० ह्यूम की परम्परा और काग्रेस का सक्षिप्त इतिहास लिख कर इस यशोधन लेखक की लेखनी अपना चमत्कार प्रदर्शित कर चुकी है।

इस छोटी सी पुस्तक मे नेताजी के व्यापक राजनीतिक जीवन की छाया है। काग्रेस तथा उस की दो भुजाओ तथा नेताजी की नीति, नीयत की सफाई तथा दोनो के बीच मे पड जाने वाली दरार का चित्रण थोडे शब्दो मे तथ्यो के आधार पर बडी खूबी से किया गया है। इसके अतिरिक्त अभी हाल मे नेताजी के विवाह, उनकी पत्नी और पुत्री के सम्बन्ध मे जो विश्व-व्यापी जिज्ञासा उत्पन्न की गयी थी उसके सबध मे लेखक ने अनुमान और तर्क का सहारा लेते हुए इस घटना को राजनैतिक विवाह स्वीकार किया है। यद्यपि लेखक महोदय की ऐसी स्वीकारोक्ति से कोई भी व्यक्ति, जो नेताजी के व्यक्तिगत जीवन और सिद्धान्तो से परिचित होगा, सहमत नही होगा फिर भी विद्वत्तापूर्ण तर्क और अनुमान की भी सहसा उपेक्षा करने का साहस वह न करेगा।

पुस्तक में आद्योपान्त सत्य की उपासना और शिव की भावना है। यदि ऐसी ही शालीन शैली और प्रबुद्ध भाषा में इस पुस्तक का बृहत् सम्करण भी वाजपेयी जी नवीन राष्ट्र की नवीन पीढ़ी को भेंट करें तो साहित्य और राष्ट्र का स्थायी हित अवश्यम्भावी है।

—देवदत्त शास्त्री

महादेवभाई का पूर्व चरित—लेखक, नरहरि द्वा० परीख, अनुवादक, श्री रामनारायण चौधरी, प्रकाशक, नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद, प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या ९२, मूल्य ।।।=)

प्रस्तुत पुस्तक मे गाँधीजी के अनन्य एव सेवक देशभक्त स्वर्गीय श्री महादेव भाई के आरभ के २५ वर्षों का जीवन-वृत्तान्त वर्णित है, जिसके अतर्गत उनके जन्म और बाल्यकाल से लेकर पिताजी के देहान्त तक की चर्चा है। ये घटनाएँ सन् १८९२ से सन् १९१७ के बीच मे घटित हुई थी। श्री महादेव भाई का व्यक्तित्व कई पहलुओ वाला था। जीवन के अनेक क्षेत्रो मे उनकी गहरी दिलचस्पी थी। सर्वोपरि गाँधीवाद के वे सच्चे अनुयायी थे। नवजीवन प्रकाशन मन्दिर ने उनका यह जीवन चरित्र प्रकाशित कर स्तुत्य कार्य किया है। अनुवादक महोदय ने भी अपना कार्य भली भाँति निभाया है। भाषा चुस्त और शैली रोचक है। बीच-बीच मे आर्ट कागज पर उनके जीवन-सम्बन्धी कुछ मनोरम चित्र दे कर पुस्तक की शोभा और भी बढाई गई है। छपाई-सफाई नयनाभिराम है पर गेट अप मध्यम कोटि का है। आशा है, यह पुस्तक हिन्दी ससार द्वारा समादृत होगी।

जीवन-जौहरी अर्थात् श्री जमनालालजी बजाज—लेखक, श्री रिषभदास राका, सम्पादक, श्री जमनालाल जैन, साहित्यरत्न, प्रकाशक, भारत जैन महामण्डल, वर्धा, प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या १६७, मूल्य १।), सजिल्द १।।।)

यह पुस्तक स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज का जीवन-चरित्र प्रस्तुत करने के उद्देश्य से नही लिखी गई है, इसमे केवल उनके कुछ विशिष्ट गुणो की तत्व रूप से चर्चा की गई है। स्वर्गीय जमनालालजी अपने अन्य गुणो के साथ व्यापार मे भी निरतर सच्चाई बरतने की कोशिश करते थे। आजकल जब कि चारो ओर मिथ्या राक्षसी का बोलबाला है और व्यापार के क्षेत्र मे तो विशेषकर इसकी धाक है, यह जानना बहुत लाभदायी है कि जमनालालजी किस भाँति व्यापार मे सत्य का पालन करते थे। व्यापार-क्षेत्र मे प्रवेश करने वाली तरुण पीढी के लिए तो यह जानकारी वरदान सिद्ध हो सकती है। अतएव प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन अत्यन्त सामयिक और काम का प्रतीत होता है। इसमें अभीष्ट विषय पर १२ लेख सग्रहीत है। शैली पत्रों की है। बीच-बीच मे चित्र भी दिये गये है, किन्तु वे साधारण है। पुस्तक की छपाई-सफाई

[illegible] कोटि की और मुख पृष्ठ साधारण है। आशा है, व्यापारी वर्ग और तरुण समाज इससे समुचित लाभ उठायेगा।

—गोविन्दराव मराठे

आधे रास्ते—लेखक, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, अनुवादक, श्री पद्मसिह शर्मा 'कमलेश', प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-सख्या २२७; मूल्य ४॥), सजिल्द।

'आधे रास्ते' श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की आत्मकथा का प्रथम भाग है। उनका जन्म सन् १८८७ के दिसबर मास की ३० तारीख को हुआ था, और इस पुस्तक में उनके जीवन के सन् १९०६ तक के सस्मरण सग्रहीत है। अपनी इस बीस वर्ष की जीवन कथा को उन्होने तीन भागो मे विभक्त किया है।

पहला खण्ड है 'टीले के मुन्शी'। मुन्शीजी का जन्म भरौच के जिस मुहल्ले मे हुआ था वह 'मुन्शियो के टीले' के नाम से प्रसिद्ध है। मुन्शियो की वश विशिष्टता मे इस टीले का भी विशिष्ट स्थान ही हो गया था। बड़े ही रोचक ढग से इस विशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए श्री मुन्शीजी लिखते है "'विवाह करना तो टीले की कन्या से' का प्रयोग 'कार्यं साधयामि देह वा पातयामि' के अर्थ मे होता था। तीखे स्वभाव का व्यक्ति गर्व से कहता 'मैने भी टीले के कुएँ का पानी पिया है समझे!' और मित्र ढीले-ढाले आदमी से कहते—'तुझे तो टीले के पानी से नहलाना चाहिए।' यही नही, आज भी टीले से सबध रखने वाले कहते है 'मुझे मत छेडना, मुझमे टीले का पानी है, समझे!' और सामने वाला आदमी कहता है 'बाप रे बाप! तुझसे तो भगवान् बचाये, अब भी तुझमें से टीले का पानी नही गया!'

इस प्रकार इस भाग में टीले का, वहाँ के भृगु भास्करेश्वर के मदिर का तथा वहाँ रहने वाले मुन्शी परिवार का बडा ही सजीव चित्रण हुआ है। अपनी सातवी पीढी से लगा कर आज तक के पारिवारिक इतिहास मे मुन्शी की ऐतिहासिक प्रतिभा मुखरित हो उठी है। इस भाग मे श्री मुन्शी ने अपनी वशावली का इतिवृत्त ही नही दिया बल्कि अपने परिवार वालो के व्यक्तित्वो को सुन्दर रेखाचित्रो के रूप मे भी प्रस्तुत कर दिया है।

एक बात अवश्य है कि यदि मौलिक गुजराती पुस्तक की भाँति इस हिन्दी सस्करण मे भी वंशावली का चित्र दे दिया गया होता तो उससे पाठक को वशवृत्त समझने मे विशेष सहायता मिलती। आशा है, प्रकाशक अगले सस्करण मे इस बात पर ध्यान देगे।

पुस्तक का दूसरा खण्ड श्री मुन्शी के बाल्य जीवन पर आलोक डालता है। किसी भी व्यक्ति का बाल्यकाल ही उसके व्यक्तित्व के फूल को एक विशेष वर्ण, गध और रूपरेखा देता है। यहाँ भी हम पाते है कि बालक मुन्शी अपने माता-पिता की सुसस्कारमयी छाया तथा स्वस्थ वातावरण के भीतर पल कर बडा हुआ और सहज ही उसने अपने पिता की बुद्धि, व्यवस्था और शासन की प्रवृत्ति तथा पुस्तको के पठन-पाठन मे रुचि तथा माँ से उदारता, सहिष्णुता और

साहित्यिकता के सस्कार ग्रहण कर लिये और वही फिर पल्लवित और पुष्पित हो कर आज एक राजनीतिकऔर साहित्यिक के सुन्दर सामंजस्य के रूपमें दिखाई देते हैं। बडे ही सुन्दर रूप में श्री मुन्शी अपनी जीजी माँ के विषय में लिखते है—"माँ सदा कुछ न कुछ लिखा करती। उसने प्रेमानन्द के काव्यों को स्वय अपने हाथ से लिखा। नहाने के समय बोले जाने वाले 'रामस्तव राजस्तोत्र' और दूसरे अष्टक भी लिखे। याददाश्त, नुस्खे और हिसाब तो लिखती ही रहती थी। पेंसिलो से चित्र भी बनाती थी। उमग आने पर कविता भी लिखती थी। पिता जी अंग्रेजी कहते, और माँ उसे पेंसिल से और फिर स्याही से लिख डालती। लेखनी, फिर वह पेंसिल हो कलम हो या रंगीन पेंसिल हो, उसकी सहचरी थी। उसी सहचरी को—सदा की आश्वासन-दायिनी और प्रेरणादायिनी सहचरी को—वह मुझे दे गयी।"

इसी भाग मे श्री मुन्शी ने उस जमाने की नाटक मडलियो तथा उनके नाटको से उन पर पडे हुए प्रभाव का उल्लेख किया है। 'सीता स्वयवर' के परशुराम और 'प्रेमचन्द्रिका' की आठ वर्ष की नायिका 'प्रभा' उनके प्राणो मे समा गये और इन दोनो ने शक्तियो के रूप मे उनके जीवन को द्विमुखी विकास दिया।

पुस्तक का तीसरा खड श्री मुन्शी के बडौदा कालेज के जीवन से सबधित है। इसमें हमें उनके कुछ प्रोफेसरो के रेखाचित्र, उनके हास्टेल जीवन के सस्मरण तथा उनके पुस्तक तथा खेलो के अभ्यास का विवरण मिलता है। यहाँ उन्हे अरविद घोष का सम्पर्क मिलता है, कुछ बम पार्टी वालो का प्रभाव भी उन पर पडता है पर सशस्त्र क्रांति के सस्कार उनके मन पर अपने चिन्ह नही छोड पाते। यही उन्हे राष्ट्रीयता के सस्कार मिलते है। इसी खड में श्री मुन्शी ने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती प्रीतलक्ष्मी का भी उल्लेख किया है, और अपनी काल्पनिक प्राण सहचरी के अभाव मे उत्पन्न अपने प्राणों के सघर्ष की ओर भी सकेत किया है।

श्री मुन्शी की यह आत्मकथा केवल शुष्क जीवन वृत्त नही बल्कि सरसता, गाम्भीर्य, रोचकता और हास्य की सप्राण रेखाओ से युक्त एक सजीव उपन्यास की भाँति ही पाठक के हृदय को पकड लेने वाली है। ऐसे स्थल तो इस पुस्तव मे अनेक है जहाँ पाठक हलका सा मुस्करा देगा पर एक-दो स्थल ऐसे भी है जहाँ हँसते-हँसते आपके पेट में बल पडे बिना न रहेंगे, जैसे अफीमची मास्टर की पीनक, पचायत की डडेबाजी तथा श्रीखड प्रकरण।

इस पुस्तक में एक स्थल पर श्री मुन्शी ने स्वय अपने से प्रश्न किया है कि "सोफोक्लिज, शैली, रूसो, गेटे और गाँधी जी इन सभी जीवन चरित्र लेखकों ने इस 'गुह्यात् गुह्यतर' को क्यो जगत् को सौंप दिया?" पर सच बात तो यह है कि इन उपरोक्त लेखको की भाँति ही श्री मुन्शी ने भी इस पुस्तक द्वारा हमे अपने प्राणों का 'गुह्यात् गुह्यतर' सौंप दिया है।

—विश्वम्भरनाथ नागर

सम्पादकाचार्य श्री पंडित पद्मसिंह शर्मा (उनकी बीसवी निधन तिथि पर जीवनी, संस्मरण और कृतित्व सम्बन्धी पुस्तिका)—सम्पादक, श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', स्मृति दिवस समिति, दिल्ली द्वारा प्रस्तुत उपहार, पृष्ठ-सख्या ४०, आकार डिमाई, प्रकाशक, आत्मा राम ऐण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली।

साहित्य समाज का ऐसा दर्पण है जो इतिहास के फ्रेम में मढा होता है, किन्तु यदि फ्रेम के आकर्षण मे मुग्ध कला-पारखी-समाज मूल मुकुर के निर्माता कलाकार का विस्मरण या उसकी उपेक्षा करता है तो यह उसका वस्तुत अविवेक कहा जायगा। किसी अश मे यही बात हमारे द्विवेदीयुगीन समालोचक शिरोमणि और सस्मरण कला के आदि प्रवर्तक स्वर्गीय पण्डित पद्मसिह शर्मा के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है।

किन्तु कृत्रिम आवरणो से प्रच्छन्न सत्य प्रकट हो कर ही रहता है और यही हुआ। आजका उच्च कोटिका साहित्यिक समाज—जिसने स्वर्गीय शर्माजी के चरणो मे बैठ कर ज्ञानार्जन किया है—इस बात का मौन साक्षी है।

स्वर्गीय शर्माजी ने ५६ वर्ष की आयु मे हिन्दी साहित्य मे जो तुलनात्मक समालोचना शैली की परम्परा प्रचलित की, उसका ज्वलन्त प्रमाण उनकी "बिहारी सतसई" (सञ्जीवन भाष्य) हिन्दी समार मे समादृत है। वे काव्यालोचक थे। काव्य मे भी विशेषत शृगारमयी रचना की परख आपने की है। बिहारी को अनुरूप ही समालोचक मिले—यह बडे सौभाग्य की बात है।

स्वर्गीय शर्माजी की ज्ञान-गरिमा का साकेतिक विवरण ही प्रस्तुत पुस्तिका द्वारा हिन्दी ससार को मिल सका है, जिसमे उन के एक लेख के साथ छ अन्य विद्वानो के लेख सग्रहीत है। चाहिए तो यह था कि ऐसे अभिनव हिन्दी के निर्माता और साहित्य महारथी के जीवनकाल मे ही उनकी बहुमुखी प्रतिभा के दिग्दर्शन स्वरूप एक बृहत् अभिनन्दन ग्रथ भेट किया जाता, किन्तु फिर भी आज के साहित्यिक आपा-धापी के युग मे तरुण हिन्दी-सेवियो ने स्वय सम्पादक के शब्दो मे 'अभावे शालि चूर्ण वा' के रूप मे शर्माजी की दिवगत आत्मा के प्रति विनम्र अभिनन्दन प्रस्तुत किया—यही क्या कम महत्व की बात है!

अब आज के समालोचको को अपने महान् कर्तव्य के प्रति जागरूक रह कर काव्य साहित्य के प्रतिपाद्य विषयो के अनुसार भाषा और शैली की अवाछनीय गम्भीरता का परिमार्जन करना उचित होगा, जिसमे साहित्य मे सदा एक शैली न बनी रहे—वह प्राचीन साहित्य ग्रन्थो के अनुसार बदलती रहनी चाहिए।

कुछ भी हो, स्वर्गीय शर्माजी का समालोचक शिरोमणि का स्थान हिन्दी ससार मे अभी तक रिक्त है और द्विवेदी युगीन साहित्य का पन्ना-पन्ना उनकी विलक्षण प्रतिभा के प्रमाण

में हमारे सम्मुख प्रस्तुत है। स्मृति दिवस समिति, दिल्ली के अधिकारियो और पुस्तिका के सम्पादक श्री सुमनजी का यह सत्प्रयत्न एक अभाव की पूर्ति है।

—रूपनारायण

आदर्श आहार—लेखक, डाक्टर सतीशचन्द्र दास, प्रकाशक, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली (आरोग्य मन्दिर, गोरखपुर के लिए), प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या ८७, मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक का विषय इसके नाम से ही स्पष्ट है। इसके लेखक प्राकृतिक चिकित्सा के अनुभवी डाक्टर है और लगभग बारह वर्षों से इसी प्रणाली से अपने रोगियो को अच्छा कर रहे है। उनका विश्वास है कि रोगो को दूर करने में दवा का बहुत ही मामूली और गौण स्थान है, भोजन ही रोग पैदा करने तथा रोगनिवारण मे मुख्य है। लगभग सभी रोग, जो हमारे शरीर में पैदा होते है, भोजन-सुधार यानी पथ्य से अच्छे किये जा सकते है। इसी विश्वास से प्रेरित हो कर डाक्टर साहब ने सर्वसाधारण के लाभ के लिए यह पुस्तक लिखी है। इसमे छ अध्याय है, जिनमे स्वास्थ्य और भोजन सम्बन्धी विविध बातो पर प्रकाश डाला गया है और अन्त मे एक परिशिष्ट दे कर एनिमा लेने की विधि, कसरतो के चित्र तथा आहारो की पोषण शक्तिवाली सारिणिया दी गई है। अच्छा होता यदि पुस्तक के विषयो को थोडा और अधिक विस्तार से लिखा जाता। फिर भी पुस्तक उपयोगी तो है ही। इसकी छपाई-सफाई भी बहुत सुन्दर है, पर गेट अप साधारण है।

सर्दी-जुकाम-खांसी—लेखक, डाक्टर रैस्मस अल्सेकर, एम० डी०, प्रकाशक, आरोग्य-मदिर, गोरखपुर, द्वितीय सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या ७४, मूल्य ।।।)

यह पुस्तक प्राकृतिक चिकित्सा का महत्व बताती है और उसीके प्रचलन पर जोर देती है। यह इसी ख्याल से लिखी गई है कि आप सब रोगो की जड और उनके आसान इलाज जान जाय। मूल पुस्तक लेखक ने अपनी भाषा मे लिखी है, उसी का यह हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक दो भागो मे समाप्त हुई है। प्रथम भाग मे सर्दी का कारण, उसके लक्षण तथा उसका इलाज लिखा गया है और द्वितीय भाग में पुराने जुकाम और उसके इलाज पर प्रकाश डाला गया है। भोजन आदि की भी चर्चा की गई है। अन्त मे प्राकृतिक चिकित्सा से रोगमुक्त होने वाले कुछ सज्जनो की गवाहिया दे कर पुस्तक के उद्देश्य को बल प्रदान किया गया है। इसके लेखक डाक्टर अल्सेकर स्वय एक अच्छे और अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक है, अत इसमे वर्णित विषयो की सत्यता मे कुछ सन्देह ही नही रह जाता। पुस्तक की छपाई-सफाई आदि भी सुन्दर है और प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमियो के लिए तो यह बडे काम की है ही, सर्व साधारण भी इससे लाभ उठा सकते है।

—गोविन्दराव मराठे

रोगी परीक्षा—लेखक और प्रकाशक, डाक्टर शिवनाथ खन्ना, एम० बी०बी० एस०, डी० पी० एच०, थियासोफिकल सोसाइटी, कमच्छा, काशी, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी; पृष्ठ-सख्या ३२०, मूल्य ६)

भारत में अग्रेजो के आगमन के साथ उनकी चिकित्सा पद्धति एलोपैथी का भी प्रवेश हुआ और अंग्रेजी राज्य के साथ ही देश मे राजकीय चिकित्सा पद्धति के रूप मे उसका मजबूत पजा देश मे जमा रहा। उसका अधिकाश साहित्य अग्रेजी भाषा मे था। अब हिन्दी का प्रभाव बढने के कारण उसके जानकार और हिमायतियो को इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि उसका साहित्य हिन्दी मे ला कर प्रचलित किया जाय। इसके सिवाय इस समय देशमें देशी चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा के जितने कालेज खुले है उनमें भी आयुर्वेद या यूनानी के साथ ही एलोपैथी की जानकारी स्वतत्र या समन्वय के ढग पर कराने की आवश्यकता समझी जाने लगी है, क्योकि अभी भी देश मे सरकारी ढग पर उसका प्रचलन कम नही हुआ है। काशी विश्व-विद्यालय के आयुर्वेद कालेज मे भी एलोपैथी की जानकारी करायी जाती है। उसी के क्लिनिकल मेडिसिन के एक सहायक अध्यापक डाक्टर खन्नाजी ने रोगी परीक्षा के विषय मे यह पुस्तक लिखी है। पुस्तक मे आवश्यकतानुसार चित्र भी दिये गये है।

आयुर्वेद पद्धति से रोगी परीक्षा करने मे, दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न का अवलम्बन ले कर नाडी, मूत्र, मल, जिव्हा, शब्द, स्पर्श और नेत्र की स्थिति का विचार करना पड़ता है। रोग परीक्षा के लिए रोगोत्पत्ति का मूल कारण निदान, रोगोद्भव के प्रारम्भ काल मे अस्पष्ट लक्षण पूर्व रूप, स्पष्ट लक्षण रूप, किस आहार विहार से रोग बढता या घटता है, उस उपाय के आधार पर निश्चय पर पहुँचने का साधन और रोग किस प्रकार कहाँ से उत्पन्न हो कर कहाँ किस प्रकार के रूप प्रकट करता हुआ कितने प्रकार का हुआ, इस प्रकार की सम्प्राप्ति के आधार का अवलम्बन करना पडता है। कुछ भिन्नता के साथ ऐसे ही उपायो का अवलम्बन आधुनिक पद्धति वाले भी करते है किन्तु आयुर्वेद और एलोपैथी के मूलगत सिद्धान्तो मे जो अन्तर है उसके कारण परीक्षा के ढग में भेद हो जाता है। आयुर्वेद वात-पित्त-कफ के त्रिदोष सिद्धान्त को मान कर इनकी प्रकृतावस्था से स्वास्थ्य की और विकृतावस्था से रोग की कल्पना करता है। द्रव्यगत षड्रसो के कारण शरीरस्थ वात-पित्त-कफ की पूर्ति, वृद्धि, क्षय या विकृति हुआ करती है और उससे रोग सम्भव होते है। इन्हीं की परिस्थिति के कारण शारीरिक इन्द्रियो के कार्य कलाप मे और शारीरिक अन्तर्बाह्य आकृति मे परिवर्तन भी होते है और उनके आधार पर रोग निश्चय करने में सहायता मिलती है। एलोपैथी वाले विकृति तो मानते है और उसका विचार भी करते है किन्तु उस विकृति के कारण रूप त्रिदोष के प्रभाव को मानने या जानने का उनके पास साधन नही है। अतएव इस पुस्तक मे भी उसका अभाव है।

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में रोगी का इतिहास, दूसरे में भार, आकृति, त्वचा आदि की परीक्षा, तीसरे स्थान मे पचन संस्थान सम्बन्धी परिस्थिति—मुख, जिव्हा, उदर, दर्शन, स्पर्शन, अंगुलिताडन, श्रवण, आमाशय, यकृत आदि की परीक्षा, चौथे अध्याय में रक्त संस्थान–नाडी, हृदय आदि की परीक्षा, पाँचवें अध्याय मे शासन संस्थान सम्बन्धी परीक्षा और छठें अध्याय मे चेष्टावह और सावेदनिक नाडी सस्थान की स्थिति की परीक्षा है। शीर्षण्य नाड़ियों की परीक्षा एक विशिष्ट मात्र है। वात परीक्षा का भाग सातवां अध्याय अलग है। अन्त में एलोपैथी में व्यवहृत अगेजी शब्दो का हिन्दी अर्थ बताने वाला कोष है। पुस्तक अपने ढग की अच्छी और विवेचनात्मक विवरण युक्त है, अतएव रोगी परीक्षा करने मे चिकित्सको के लिए सहायक रूप से उपयोगी है। किसी भी पद्धति के चिकित्सक इससे लाभ उठा सकते है। हमारी समझ मे इस प्रकार के प्रयास करने वाले यदि भाषा की सुविधा तक ही अपने प्रयत्न को सीमित न रख सिद्धान्त मे भी समन्वय स्थापन का प्रयत्न करे तो उसका अधिक उपयोग होगा। ऐसा प्रयत्न अपने देशी विज्ञान सम्पत्ति का वर्धनोपाय हो सकेगा। जो हो, अपने वर्तमान स्वरूप मे भी पुस्तक सर्वथा सग्रह योग्य है। लेखक का मार्ग प्रदर्शन धन्यवाद के योग्य है।

आयुर्वेदीय यन्त्रशस्त्र परिचय—लेखक और प्रकाशक, आयुर्वेदाचार्य पण्डित सुरेन्द्र मोहन, बी० ए०, इन्द्र आयुर्वेद भवन, करोलबाग, दिल्ली, मूल्य १॥)

आजकल प्रत्यक्ष कर्माभ्यास की सुविधा के अभाव मे आयुर्वेदिक चिकित्सक प्राय शस्त्र कर्म सम्बन्धी चिकित्सा नही करते। इसलिए साधारणत लोगो की ऐसी भ्रान्त धारणा हो गयी है कि आयुर्वेद मे शस्त्रक्रिया या शल्यकर्म का विधान है ही नही। आशा है, इस पुस्तक से अगत यह धारणा दूर करने मे सहायता मिलेगी। आयुर्वेदिक ग्रन्थो मे शल्यकर्म के लिए उपयोगी जिन यन्त्र-शस्त्रो का उपयोग होता था उनका वर्णन सुश्रुत और वाग्भट के आधार पर आधुनिक पद्धति के साथ इसमे दिया गया है। इसके प्रथम अध्याय मे यन्त्रो का अर्थात् ब्लण्ट इनस्ट्रुमेंट्स का, दूसरे अध्याय मे शस्त्रो का अर्थात् शार्प इनस्ट्रुमेंट्स का एव तृतीय अध्याय मे सहायक यन्त्रो का अर्थात् मिसलेनियस इनस्ट्रुमेंट्स का वर्णन दिया गया है। वर्णन सचित्र होने के कारण यह समझने मे सुविधा होगी कि प्राचीन यन्त्रशस्त्रो का किस प्रकार आधुनिक एलोपैथी में उपयोग किया गया है। आधुनिक काल मे जो कुछ नये यन्त्र-शस्त्र शल्य चिकित्सा कार्य मे व्यवहृत होते हैं, उनका वर्णन देने के कारण पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गयी है। आयुर्वेद सीखने वाले विद्यार्थियो के लिए इसका अच्छा उपयोग होगा। डाक्टरी के विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकेंगे और समझ सकेंगे कि हम जो पढ़ते है उसका अधिकाश आधार भारतीय है। पुस्तक के साथ एक विस्तृत भूमिका की आवश्यकता थी जिसमे इस सम्बन्ध का विवेचन रहता। साथ ही यदि सिरामोक्षण, घटी, अलाबू, जलौका और क्षार प्रयोग

के सम्बन्ध मे भी लिख दिया गया होता तो अच्छा होता। इस पुस्तक का उपयोग आयुर्वेदिक परीक्षाओं के पाठ्यक्रम मे होना आवश्यक है।

—जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

सर्वोदय का सिद्धान्त—प्रकाशक, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद, प्रथम सस्करण, आकार डबल क्राउन सोलह पेजी, पृष्ठ-सख्या ७४, मूल्य ।।।)

विश्ववद्य गाधीजी ने जिस नवीन जीवन पद्धति का आविष्कार किया था, उसीका नाम 'सर्वोदय' है। वे चाहते थे कि प्रत्येक भारतीय, किबहुना विश्व का प्रत्येक मानव इस जीवन-पद्धति को अपनाये। उनकी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के निमित्त उनके निर्वाण के बाद वर्धा मे 'सर्वोदय समाज' की स्थापना की गई। प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन का यही उद्देश्य है कि जिज्ञासुओ को इस सर्वोदय समाज के सिद्धान्तो और कार्यक्रम के बारे मे परी जानकारी प्राप्त हो सके।

पुस्तक अपने इस उद्देश्य मे वास्तव मे सफल हुई है। इसमे सर्वोदय की पूरी जानकारी रखने वाले विभिन्न अधिकारी विद्वानो के २२ लेख सग्रहीत है, जिनमे से ६ लेख तो खुद गाधीजी के ही है। अन्त मे परिशिष्ट दे कर सर्वोदय समाज के नियम दिये गये है और सस्था के बारे मे कुछ स्पष्टीकरण भी किया गया है। पुस्तक की छपाई-सफाई सुदर है, पर मुख पृष्ठ मध्यम कोटि का है। आशा है, सर्वोदय के प्रेमी इसमे पूरा-पूरा लाभ उठायेगे।

आजकल (कला अंक)—सम्पादक, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रकाशक, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, इस अक की पृष्ठ-सख्या ६५, वार्षिक मूल्य ६), एक प्रति का ।।)

प्रस्तुत मासिक पत्र ने इस 'कला अक' नामक विशेषाक के द्वारा अपने जीवन के सातवे वर्ष मे पदार्पण किया है। जैसा इस विशेषाक का नाम है, अवलोकन करने के बाद वैसा इसका रूप हमने नही पाया। कला के नाम पर इसमे केवल भारतीय चित्र और मूर्तिकला का ही समावेश किया गया है। कला के अन्तर्गत और भी बहुत से विषय आते है। उनका भी समावेश इस अक मे होना चाहिये था। हा चित्र और मूर्तिकला के बारे मे जो सामग्री इसमे उपस्थित की गई है, वह अवश्य ठोस और जानकारी से पूर्ण है। प्राय सभी लेखो के लेखक इन विषयो में अधिकार रखने वाले है। बीच-बीच मे लेखो से सबधित उत्तम चित्र दे कर अक को अधिक नयनाभिराम बना दिया गया है और लेखो का महत्व भी बढ़ाया गया है। श्वेत आर्ट कागज पर छपाई बहुत सुन्दर हुई है और फिर सफाई का तो कहना ही क्या! मुखपृष्ठ भी पर्याप्त आकर्षक लगता है।

प्रसगवश हम यहा इस मासिक पत्र के गत फरवरी अक के बारे मे भी कुछ कहना चाहते है। यह अक भी हमारे सामने है। इस अक के पृष्ठ २६ पर श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, जो इस मासिक पत्र के सम्पादक है, का 'कोटा अधिवेशन के सस्मरण' शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी देश की प्रतिष्ठित सस्था के बारे में कई अनर्गल बातें लिखी गई हैं और उसके सभापति पर कीचड उछाला गया है। ऐसा मालूम होता है कि इस लेख के लेखक

महोदय किसी दल विशेष के शिकार हैं और इस कारण वे निष्पक्षता से कुछ कह नही सकते। ऐसी प्रवृत्ति एक पत्रकार को शोभा नहीं देती, विशेषकर उस पत्रकार को जो एक सरकारी पत्र का सम्पादक भी हो। 'आजकल' सरकारी पत्र है, अत उसमें व्यक्त किये गये विचारो की उत्तर-दायिनी सरकार भी समझी जा सकती है। ऐसी दशा मे इसमें उपर्युक्त प्रकार की सामग्री के प्रकाशन से सरकार की भी प्रतिष्ठा घट सकती है। आशा है, भविष्य मे ऐसी गलतियाँ न दुहराई जायगी।

नई धारा—प्रधान सम्पादक, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी; प्रकाशक, अशोक प्रेस, महेन्द्र, पटना; आकार डिमाई, इस अक की पृष्ठ-सख्या २४२, वार्षिक मूल्य १० J, एक प्रति का १ J, इस अक का १॥ J

इस मासिक पत्रिका का प्रस्तुत आलोच्य अक से द्वितीय वर्ष आरम्भ हुआ है। प्रस्तुत अक अप्रैल-मई १९५१ का सयुक्ताक है और विशेषाक के रूप मे निकाला गया है। गत वर्ष पटना में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के विशेषाधिवेशन के अवसर पर जब हमे यह मासिक पत्रिका पहले-पहल देखने को मिली थी, उसी समय हमने इसके भविष्य के बारे मे यह अनुमान लगाया था कि यह पत्रिका हिन्दी साहित्य की सतत सेवा करेगी और आज इसे अपने जीवन के द्वितीय वर्ष मे पदार्पण करते देख हमारा वह अनुमान सही प्रतीत होता है। इसके सम्पादक श्री बेनीपुरी जी हिन्दी ससार मे एक मँजे हुए पत्रकार और लेखक के रूप मे सर्वश्रुत है, अत. उनके सम्पादकत्व मे निकलने वाला यह मासिक पत्र कैसा होगा, इसका अनुमान सहज ही मे लगाया जा सकता है।

प्रस्तुत अक की सभी सामग्री बहुत ठोस और उपादेय है। हिन्दी के अधिकाश धुरन्धर साहित्यिको का सहयोग इसे प्राप्त हुआ है, जैसे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि निराला, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री राहुल साकृत्यायन आदि। इस प्रकार का सुयोग बहुत कम देखने मे आता है। श्रीमती महादेवी का सन्देश और श्री निराला का गीत तो इसमे उन्ही के हस्ताक्षरो मे छापा गया है। यह उपक्रम वास्तव मे बडा अच्छा है। वर्तमान और भविष्य दोनो के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगा। अंक के आरम्भ मे श्वेत आर्ट कागज पर इसके ४० सहयोगी लेखको के फोटोग्राफ भी दिये गये है। अच्छा होता यदि बीच मे रचनाओ से सम्बन्धित भी कुछ चित्र दिये जाते। उस अवस्था मे इसका कलेवर और भी निखर उठता। इस की छपाई-सफाई नयनाभिराम है, बीच-बीच मे रगीन छपाई भी है, पर इसका गेट अप सतोषप्रद नही है। आशा है, आगामी अक इन अभावो से भी मुक्त होगे।

परमार्थ (ब्रह्मचर्याङ्क)—सम्पादक, श्री 'मजुल', प्रकाशक, मुमुक्षु आश्रम, शाहजहाँपुर; आकार डबल क्राउन अठपेजी, इस अक की पृष्ठ-सख्या १३६, वार्षिक मू० ५≡ J, इस अकका २॥ J

प्रस्तुत मासिक पत्र के द्वितीय वर्ष के प्रथम और द्वितीय अको को संयुक्त कर यह 'ब्रह्मचर्यांक' प्रकाशित किया गया है। जनता में धार्मिक और नैतिक भावनाओ की वृद्धि करने में श्री दैवी सम्पद् महामडल का यह 'परमार्थ' बडा सहायक हो रहा है। अब इसने यह ब्रह्मचर्यांक निकाल कर बडा समयोपयोगी कार्य किया है। मनुष्य-जीवन की सारी सफलता वास्तव मे ब्रह्मचर्य पर ही निर्भर है। यह मानव-जीवन के साफल्य की पहली सीढी है। ब्रह्मचर्य के पालन से ही हम अपने जीवन मे बलवान, चरित्रवान और गुणवान बन सकते है। किन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि जिस भारत ने ब्रह्मचर्य का महत्व ससार मे प्रस्थापित किया, उसी भारत में आज इसका प्राय लोप हो गया है। अब देश के उद्धार के लिए इसकी पुनर्प्रतिष्ठा की नितात आवश्यकता है। इस काम मे प्रस्तुत अक बडा सहायक सिद्ध होगा, ऐसी हमे आशा है।

इस अक में अनेक साधु-महात्माओ एव विद्वानो के ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित लेख, कविताएँ आदि सग्रहीत है, जिनमें उस पर सर्वांगपूर्ण प्रकाश डाला गया है। ब्रह्मचर्य के पालन और रक्षा के निमित्त उचित आहार-विहार तथा वेशभूषा का भी विवेचन किया गया है। साराश मे इसमे इस तथ्य को सर्वथा सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है।' अक की छपाई-सफाई सुन्दर है। बीच-बीच मे श्वेत आर्ट कागज पर रगीन चित्र देकर इसकी सुन्दरता और भी बढाई गई है। मुख पृष्ठ भी आकर्षक लगता है। हा, मूल्य अवश्य कुछ अधिक जान पडता है। आशा है, इस अक का समुचित आदर होगा।

भक्त भारत (राष्ट्र निर्माण अंक)—स्थायी सम्पादक, श्री रामदास शास्त्री, साहित्यरत्न; इस अक के सपादक, श्री किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री, प्रकाशक, चार सप्रदाय आश्रम वृन्दावन (मथुरा), आकार डबल क्राउन अठ पेजी; इस अक की पृष्ठ-सख्या ११२, वार्षिक मूल्य ४), साधारण प्रति का ।), इस अक का २)

'भक्त भारत' मासिक पत्र ने प्रस्तुत विशेषाक द्वारा अपने जीवन के तृतीय वर्ष मे पदार्पण किया है। राष्ट्र-निर्माण का प्रश्न आज प्रमुख रूप से हम सब के सामने है, जिस पर समुचित ध्यान देना हमारा परम कर्तव्य है। यदि हम विश्व मे अपना वास्तविक अस्तित्व बनाये रखना चाहते है, तो हमे अपने राष्ट्र को सबल और समृद्ध बनाना ही होगा। इस समस्या को हल करने में प्रस्तुत 'राष्ट्र निर्माण अक' से बडी सहायता मिल सकती है। इसका सम्पादन बडी सुयोग्यता से हुआ है और इसमे उद्दिष्ट विषय पर अनेक विद्वानो के गम्भीर और मार्गदर्शक लेख संग्रहीत है, जिनके अन्तर्गत राष्ट्र निर्माण कार्य के प्राय सभी पहलुओ पर प्रकाश डाला गया है। अत मे एक परिशिष्टाक भी दिया गया है। अक की छपाई-सफाई अच्छी है, पर इसमे चित्रों का नितात अभाव बहुत खटकता है। केवल एक रगीन चित्र समर्थ रामदास और छत्रपति शिवाजी का मुखपृष्ठ पर दिया गया है, जो सुन्दर है और जिससे वह पृष्ठ आकर्षक हो गया है। पृष्ठ-सख्या और चित्राभाव को देखते हुए इस अक का मूल्य भी अधिक जान

पडता है। फिर भी अंक उपादेय है और हिन्दी ससार को इससे समुचित लाभ अवश्य उठाना चाहिए।

श्री शंकराचार्य उपदेश--सम्पादक, श्री ब्रह्मचारी महेश जी, प्रकाशक, श्री शंकराचार्य उपदेश कार्यालय, शान्तिनिकेतन, नवाबगज, कानपुर, इस अक की पृष्ठ-सख्या ४, वार्षिक मूल्य सामान्य ६), विशेष १५), एक प्रति का =)

यह साप्ताहिक पत्र हाल ही मे श्री शंकराचार्य, ज्योतिर्मठ के तत्वावधान में कानपुर से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत समालोच्य अक जगद्गुरु आदि शकराचार्य की २४२० वी जयन्ती के अवसर पर एक विशेषाक के रूप मे प्रकाशित किया गया है। इसमें मुख्य रूप से उनकी सक्षिप्त जीवनी और उपदेशो का समावेश किया गया है और उन्हे श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। इसके अतिरिक्त इसमे श्री शकराचार्य, ज्योतिर्मठ के शिविर के समाचार तथा साप्ताहिक राशिफल आदि भी समाविष्ट है। धार्मिक जागृति की दृष्टि से यह पत्र वडा उपयोगी सिद्ध हो सकता है। आशा है, धार्मिक जनता इसका खूब स्वागत करेगी।

—गोविन्दराव मराठे

विक्रम (विक्रम-कीर्ति-मन्दिर-स्मृति-अंक)--सचालक तथा सम्पादक, श्री सूर्यनारायण व्यास, प्रकाशक, श्री लक्ष्मीनारायण उपाध्याय, मोहन प्रिण्टिग प्रेस, माधवनगर, उज्जैन; आकार डबल क्राउन अठ पेजी, इस विशेषांक की पृष्ठ-सख्या ९०, वार्षिक मूल्य ६), प्रति अक का ॥=)

परम प्रतापी महाराज विक्रमादित्य का नाम भारतीय जनता और उसकी सस्कृति मे इतना प्रभाव रखता है कि आज भी विक्रम सम्वत् प्रचलित है। यद्यपि इतिहास के दृष्टिकोण से यह निश्चित नही किया जा सका है कि जिन महाराज विक्रमादित्य के नाम से जनता इतना प्रभावित है और उसने उनके नामसे चलने वाले सम्वत् को ही अपने लिए काल-गणना का आधार मान लिया है, वे किस समय में वर्त्तमान थे तथापि जो कुछ भी सामग्री प्राप्त है उसके आधार पर विचार प्रकट कर के जनता सन्तोषलाभ कर ही लेती है। द्वादश-ज्योतिर्लिगो में महाकाल का भी नाम आया है। महाकाल के ही उपासक होने के कारण महाराज विक्रमादित्य का नाम अजर, अमर हो गया है, ऐसी कतिपय लोगो की धारणा है। महाकाल का मन्दिर भी विक्रम की कीर्ति का एक स्मारक है। प्रस्तुत अक में मालव, उज्जैन, महाकाल तथा महाराज विक्रमादित्य सम्बन्धी खोजपूर्ण सामग्रियो को जनता के सामने उपस्थित किया गया है। चित्र आदि से सुसज्जित यह अक सुरुचिपूर्ण और उपयोगी पाठ्य पत्र होने का गौरव प्राप्त करने में समर्थ है।

—बेनीप्रसाद बाजपेयी 'मंजुल'

मराठी

१८५७च्या स्वातंत्र्य-युद्धा चा इतिहास—लेखक, स्वातंत्र्य वीर बैरिस्टर विनायक दामोदर सावरकर।

प्रस्तुत पुस्तक, जिसने मराठी साहित्य को बहुत समृद्ध किया है, मराठी और अंग्रेजी दोनो भाषाओ में उपलब्ध है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ इग्लैण्ड मे लिखा गया था, जहाँ सावरकरजी शिक्षा प्राप्त करने गये थे। वहाँ के ब्रिटिश म्यूजियम मे उन्हें इस विषय मे सबधित जो भी कागद-पत्र मिले, उनका उपयोग और छानबीन करने के पश्चात् वे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि सन् १८५७ का आन्दोलन केवल एक विद्रोह नही था, जैसा कि उसे बताया जाता है, बल्कि वास्तव मे भारत की स्वाधीनता का एक सग्राम था।

इस पुस्तक का लेखन सन् १९०८-१९०९ मे या इसके लगभग पूर्ण हुआ था और इसकी थोडी सी ही प्रतियाँ कठिनाई के साथ भारत भेजी गई थी। यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि उन दिनो शायद ही कोई ऐसा कालेजका छात्र रहा हो जिसने इस पुस्तक को किसी एक भाषा मे नही पढा। अब इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ है और इसकी प्रतियाँ हाथो हाथ बिक गई। आवश्यकता यह है कि इसका अनुवाद भारत की सभी अन्य भाषाओ मे भी हो।

अब चूकि हमने स्वाधीनता प्राप्त कर ली है, अत हमे अपने देश का इतिहास ऐतिहासिक ग्रन्थो और कागद-पत्रो के आधार पर अपने ही इतिहासज्ञो द्वारा लिखा हुआ जानना आवश्यक है। अंग्रेज शासको द्वारा हिन्दू-मुसलमानो, उत्तरीय-दक्षिणीयो तथा अन्य वर्गो मे फूट डालने का सदा प्रयत्न होता था, किन्तु अब हम एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप मे यह जानते है कि सन् १८५७ के काल मे राजनीति के प्रति जागरूक प्रत्येक व्यक्ति भारत में अंग्रेजो के अस्तित्व और उनके शासन से ऊब गया था और उन्हे यहाँ से भगाने के लिए सब जनता एक हो गई थी। उसका वह प्रयत्न निष्फल भले ही हुआ किन्तु उस सग्राम के बीच जो कुछ हुआ, उसने हमारे देश का गौरव ही बढाया है, जिस पर हमें सदा गर्व होना चाहिए। पुस्तक मे यह सिद्ध किया गया है कि भारतीयो ने किसी भी समय विदेशियो के शासन के सम्मुख सिर नही झुकाया। देश का इतिहास हमें बताता है कि सन १८५७ के देशभक्तो द्वारा प्रारभ किये गए स्वाधीनता-सग्राम को राष्ट्रीय देशभक्त आगे बढाते रहे।

पुस्तक मे आगे यह भी सिद्ध किया गया है कि अंग्रेजो ने भारत मे अपना शासन हमारे प्रति दया भाव से या अपने देश को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से स्थापित नही किया, बल्कि उनका उद्देश्य इस देश के धर्म और सस्कृति को विनष्ट करने का था। पुस्तक मे बताया गया है कि इस देश मे अंग्रेजी भाषा यहाँ के निवासियो को धीरे-धीरे ईसाई धर्म मे परिवर्तित करने के उद्देश्य से प्रचलित की जाने वाली थी।

जिन्होंने इस पुस्तक को नहीं पढ़ा और केवल अंग्रेजी लेखकों द्वारा ही लिखी गई इतिहास की पुस्तकें पढ़ी है, उनकी यह धारणा हो गई है कि विद्रोहियो ने अंग्रेज स्त्रियो और बच्चों पर घोरतम अत्याचार किये। किन्तु इस पुस्तक के पठन से यह धारणा सारहीन हो जाती है और हमे यह मानना पडता है कि अत्याचार का प्रारभ पहले अंग्रेज सैनिकों की ओर से ही हुआ था और अंग्रेजो द्वारा किये गए हृदयद्रावक अत्याचार की तुलना मे भारतीयो ने जो कुछ किया, वह एक प्रतिशत भी नही था।

यह पुस्तक हमें यह बताती है कि चाहे हमारा देश युद्ध के आधुनिकतम अस्त्र-शस्त्रो से लैस न हो, किन्तु तब भी हमारा रण-कौशल सफलता प्राप्त करने मे बडा काम आता है। अंग्रेजो ने स्वाधीनता-सग्राम के सेनापति श्री तात्या टोपे के प्रति उनके सफल नेतृत्व और वीरता के लिए बडा सम्मान व्यक्त किया है। उस सग्राम के अन्य नेता झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और श्री नानासाहब पेशवा थे।

पुस्तक मे उस काल की सामाजिक परिस्थिति की भी झलक मिलती है, जिससे हमे पता चलता है कि उस समय मुसल्मानी शासन के प्रभावो को दूर किया जा रहा था।

यह पुस्तक उस प्रत्येक विद्यार्थी को पढनी चाहिए, जो तथ्यो का अध्ययन और आकलन अपन लिए करना चाहता हो। भाषा के दृष्टिकोण से भी यह पुस्तक अमूल्य है।

—बलवन्तराव रामराव मंडलेकर

ग्यानबाचें अर्थशास्त्र—लेखक, श्री नरहर विष्णु गाडगीळ; प्रकाशक, श्री नारायण वामन धारू, ४१९ शनिवार पेठ, पूना २, द्वितीय आवृत्ति, आकार डिमाई, सजिल्द, पृष्ठ-सख्या ५२९, मूल्य ६)

यह मराठी भाषा मे लिखी गई एक अर्थशास्त्र विषयक पुस्तक है। यो तो मराठी मे अर्थशास्त्र पर कई पुस्तके लिखी गई है, पर उनसे इस पुस्तक में एक विशेषता है। यह इस उद्देश्य से लिखी गई है कि मराठी का क, ख, ग जानने वाला सामान्य व्यक्ति भी अर्थशास्त्र जैसे जटिल और रुक्ष समझे जाने वाले विषय का ज्ञान अत्यन्त सरलतापूर्वक प्राप्त कर ले। इसी से लेखक ने इस पुस्तक का नाम 'ग्यानबाचे अर्थशास्त्र' रखा है। पुस्तक के समर्पण मे लेखक ने लिखा है—"सदियो से अज्ञान, दारिद्रय और निराशा मे डूबे हुए बहुजन समाज के प्रतिनिधि "ग्यानबा" को यह कृति समर्पित की है।" इस एक वाक्य से ही पुस्तक का वैशिष्ट्य और लक्ष्य सुस्पष्ट हो जाता है।

विद्वान लेखक अपने इस ध्येय में सर्वथा सफल हुये है, इसमें तनिक भी सन्देह नही। उन्होंने ३१ अध्यायो में अर्थशास्त्र का सागोपाग और सोदाहरण विवेचन इतनी सरल, सुबोध और विनोदगर्भ शैली मे किया है कि अर्थशास्त्र बडा जटिल और रुक्ष विषय होगा, इसमें सदेह होने लगता है। जो उदाहरण दिये गये है, वे भी सामान्य स्थिति के पाठको के नित्य परिचय के

ही हैं। हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक एक विशिष्ट वर्ग ही के उपयोग की होने पर भी अर्थशास्त्र का शास्त्रीय रीति से अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो के लिए भी प्रथम प्रवेश की दृष्टि से बहुत उपयुक्त सिद्ध हुई होगी।

पुस्तक की छपाई-सफाई सुन्दर है और गेट अप भी अच्छा है, पर मूल्य के बारे में हमारा मत है कि जिन लोगो के लिए यह पुस्तक विशेष रूप से लिखी गई है, वह उनकी शक्ति के बाहर का है। हम मानते हैं कि लगभग साढे पाच सौ पृष्ठो की इस पुस्तक का मूल्य इससे कम भी नही रखा जा सकता था, पर न्यूनतम लाभ की दृष्टि से तो कुछ कम किया ही जा सकता था। आशा है, आगामी सस्करण के समय इधर ध्यान दिया जायगा।

—गोविन्दराव मराठे

सम्मेलन-समाचार

शोक-प्रस्ताव

हमे यह लिखते बडा दु.ख होता है कि पिछले दिनो हिन्दी के तीन महारथी श्री छबीलेलाल गोस्वामी, श्री सुखदेव बिहारी मिश्र तथा श्रीमती होमवती देवी हमारे बीच से उठ गये। इनकी हिन्दी के प्रति की गई सेवाएँ सर्वश्रुत है और इनके निधन से उसकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कठिन है। सम्मेलन ने अपनी १० जून, १९५१ की स्थायी समिति की बैठक में एक शोक-प्रस्ताव मे इनके निधन पर दु.ख प्रकट किया तथा इनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की।

प्रचार, समारोह तथा प्रेस कान्फरेन्स

हिन्दी भाषा और साहित्य को समृद्ध, सार्वजनीन बनाने के लिए हिन्दी जगत् को प्रबुद्ध बनाना, राष्ट्रभाषा के व्यापक प्रचार व प्रसार के लिए देश विदेशो मे स्थित साहित्यिक सस्थाओ को प्रेरणाए और प्रोत्साहन देना, विभिन्न भाषाओ के साहित्यकारो एव कलाकारो को राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति आकृष्ट कर के उन्हे समन्वय के मच पर एकत्र करना, हिन्दी साहित्य के अपूर्त अगो की पूर्ति और पूर्न अगो की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्न करना तथा कला और साहित्य को चेतन एव समृद्ध बनाने तथा सामाजिक एकता और सौहार्द बढ़ाने के लिए उत्सबो का आयोजन करना प्रचार विभाग की मुख्य प्रवृत्तिया है। इस वर्ष यह सभी प्रवृत्तिया अधिक सक्रिय और लोकप्रिय बन कर सम्मेलन की उद्देश्य-सिद्धि की सहायिका सिद्ध हुई।

नवीन प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनो की स्थापना के लिए प्रचार मत्रीजी ने स्वय दौरा कर के प्रान्तीय सम्मेलनो का संगठन किया। मध्यभारत, बगाल, पजाब तथा हिमाचल प्रदेश मे नवीन प्रान्तीय सम्मेलनो के सफल सगठन हुये। स्वीकृत प्रान्तीय सम्मेलनो को परिपत्र भेज कर प्रेरित किया गया तथा उन्हे विविध प्रकार के रचनात्मक साहित्यिक सुझाव दिये गय। भारत मे स्थित विदेशीय राजदूतावासो के सास्कृतिक सम्पर्क विभाग से सम्पर्क स्थापित कर प्रत्येक राजदूतावास से उस के देश की शिक्षा-सस्थाओ में हिन्दी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की स्थिति का परिचय पूछा गया। जहाँ पर हिन्दी के अध्ययन की कोई व्यवस्था नही है, उस देश की सरकार से उसकी हिन्दी अध्ययन के सबध में कठिनाइयां और अभाव पूछे गये।

यह सन्तोष का विषय है कि हिन्दी की उपयोगिता और लोकप्रियता उसके अपने सहज गुणो के कारण विदेशो में बढ़ रही है। इग्लैण्ड, फ्रास, इटली, अमेरिका, रूस आदि पाश्चात्य

देशो मे हिन्दी के अध्ययन की ओर आकर्षण बढ़ रहा है। वहा भारतीय विद्वानो को अध्यापक नियुक्त कर विश्वविद्यालयो में हिन्दी पढाई जाने का प्रबध है। कही-कही उसी देश के विद्वान् ही हिन्दी के आचार्य पद पर आसीन है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास के लिए प्रचार विभाग ने एक ऐसी योजना तैयार की है, जिसके द्वारा हिन्दी का सबध अन्य समस्त भारतीय भाषाओं और उनके साहित्यकारो से घनिष्ठ हो सकेगा और साथ ही अहिन्दी प्रातो तथा विदेशो मे हिन्दी के प्रचार का काम सरल हो जायगा।

जैसा कि कहा जा चुका है कला और साहित्य की अभिवृद्धि के लिए प्रचार विभाग ने जिन सास्कृतिक समारोहो का आयोजन किया, वे सब उत्तरोत्तर अभूतपूर्व थे। इन आयोजनो मे भारतेन्दु जन्मशती, सवसन्तक तथा सूर जयन्ती अधिक उल्लेखनीय है। प्रत्येक समारोह मे साहित्य और सगीत का समन्वय रहा। इन आयोजनो मे साधारण जनता से ले कर चोटी के साहित्यकारो विद्वानो तथा पत्रकारो का हार्दिक सहयोग और उत्साह-बल प्राप्त हुआ। दक्षिण भारत हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के मत्री श्री भालचन्द्र आपटे के शुभागमन मे एक स्वागत-समारोह किया गया, जिसमे विद्वान् साहित्यकारो और हिन्दी प्रेमियो ने मिल-जुल कर विचार-विनिमय किया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की वर्तमान गति-विधि एव कार्य प्रणाली तथा चालू और भावी योजनाओ पर प्रकाश डालने के लिए प्रचार विभाग की ओर से एक प्रेस कान्फरेन्स की गई, जिसमे हिन्दी तथा अग्रेजी पत्रो के उच्च कोटि के तीस विचारक पत्रकार सम्मिलित हुये। प्रचार मत्री जी के वक्तव्य पर विद्वान् पत्रकारो ने सदभावना पूर्वक अपने-अपने विचार प्रकट किये और कुछ प्रमुख पत्रकारो ने सुझाव भी पेश किये।

पाठ्य ग्रन्थों की सप्तवर्षीय योजना

हमे यह सूचित करते हर्ष होता है कि 'पत्रिका' के पिछले अक मे पाठ्य ग्रन्थो की जो सप्तवर्षीय योजना दी गई थी वह साहित्य समिति, परीक्षा समिति, विश्वविद्यालय परिषद, कार्य समिति और स्थायी समिति द्वारा स्वीकृत हो गई है। उसके अनुसार कार्य मार्गशीर्ष मास से आरभ हो जायगा। सब से पहले इटरमीडिएट या हिन्दी विश्वविद्यालय की प्रथमा परीक्षा के उन विषयो की पाठ्य पुस्तक तैयार की जावेगी जो अभी तक हिन्दी म प्रकाशित नही हुई है। विश्वविद्यालयो और इटरमीडिएट कालेजो के अध्यापको से निवेदन है कि यदि वे इटरमीडिएट या प्रथमा परीक्षा के लिए कोई पाठ्य पुस्तक तैयार करना चाहते हो तो उसकी सूचना साहित्य मत्री जी को यथासंभव शीघ्र देने की कृपा करें।

भारतीय अनुशीलन प्रतिष्ठान

हिन्दी साहित्य को शीघ्रातिशीघ्र भारतीय दृष्टि से ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए सम्मेलन द्वारा एक 'भारतीय अनुशीलन-प्रतिष्ठान' स्थापित किया गया है, जिसमें भारतीय ज्ञान-विज्ञान के अधिकारी विद्वान सुचारु रूप से विस्तृत तथा व्यापक अनुशीलन कर के नवीन ज्ञान-विज्ञान का भारतीय दृष्टि से समीक्षण कर के प्रामाणिक ग्रंथ प्रस्तुत करे। यह सस्था सम्मेलन के अन्तर्गत कार्य करेगी। इस के कार्य का आरम्भ करने के लिए १५०००) पन्द्रह हजार रुपया देना स्थायी समिति ने स्वीकार किया है।

भारतीय अनुशीलन प्रतिष्ठान के निम्नलिखित उद्देश्य होंगे—

(अ) भारत के प्राचीन ज्ञान के साथ विश्व के नये ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन, सामञ्जस्य और समन्वय करना।

(इ) विभिन्न युगो मे भारत और पडोसी देशो के भूगर्भ, भूतल, वृक्ष, वनस्पति, जीवजन्तु, अन्य प्राकृतिक परिस्थिति, जनता, भाषाओ और बोलियां, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दशाओ, कृषि, शिल्प, कला, व्यवसाय, व्यापार, राज्यसस्था, सभ्यता, सस्कृति धार्मिक आचार-विचार तथा लोक-जीवन का शृखलाबद्ध अध्ययन।

(उ) मूल उपादानो से भारत, पडोसी देशो और विदेशो के इतिहास की खोज का आयोजनपूर्वक सघटन।

(ऋ) भारत का प्रामाणिक सर्वांगीण इतिहास प्रस्तुत करना तथा उसे नई खोज के साथ निरन्तर पूर्ण करते रहना।

(लृ) उक्त अध्ययन के परिणामो को भारतीय भाषाओ मे तथा आवश्यकतानुसार किसी या किन्ही विदेशी भाषाओ मे भी लिपिबद्ध करते रहना।

(ए) भारतीय भाषाओ मे प्रामाणिक और सुलभ वैज्ञानिक वाङ्मय प्रस्तुत करना।

उक्त उद्देश्यो की पूर्ति के लिए प्रतिष्ठान निम्नलिखित उपाय करेगा—

(अ) विद्वानो और विद्यार्थियो को वृत्ति देकर नियुक्त करना अथवा विशेष कार्य-अवधि के लिए सहायता देना।

(इ) विद्यालय, प्रयोगशाला, सग्रहालय, ग्रन्थागार आदि की स्थापना और सचालन अथवा पहले से स्थापित वैसी सस्थाओ को परामर्श देना या अपने निरीक्षण या सचालन मे लेना।

(उ) व्याख्यानो और सभा-सम्मेलनो का आयोजन, विभिन्न अध्ययन-क्षेत्रो मे लगे विद्यार्थियो और विद्वानो के लिए परस्पर सम्मिलन परामर्श और सहयोग की सुविधाए उपस्थित करना।

(ऋ) ग्रन्थो, पत्रिकाओ आदि का लेखन, संकलन, सम्पादन, अनुवाद और प्रकाशन।

(लृ) अपने समान उद्देश्यों और कार्य वाली संस्थाओं से सम्बन्ध और सहयोग प्राप्त करना।

(ए) अध्ययनपूर्वक मौलिक रचना करने वालो को प्रमाणपत्र अथवा पुरस्कार देना।

(ऐ) विभिन्न प्रकार की खोजो और पर्यवेक्षाओ का आयोजन।

(ओ) चल और अचल सम्पत्ति प्राप्त करना, रखना और भुगताना, छात्रवृत्तियाँ तथा नियतावधिक या अक्षय निधियाँ स्थापित करना तथा अन्य सब आवश्यक और उचित उपाय करना।

भारतीय अनुशीलन प्रतिष्ठान की विधिवत् स्थापना तथा उसकी साधारण सभा-द्वारा प्रथम निर्वाचन होने तक उसके सब कृत्यो के निर्वाह के लिए निम्नलिखित व्यक्ति मिल कर उसकी आरभिक प्रबन्ध समिति के तथा नीचे लिखे अनुसार अपने-अपने पद के सब कार्य करेंगे—

(१) श्री जयचन्द्र विद्यालकार—अध्यक्ष तथा निर्देशक
(२) श्री घनश्यामसिंह गुप्त—उपाध्यक्ष
(३) श्री पुरुषोत्तमदास टडन
(४) डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
(५) श्री राहुल साकृत्यायन
(६) श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय
(७) श्री विश्वबन्धु शास्त्री
(८) डाक्टर मोतीचन्द्र
(९) श्री विश्वम्भरदयालु त्रिपाठी
(१०) महाराजकुमार डाक्टर रघुवीर सिंह
(११) श्री वेदव्यास
(१२) डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा
(१३) श्री रामचरण अग्रवाल—कोषपाल
(१४) श्री दयाशकर दुबे—मत्री
(१५) श्री सीताराम चतुर्वेदी—उपमत्री

सम्मेलन का कोष-सम्बन्धी कार्य

हिन्दी में विज्ञान और कला-सम्बन्धी उच्च कोटि के साहित्य-निर्माण-कार्य में एक बड़ी असुविधा उपयुक्त पारिभाषिक शब्दो का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति करने के उद्देश्य से सम्मेलन ने पारिभाषिक कोष-निर्माण का कार्य महापडित राहुल सांकृत्यायन की देख-रेख में

आरंभ किया। अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्दो के चुनने के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्त निश्चित किये गये.—

किसी भी अंग्रेजी या अन्य पारिभाषिक शब्द का पर्यायवाची पहिले प्रचलित देशज शब्दो मे देखे। यदि वहाँ न मिले तो नया शब्द बनाया जाय, जिसमें शब्द को प्रयोग में लाने वाले वर्ग या जनसाधारण का ध्यान रखा जाय। जहाँ केवल सैद्धान्तिक अथवा विज्ञान-विषयक शब्दावली हो, जैसे वनस्पति-विज्ञान, प्राणी-विज्ञान आदि, वहाँ संस्कृत से सहायता लेना आवश्यक है। इसमे इन बातो का भी ध्यान रखा जावे—

(क) समान व्युत्पत्ति वाले शब्दो के ग्रहण में एकता का ध्यान रखा जाय, परन्तु वह एकता यान्त्रिक न हो कर भाषा के विकास में जैसी विकास की स्वतन्त्रता देखी जाती है, वैसी ही हो।

(ख) शब्दो के निर्माण में समास करते समय सस्कृत-असस्कृत का कोई विचार न रखा जाय, केवल यह ध्यान अवश्य रखा जाय कि वह जनसाधारण को खटकने वाला न हो।

(ग) बड़े, सामासिक, उच्चारण-क्लिष्ट शब्दो की अपेक्षा व्यस्त, सरल शब्द अधिक उपयोगी होंगे।

इन्ही सिद्धान्तो के अनुसार शासन-शब्द-कोष तैयार कर के सम्वत् २००५ वि० मे प्रकाशित किया गया। बड़े हर्ष की बात है कि केवल हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तो ने ही नही, बल्कि आसाम, उडीसा, आन्ध्र, तामिलनाड, केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र और बगाल ने भी शासन-शब्द-कोष का समुचित स्वागत किया। अब प्रत्यक्ष शारीर कोष (Dictionary of Anatomy) तैयार होकर छप चुक है।

भाषा-विज्ञान -शब्द-कोष, चिकित्सा-विज्ञान शब्द-कोष और भू-विज्ञान शब्द-कोष भी तैयार किये जा रहे है। आशा है, इसी मास में वे प्रेस मे दिये जा सकेंगे। भूगोल शब्द-कोष का कार्य डाक्टर रामनाथ दुबे, अध्यक्ष भूगोल-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय को सौंपा गया है। अर्थशास्त्र शब्द-कोष का भार प्रयाग विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र-अध्यापक और सम्मेलन के साहित्य-मन्त्री श्री दयाशकर दुबे को सौंपा गया है। दोनो शब्द-कोष अगस्त मास तक तैयार हो कर प्रेस मे दे दिये जायेंगे। इस प्रकार आशा की जाती है कि सन् १९५१ ई० के अन्त तक शासन शब्द-कोष के अतिरिक्त निम्नलिखित आठ कोष और प्रकाशित हो जायेंगे—

१—प्रत्यक्ष शारीर कोष, २—दर्शन शब्द-कोष, ३—भाषा-विज्ञान शब्द-कोष, ४—चिकित्सा शब्द-कोष, ५—भूविज्ञान शब्द-कोष, ६—भूगोल शब्द-कोष, ७—अर्थशास्त्र शब्दकोष, ८—जीव रसायन शब्दकोष।

उपर्युक्त कोषो के अतिरिक्त इन कोषो पर भी सामग्री एकत्रित की जा रही है— कृषि शब्द-कोष जिसमें पशु-विज्ञान शब्द-कोष भी सम्मिलित है तथा औद्योगिक रसायन शब्द-कोष जिसमें आसव-विज्ञान, शर्करा-विज्ञान, काच-विज्ञान, खनिज तेल-विज्ञान, तेल-विज्ञान, पण्ट टेक्नालॉजी, रसायन-इजीनियरी, टेक्सटाइल टेक्नालॉजी आदि विषय भी सम्मिलित है।

पारिभाषिक शब्द-कोषो के अतिरिक्त सम्मेलन ने सस्कृत हिन्दी कोष का कार्य भी हाथ मे ले लिया है। इसमे लगभग ६० हजार शब्द होगे और यह कोष इस वर्ष के अत तक प्रेस में दिया जा सकेगा।

हमे विश्वास है कि उपर्युक्त कोष प्रकाशित हो जाने पर हिन्दी लेखको की एक बडी असुविधा दूर हो जावेगी और वे हिन्दी में उच्च कोटि के ग्रन्थ निर्माण कर हिन्दी की कमी को शीघ्र ही दूर कर सकेंगे।

राजा जी के वक्तव्य पर हिन्दी संसार की प्रतिक्रिया

गत ८ जून को भारत-ससद् मे गृहमन्त्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने भारतीय शासन की सेवाओ में राष्ट्रभाषा हिन्दी की स्थिति के सम्बन्ध मे जो वक्तव्य दिया है, उससे समूचे देश में राष्ट्रभाषा के हितचिन्तको को गहरा धक्का लगा है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति ने इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया है —

"सम्मेलन को भारत के गृहमन्त्री की इस घोषणा से कि भारतीय नौकरियो की परीक्षाओ में राष्ट्रभाषा का कोई स्थान न होगा, महान् आश्चर्य तथा दु ख हुआ। यह निश्चय राष्ट्रभाषा के प्रति अन्याय तथा अपमान है। सम्मेलन भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट करता है कि वह शीघ्र इस निर्णय को बदले और समस्त राष्ट्रभाषा सम्बन्धी सस्थाओ से आग्रह करता है कि वे इस निर्णय को बदलवाने के लिए उचित आन्दोलन करें।"

इसके अतिरिक्त देश की अन्य साहित्यिक सस्थाओ और विद्वानो ने भी इस सम्बन्ध में अपना घोर विरोध प्रकट किया है। उत्तर प्रदेश के शिक्षा मन्त्री माननीय बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने केन्द्रीय सरकार के इस निर्णय को सर्वथा अनुचित बतलाया है तथा राजाजी ने अपने वक्तव्य मे भारतीय प्रशासन सेवा की परीक्षाओ में हिन्दी अनिवार्य अथवा ऐच्छिक न रखने के जो कारण बताये थे, उनका पर्दा फाश करते हुए महापडित राहुल साकृत्यायन ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया है —

"उस दिन ससद में प्रश्न पूछने पर श्री राजगोपालाचार्य ने कहा था कि भारतीय प्रशासन-सेवा की पढ़ाई मे हिन्दी न अनिवार्य है और न ऐच्छिक ही। भारतीय प्रशासन सेवा उसी पुराने आई० सी० एस० यन्त्र का नया नाम है, और वहा उसी पुरानी टकसाल के ढले हुए सिविलियन पैदा करने की कोशिश की जा रही है। फर्क इतना ही है कि पहले काले सिविलियनो की सख्या कम होती थी, और अब काले साहब ही शत प्रतिशत है। काले साहब से

यह न समझ लें कि अब भारत के सभी प्रतिभाशाली तरुणो को सिविलियन बनने का अवसर है। वहा की शिक्षा दीक्षा पूरे अग्रेजी ढग से तथा आक्सफोर्ड के उच्चारण या शाही इग्लिश में होती है। आजकल सभी जगह देखा जा रहा है कि हाई स्कूल समाप्त करके कालेज मे आने वाले विद्यार्थी अग्रेजी की इतनी योग्यता नही रखते कि वहा अपने अध्यापक के अग्रेजी लेक्चर को समझ सके। सभी जगह मजबूर हो कर अपनी-अपनी भाषा को शिक्षा के माध्यम के तौर पर स्वीकार किया जा रहा है। इलाहाबाद युनिवर्सिटी ने अभी हाल में ही प्रश्नो का उत्तर हिन्दी या अग्रेजी मे देना विद्यार्थियो की इच्छा पर छोडा था। जब अग्रेजी का ज्ञान हमारे स्कूलो और कालेजो मे इस तरह का देखा जा रहा है, उस समय अग्रेजी को पहले की ही तरह अपने स्थान पर अक्षुण्ण रखने का मतलब इसके सिवा कुछ नही कि केन्द्रीय बडी-बडी नौकरियो को ऐसे आभिजात्य कुलो की इजारेदारी में रख दिया जाय, जो अपनी शिक्षा, प्रभाव और पैसे के बल पर अपने पुत्रो को कन्वेन्ट और यूरोपियन स्कूलो मे पढा कर अग्रेजी को उनकी मातृभाषा के समान बना सकते है। पर दिल्ली के देवताओ को ख्याल रखना चाहिये कि वयस्क मताधिकार प्राप्त होने से इच्छा या अनिच्छा जैसे भी हो, जनतन्त्र का वातावरण देश मे फैल चुका है। वे अस्सी, नब्बे और पचानबे लोगो को उनकी आख में धूल झोक कर इस तरह ऊचे वेतन के पदा से वचित नही रख सकते। इसका परिणाम भयकर विस्फोट होगा। हिन्दी को अनिवार्य या ऐच्छिक कुछ भी न रखने का सीधा अर्थ यही है कि अग्रेजी अपने स्थान पर पूरी शक्ति से कायम रहे, इसे अधा भी समझ सकता है। क्या राजाजी या उनके बडे-छोटे भाई यह मानते है कि लोग इस छोटी सी बात को भी नही समझेंगे ?"

रामप्रताप त्रिपाठी
सहायक मन्त्री

सम्मेलन की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

आधुनिक वीर काव्य

इसमें ब्रज भाषा और खडी बोली के सुप्रसिद्ध कवियो की ओजपूर्ण कविताओ या उनके वीर काव्यो मे से ऐसा सकलन किया गया है कि जिससे हमे इस क्षेत्र की कविता की विचारधाराओ को समझने मे विशेष सहायता प्राप्त हो सके । मूल्य १॥)

प्रेमघन-सर्वस्व (दो भागों में)

स्वर्गीय पडित बद्रीनारायण चौधरी 'प्रमघन' की सपूर्ण पद्य एव गद्य रचनाए इन ग्रन्थो मे सग्रहीत है। मूल्य प्रथम भाग ६) और द्वितीय भाग १०)

हिन्दी काव्य मे प्रकृति-चित्रण

लेखिका---डाक्टर किरण कुमारी गुप्ता

हिन्दी साहित्य मे प्रकृति-चित्रण का अध्ययन करने वाले पाठको के लिए यह एक मात्र ग्रन्थ है । मूल्य ९)

राजनीति के सिद्धात

लेखक---डाक्टर महादेवप्रसाद शर्मा

प्रस्तुत पुस्तक मे विद्वान् लेखक ने राजनीतिक सिद्धात सबधी सभी आवश्यक और उपयोगी तथ्यो का समावेश विवेचना सहित किया है । मूल्य ८)

आदर्श नगर व्यवस्था

अनुवादक---श्री भोलानाथ शर्मा, एम० ए०

इसमे ग्रीक भाषा की 'पोलितेइया' का हिन्दी मे बहुत सुन्दर भाषानुवाद किया गया है । मूल्य १०)

मत्स्य महापुराण

अनुवादक---श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

यह सस्कृत के मत्स्य पुराण का हिन्दी मे प्रामाणिक और प्रवाह पूर्ण अनुवाद है। मूल्य २०)

वायुपुराण

अनुवादक---श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

यह सस्कृत के वायु पुराण का हिन्दी मे प्रामाणिक और सरल अनुवाद है। मूल्य १२)

पुराणों में गंगा

सकलनकर्ता---श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

सपादक---श्री दयाशकर दुबे

सब पुराणो से श्री गगाजी के सबध में सामग्री इकट्ठी करके इस पुस्तक में हिन्दी अनुवाद सहित दी गई है । मू० १०)

तपोभूमि

लेखक---पण्डित रामगोपाल मिश्र

इस पुस्तक में भारत के उन ७२५ प्राचीन स्थानो का सर्वांगीण परिचय है, जो वैष्णव, बौद्ध, जैन, सिख आदि धर्मों और मतो मे पवित्र माने जाते हे । मूल्य १०)

भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र

लेखक---श्री शकरसहाय सक्सेना, एम० ए०

यह पुस्तक बी० काम० तथा एम० ए० परीक्षा के ग्राम अर्थशास्त्र विषय के पाठ्य-क्रम के आधार पर लिखी गई है, तथापि सर्व साधारण के लिए भी यह उपयोगी है । मूल्य ७)

शासन शब्दकोष

सपादक---महापडित राहुल साकृत्यायन

इसमे शासन के प्राय सभी विभागो मे व्यवहृत होने वाले समस्त शब्दो का संकलन है । मूल्य १५)

जातक (तीन भागों मे)

अनुवादक---श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इसमे बौद्ध जातको का, जिनका आख्यायिका-साहित्य मे बडा ऊँचा स्थान है, सुन्दर और सरल हिन्दी में प्रामाणिक अनुवाद किया गया है । अनुवादक श्री कौसल्यायन जी बौद्ध साहित्य के सुप्रसिद्ध आचार्य है । मूल्य प्रथम भाग ७॥), द्वितीय भाग ७॥) और तृतीय भाग १०)

राष्ट्रभारती

भारतीय साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका

संपादक मंडल

महापंडित राहुल सांकृत्यायन — भदन्त आनन्द कौसल्यायन
आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी — श्री बैजनाथसिंह 'विनोद'

राष्ट्रभारती राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के तत्वावधान मे प्रकाशित एक उच्च कोटि की साहित्यिक-सास्कृतिक पत्रिका है। राष्ट्रभारती विभिन्न भारतीय भाषाओ मे लिखे जाने वाले विशाल भारतीय साहित्य के योगसूत्र का कार्य करती है और साहित्यिक-सास्कृतिक आदान-प्रदान का योग्य साधन बनकर सच्चे अर्थो मे भारतीय साहित्य का प्रतिनिधित्व करती है। राष्ट्रभारती मे देश-विदेश के गण्यमान्य विद्वानो और कलाकारों की श्रेष्ठ रचनाए और आधिकारिक अनुवाद भी रहते हैं। राष्ट्रभारती की पुस्तक समालोचना और सपादकीय टिप्पणिया देश के साहित्यिक-सास्कृतिक जीवन के स्वस्थ विकास का प्रतिनिधित्व करती है। आचार्य नरेन्द्रदेव, प० लक्ष्मण शास्त्री जोशी, श्री गोपाल हालदार, डा० हीरालाल जैन, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० कोलते, श्री यशपाल, श्री कृष्ण चन्द्र, श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्री सियारामशरण गुप्त, श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', श्री शिवमगल सिह 'सुमन', श्री 'दिनकर', श्री 'अज्ञेय', डा० रामविलास शर्मा, डा० मोतीचन्द, श्री विष्णु प्रभाकर आदि राष्ट्रभारती के सम्मानित लेखक है।

'राष्ट्रभारती' हर महीने की पहली तारीख को आपके पास पहुँचती है।

आज ही ग्राहक बनें।

विज्ञापन दर और एजेन्सी के नियमों के लिए पत्र-व्यवहार करें।

वार्षिक मूल्य ६) — एक प्रति ।।=)

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

पो० हिन्दीनगर

वर्धा (मध्य प्रदेश)

सस्ता साहित्य मंडल

से प्राप्य

नये प्रकाशन

१ **आज का विचार** (महात्मा गांधी) प्रतिदिन के स्वाध्याय के लिए गाँधीजी के मननीय विचार, सादी ।≈), सजिल्द ।।≈)

२ **श्रेयार्थी जमनालालजी** (हरिभाऊ उपाध्याय) सेठ जमनालालजी की रोचक और प्रामाणिक जीवनी, सजिल्द ६।।)

३ **भागवत-धर्म** (हरिभाऊ उपाध्याय) भागवत के ग्यारहवे स्कध का अनुवाद एव टीका, सादी ५।।), सजिल्द ६।।)

४. **सर्वोदय तत्व-दर्शन** (गोपीनाथ धावन) सर्वोदय तत्व-दर्शन की विधिवत व्याख्या, सजिल्द ७)

५. **आरोग्य की कुञ्जी** (महात्मा गाँधी) शरीर को पूर्ण रूपसे स्वस्थ रखने मे सहायता देने वाली अद्वितीय पुस्तक, ।।)

६ **मैं तन्दुरुस्त हूँ या बीमार ?** (लुई कूने) शरीर की जाच करके बिगडे स्वास्थ्य को बनाने के सरस उपाय बतानेवाली किताब, ।।)

७ **प्राकृतिक जीवन की ओर** (एडोल्फ जुस्ट) आज के रोग-ग्रस्त मानव को शारीरिक सुख और शान्ति का मार्ग बतानेवाली पुस्तक, ३)

८ **जीवन-पराग** (विष्णु प्रभाकर) मानव-जीवन के सनातन सत्यो को सरल-सुबोध शैली मे व्यक्त करने वाली कहानियाँ, १)

९ **मैं मरूँगा नहीं !** (यशपाल जैन) मानव-जीवन की तलस्पर्शी कहानियाँ और सस्मरण, २।।)

१० **जनता के जवाहर** (बाबूराव जोशी) श्री जवाहरलाल नेहरू के जीवन-सम्बन्धी बालोपयोगी पुस्तक, ।।।)

मण्डल की अगले महीने में प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

१. **मेरे समकालीन** (महात्मा गाधी) महात्मा गाधी द्वारा लिखे नेताओ व सामान्य लोक-सेवको के सस्मरण ।

२ **सप्तदशी** (सग्रह) हिन्दी के विभिन्न लेखको की उच्च कोटि की सत्रह कहानियाँ ।

३ **बापू की सीख** (महात्मा गाँधी) गाधीजी के आदर्शों और सिद्धान्तो को सुन्दर शैली में समझाने वाले उनके लेखो का बालोपयोगी सग्रह ।

४ **बापू के आश्रम मे** (हरिभाऊ उपाध्याय) बापू के आश्रम और ससर्ग के मधुर, रोचक और शिक्षाप्रद सस्मरण ।

'जीवन-साहित्य' के

ग्राहकों को इन सबपर ≡) रुपया कमीशन मिलेगा ।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

पुस्तक विक्रेताओं और पुस्तकालयों को विशेष सुविधा

सम्मेलन द्वारा प्रकाशित निम्नलिखित पुस्तकों पर भारत के समस्त पुस्तक विक्रेताओ को ५) रु० से अधिक मूल्य की पुस्तकों पर ३५% तथा पुस्तकालयों एवं वाचनालयों को २५% कमीशन देना निश्चित हुआ है। डाक खर्च खरीदने वाले को देना होगा।

वाचनालयों और पुस्तकालयो के सचालको से निवेदन है कि सवत् २००८ में अपने पुस्तकालयो और ... द्वारा प्रकाशित इन सर्वोत्तम और ... की सुविधा का लाभ उठावे। ... । आर्डर देते समय कम-से-कम ...

मत्स्य महा पुराण ... ७)
वायु पुराण
पुराणो में ग...
तपोभूमि ... १५)
आचार्य सा... ५)

गोरखबानी ... ७॥)
शैवाल ... ७॥)
भोजपुरी ग्रा... १०)
भोजपुरी ग्रा...
प्रेमघन-सर्व... ३)
प्रेमघन-सर्व... ५)
हिन्दी काव्य...
... १)
राजनीति के... १॥)
आदर्श नगर... १॥।)